❀ श्री गौरहरिर्जयति ❀

प्रकाशक के द्वारा प्रकाशितग्रन्थ संख्या—१२८

❀ श्रीगोविन्दलीलामृतम् ❀

श्रीलश्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामिविरचितम्

[प्रथमखण्डम्]

ज्येष्ठ पूर्णिमा
सम्वत् २०२२

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

❀ श्रीगोविन्दलीलामृतम् ❀

श्रीलश्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामि—
विरचितम्

मुद्रणार्थ—अर्थसहायकः—
स्वर्गीय सेठ मामुचन्द सिघानिया के आत्मज,
सेठ मूलचन्दजी सिंघानिया

एवं

तत्पुत्र श्रीमान् हरिराम सिंघानिया
मु०—झारसुगुडा
जि०—सम्बलपुर [उत्कल]

प्रकाशक व मुद्रक—
कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवर (ग्वालियर मन्दिर)
गौरहरि प्रेस, राधाकुण्ड [मथुरा]

श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभु-जयन्ती सम्वत् २०२१

न्योछावर [दोनों खण्ड]
पांच रुपया

समर्पणपत्रम्

भज—निताई गौर राधेश्याम ।

जप—हरे कृष्ण हरे राम ॥

(प्रकाशक की गुरुप्रणाली)

राधाकृष्णमिलितविग्रह श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के अन्तरंग
परिकर बलरामावतार—

श्री नित्यानन्द प्रभु
श्री वीरचन्द्र प्रभु
श्री रामचन्द्र प्रभु
श्री किशोरीमोहन गोस्वामी
श्री राधावल्लभ गोस्वामी
श्री राधारमन गोस्वामी
श्री राधामाधव गोस्वामी
श्री सत्यानन्द गोस्वामी
श्री राधिकाप्रसाद गोस्वामी
श्री कृष्णचैतन्य गोस्वामी
श्री नित्यराधा गोस्वामी
श्री शङ्करारण्य गोस्वामी
श्री राधारमन चरनदास बाबाजी
श्री रामदास बाबाजीमहाराज

कृष्णदास

❀ दो शब्द ❀

ग्रन्थकार श्रीकृष्णदास कबिराज गोस्वामी:—बर्द्धमान जिला ईष्टर्ण रेलवे ब्यारडेल-बारहारोया शाखा में काटोया स्टेशन है। जहाँ श्रीमन्महाप्रभु ने केशव-भारती से सन्यास लिया था, वह स्थल पवित्र गंगातट पर मौजूद है। वहाँ से सालार स्टेशन, वहाँ से दो माईल दूर पर व गंगाटिकुर से तीन माईल दूर पर झामटपुर है। उस पवित्र स्थान में वैद्यवंश में आप का जन्म हुआ है। पिता का नाम भगीरथ, माता का नाम सुनन्दा एवं भ्राता का नाम श्यामदास है। पिता जी की चिकित्सावृत्ति थी। कविराज-गोस्वामि की छे वर्ष अवस्था में पिताजी ने देह-रक्षा की अत: दोनो भ्राता पितृष्वसा (बूआ) के निकट प्रतिपालित हुए। बाल्य-काल में ही कविराजगोस्वामि के हृदय में प्रबल वैराग्य व उत्कटभक्ति का उदय हुआ था। वय: प्राप्त हो जाने पर आप भ्राता के हाथ में समस्त विषय अर्पण कर निरन्तर भगवद्भजन में उन्मत्त रहे। अनन्तर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के स्वप्नादेश प्राप्त कर बृन्दाबन के लिये चल दिये एवं वहाँ ही शेष-जीवन तक निबास किया। श्रीरघुनाथदासगोस्वामी जी आप के गुरु थे ऐसा प्रेमबिलास से जाना जाता है।

संस्कृत शास्त्र में कविराज गोस्वामि की प्रगाढ़ ब्युत्पत्ति थी वह उनके बिरचित गोबिन्दलीलामृत के अध्ययन से ज्ञात होती है। आपने बिल्वमङ्गल रचित कृष्णकर्णामृत की "सारङ्गरङ्गदा" नामक टीका भी की थी उससे आप की रसज्ञता का परिचय मिलता है। बंगभाषा में भी आप की प्रबल आजन्मिता थी वह

उनके बिरचित श्रीचैतन्यचरितामृत पाठ से अवगत हो जाती है। वह ग्रन्थ आज समस्त गौड़ीय वैष्णवों का जीवन सर्वस्व व गलाहार हो रहा है। इस का प्रभाव समस्त वंगदेश में ही नहीं एतद् देशों में भी फैला हुआ है। चैतन्यदेव के सिद्धान्त के अवगतार्थ यह एकमात्र सर्वोपरि ग्रन्थ है। जिस में समस्त गौड़ीय-गोस्वामियों का सिद्धान्त सार-रूप में सञ्चित किया गया है। आपने गौड़ीय-सिद्धान्त को सुदृढ़ करने के लिये भागवतादि बहु शास्त्रों का प्रमाण दिया है। श्रीचैतन्यचरितामृत वंगभाषा पयार छन्द में विरचित है। प्रसंगप्राप्त उसके बारे में हम क्या कह सकते हैं,-जिसकी महिमा त्रिजगत में अतुलनीय है। जिस प्रकार वेद हिन्दुमात्र का आदरणीय है ठीक उसी प्रकार यह वैष्णव मात्र का ही सेबनीय है। वह गौड़ीय वेद वंगदेश के घर घर में अवस्थित है। यदि चैतन्यचरितामृत जैसे ग्रन्थ का इस भयङ्कर कलिकाल में उदय न होता तो गौड़ीय-सिद्धान्त का अस्तित्व मिट जाता। समस्त गौड़ीय-गोस्वामियों का सिद्धान्त ज्ञात कराने में यह एक अनूठा ग्रन्थ है।

वास्तबिक कहना पड़ेगा कि यदि कबिराजगोस्वामी कलिपाबनावतार महाप्रभु श्रीगौरांगदेव की "अनर्पितचरी उन्नतोज्वलरसमयी अहैतुकी भक्ति का उद्देश इस ग्रन्थरूप में न देते तो उस विशुद्धभक्ति का सन्धान कौन पाता? आपने छै गोस्वामि कर्त्तृक अनुशीलित तथा आस्वादित रससागर-तत्वसागर का मन्थन कर एक अनिर्वचनीय अमृत-निर्य्यास का जीव समूह में परिवेषण किया है।

प्रस्तुत इस गोविन्दलीलामृत महाकाव्य में २३ सर्ग एवं २५८८ श्लोक मौजूद हैं। प्रथम सर्ग में निशान्तलीला, २-४ सर्ग में प्रातःलीला, ५-७ सर्ग में पूर्वान्हलीला, ८-१८ सर्ग

में मध्यान्हलीला, १९मा सर्ग में अपरान्हलीला, २०माँ सर्ग में सायं-लीला, २१ माँ सर्ग में प्रदोष-लीला एवं २२—२३ सर्ग में नैश-लीला वर्णित हैं ।

निशान्तलीला प्रथमसर्ग में—

पहिले ग्रन्थकार के द्वारा निज अभिष्टदेव की बन्दना की गयी है, पश्चात् दैन्योक्ति तथा लीला-क्रम दिखलाए गये हैं। उस के बाद श्रीबृन्दा के आदेश से वनचर-पक्षियों की मधुरध्वनि का वर्णन है। अनन्तर राधा-कृष्ण दोनों के शयन--दृश्य का चित्रण है एवं श्रीकृष्ण जागरण करते हैं। तत्पश्चात् सखियों के द्वारा युगलमाधुरी का दर्शन किया जाता है। (४६) उपरान्त मयूर एवं हरिणगण का दर्शन प्रकार वर्णित है। (४७—५०) परस्पर राधा-कृष्ण माधुर्य्यास्वादन करते हैं, (५१—५९) तथा सखियों का कुञ्ज-भवन में प्रवेश होता है। (६०—६१) अनन्तर दोनों का रूप एवं केलिशय्या का वर्णन है। (६२-६५) । श्रीकृष्ण के रसोद्गार में राधा का भावशावल्य दिखलाया गया है (६६—७१) । उस समय सारिका मनोहर आलाप करती है तथा दोनों कुञ्जगृह से निर्गमन करते हैं। (७२—८८) गमन समय में त्वरा के कारण दोनों के वस्त्रादि आभूषणों का विपर्य्यास (अस्त—व्यस्त) हो जाता है उस अवस्था को देख कर सखियाँ हास्य परिहास करती हैं। (८९-९१) अनन्तर अरुण (सूर्य्यसारथी) के लिये निन्दा की जाती है (९२-९५) । और सब प्रभात शोभा वर्णन करने के कारण गृहगमन विस्मृत हो जाते हैं। (९६--१०६) । उस समय कक्खटी नामक वृद्धा-मर्कटी भयदायी "जटिला" शब्द का उच्चारण करती है जिस से सब भय भीत हो कर अपने अपने गृह के लिये चले जाते हैं। (१०७-११६)

प्रातर्लीला द्वितीयसर्ग में—

नन्दालय की शोभा का वर्णन किया जाता है। उस के बाद पौर्णमासी देवी का नन्दालय में आगमन होता है। अनन्तर सखागण आ जाते हैं एवं मधुमंगल के द्वारा कृष्ण-प्रबोधन किया जाता है। (१--११) श्रीकृष्ण के अंग में रतिचिन्ह देख कर माता यशोदा की नाना प्रकार भ्रान्ति उपस्थित हो जाती है तथा वह वात्सल्यभावोचित नाना प्रकार आक्षेप करती हैं। (१२-१७)। अनन्तर मधुमंगल नाना प्रकार श्लिष्ट वाक्य प्रयोग करता है एवं श्रीकृष्ण बाल्यभाव दिखलाते हुए शय्योत्थान करते हैं। (१८-२७) वे सखाओं के साथ मिलकर आनन्द प्राप्त करते एवं उनके साथ गोशाला में प्रवेश करते हैं। (२६-३०) मार्ग में मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण का नाना हास्य परिहास रंग होता है। श्रीकृष्ण गोशाला में प्रवेश कर धेनुगण को बुलाते हैं एवं गोदोहन करते हैं (३१-४१) उधर श्रीराधिकालय में मुखरा जाकर जटिला से मिलती है तथा जटिला अपनी बधू राधा को जगाती है। (४१-५०)। उस समय मञ्जरीगण राधिका के निकट आकर अपनी अपनी सेवा में लगजाती हैं एवं मुखरा श्रीराधिका के श्रीअङ्ग में कृष्ण व्यवहृत पीतवस्त्र का दर्शन कर भय भीत होजाती है और विशाखा नाना बचन-चातुरी से मुखरा की वंचना करती है। (५१-५६) अनन्तर सखीगण कर्त्तृक रसोद्गार वर्णन किया गया है। श्रीराधिका स्नानादि कर वेष-भूषादि धारण करती है। (५७-१०४)

तृतीयसर्ग में—

माता यशोदा के द्वारा रन्धन-कार्य्य में परिजनों की नियुक्ति (१-१२) एवं श्रीराधिका को पाकार्थ नन्दालय लाने के लिये

जटिला द्वारा कुन्दलता का प्रेषण है। (१३--१६) जटिला के द्वारा श्रीराधा प्रति कृष्ण सम्बन्धी नाना तर्क (शंका) उठाने पर कुन्दलता जटिला को प्रबोधित करती है। (१७–२२) पुनः जटिला के द्वारा नन्दालय गमन के अनुरोध करने पर राधिका वाम्य प्रदर्शन करती है। (२३-२८) अनन्तर श्रीराधा कुन्दलतादि सखियों के साथ हास्य परिहास करती नन्दालय में जाती है एवं माँ यशोदा के द्वारा रन्धन कार्य्य में नियुक्त की जाती हैं। राममाता रोहिणी जी के साथ श्रीराधिका नाना प्रकार रसोई बनाती हैं। अनन्तर श्रीकृष्ण के स्नानीय द्रव्यादि आहरण के लिये मा यशोदा के द्वारा नियोग किया जाता है। (२६-८०) अनन्तर मा यशोदा भोजनार्थ श्रीकृष्ण को बुलाती है। (८१-८३) एवं रन्धनालय में प्रवेश कर व्यञ्जनादि समस्त बस्तुओं का निरीक्षण करती हैं (८४-११२)

चतुर्थसर्ग में—

गोशाला से श्रीकृष्ण का आगमन एवं यशोदा के द्वारा नाना प्रकार लालन (१-७) श्रीकृष्ण का स्नान एवं वेशभूषा, भोजन रङ्ग (२७-६०) विश्राम एवं दासगण की यथोचित सेवा (६१-६३) श्रीराधा का विश्राम, भोजन एवं माँ यशोदा के द्वारा वस्त्रालङ्कारादि प्राप्ति (६४-७१) वनगमनोचित वेशधारणादि। (७५-७७)

पञ्चमसर्ग में पूर्वान्हलीला—

गौशाला का दृश्य (२-६) गोपालों के साथ श्रीकृष्ण की शोभा (१०--१२) ब्रज-वासियों का आगमन (१४-१७) प्रेयसिओं के द्वारा श्रीकृष्ण दर्शनादि (१६-२२) सखायों के मातृवर्ग का श्रीकृष्ण में स्नेहोत्कर्ष, मा यशोदा के द्वारा लालन-आदेशादि (२३-२७) श्रीकृष्ण के द्वारा गोचारण की नीति का प्रद-

र्शन, (२८--२६) बलदेवादि के हाथ में यशोदा के द्वारा कृष्ण समर्पण एवं रक्षा-बन्धनादि (३०-३७) अनन्तर (७८-४३) श्लोकों में रमणियों के प्रति श्रीकृष्ण को प्रेम-कटाक्ष निक्षेप का बर्णन है। (४४-५०) श्लोकों में पिता-माता के द्वारा प्रबोधन है। अब श्रीकृष्ण कान्ताओं के प्रति दृष्टि भङ्गिमा प्रदान करते हुये बन में प्रवेश करते हैं (५१—५६)। इधर कुन्दलता श्रीराधिका को लेकर जटिला के समीप समर्पित करती है एवं जटिला सूर्य्य पूजा के निमित्त राधिका को आदेश देती है। (६०-७३) श्रीराधा कुछ समय बिश्राम करती हैं तथा सेवा परायण सखियाँ आकर अपनी सेवा में नियुक्त हो जाती हैं। अनन्तर कस्तुरिका एवं तुलसी को ताम्बूल-बीड़ी देकर भेजा जाता है। (६४--६८), श्रीराधा नाना प्रकार पकबान्न रचना करती हैं एवं श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिये उत्कण्ठता हो जाती हैं। (७६-८०)

षष्ठसर्ग में---

सखाओं के द्वारा नृत्य, गान, हास्य एवं नाना प्रकार अनुकरण (२-८) वृन्दादेवी की सेवा (६-११) श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि (१२-१५), समस्त वन में श्रीराधा की स्फूर्त्ति (१६-२७), वृक्ष-लता--पशु--पक्षि आदि वनवासियों को श्रीकृष्ण के द्वारा कुशल जिज्ञासा (२८) गोवर्द्धन-तट में नाना प्रकार की क्रीडा (२६--३०) खाद्य-द्रव्य सह धनिष्ठा का आगमन (३१--३४) जलक्रीडा, भोजन, तथा वनविहार छल से राधा से मिलने के लिये श्रीकृष्ण का गमन (३५--४२) कुसुमसरोवर तट पर नाना प्रकार परामर्श (४३--४६), तुलसी का आगमन तथा "जटिला के द्वारा राधावरोध" ऐसा छल पूर्वक सुनाना (५०-५७] उससे श्रीकृष्ण की उत्कट विरह व्यथा एवं तुलसी के द्वारा प्रकृत संवाद प्राप्तकर आश्वसित (५८--६६) होना। तुलसी के द्वारा चन्द्रावली

सखी शैव्या का वक्रनादि (६७--७४) शैव्या के साथ श्रीकृष्ण का कपटालाप एवं चन्द्रावली—वंचना (७५--८६)।

सप्तमसर्ग में—

राधाकुण्ड का बर्णन, इसके घाट- मण्डप, हिन्दोला, रत्न-सेतु, बृक्ष, कुट्टिम, चतुःशाला, पुष्पकुंजश्रेणी, पुष्पवन, उपबन, जलमध्यस्थित-मन्दिर, तीरस्थित सेवोपयोगि-द्रव्य-गृहादि (१०-१४)वृन्दाकृत साज-सज्जा एवं केलि उपकरणादि(१५-१७)जलचर स्थलचर पक्षियों की ध्वनि, पुष्पादि की शोभा, अष्टकुंज, शिल्प-शाला, मार्गादि, द्वारों की शोभा (१८-३०), ललितानन्द नामक उत्तरदिशा के कुंज, उसकी कर्णिका, शाखाकुंज, पद्म-मन्दिर, हिन्दोल कुट्टिम, शाखाकुंजसमूह का बर्णन (३१-७२)। ईशान में बिशाखा के मदनसुखद नामक पूर्व में चित्रा का चित्रानन्दद, अग्निकोण में इन्दुलेखासुखद पूर्णेन्दुकुंज, दक्षिण में चम्पकलता के हेमकुंज, नैऋत में रंगदेबी के श्यामकुंज, पश्चिम में तुङ्गबिद्या के अरुणकुंज, बायुकोण में सुदेबी के हरितकुंज, राधाकुंड के मध्य-भाग में अनङ्गमजरी के पद्म-कुंज का बर्णन (६२-१००) कुण्ड की महिमा, श्रीराधा के अंग साम्य दर्शन में श्रीकृष्ण की उत्प्रेक्षादि का बर्णन (१०२-११०) श्यामकुंड बर्णन (१११-११३) बायुकोण में सुवलानन्द नामक श्रीराधा के श्रीकुञ्ज एवं मानसपाबनघाट का बर्णन (११४-११५) उत्तर में मधुमंगलानन्द नामक ललिता के कुंज, ईशान में उज्ज्व-लानन्दाख्य बिशाखा के कुञ्ज, गौघाट का बर्णन (११६-११८) मदनसुखद कुंज में श्रीकृष्ण का आगमन एवं मिलनोत्कंठादि।

अष्टमसर्ग में—

श्रीराधा की उत्कंठा, तथा तुलसी के प्रत्यागमन से आन-

न्द, (२-१५) ललिता के बाक्य से श्रीराधा की पुनः उत्कंठा एवं आक्षेप, धनिष्ठा का आगमन एवं सम्बाद दान (१६-३७) अभिसार तथा श्रीराधा का कृष्णवेश धारण [३८-४८] सखियों का वन में राधा-साम्यबितर्क [४६--५१] अन्य यूथेश्बरी के सह मिलन आशंका तथा तमाल में हेमयूथी मिलन दर्शन से इर्षादि (५२-६५) सूर्य्यमन्दिर में गमनादि, कृष्ण प्रेरित बृन्दा के साथ कुञ्जराज का साक्षात्कार एवं आलाप (६६-८१)वहाँ परिहासादि, बृन्दा के द्वारा मिलने के लिये आश्वासनादान (८२-१०५) परस्पर दर्शन में युगल स्फूर्त्ति भ्रम, उसका प्रकार (१०६-११२) सखियों की उक्ति में श्रीमती का विस्मय अपनोदन एवं युगल का स्तम्भभाव (११३-११५)

नवम सर्ग में—

युगल का भाव-बिकार, (१-१०) श्रीराधा अंग में बिलास, ललित, किलकिञ्चितादि भावोद्गम एवं पुष्पचयनलीला (११-१२) रसकलह (२२) श्रीराधिका के मौनत्व दूरीकरण में श्रीकृष्ण की नाना चेष्टा (२३-३८) श्रीराधिका के तात्कालीन भावादि (३६-४७) गमन चेष्टा एवं बाधा दानादि में विविध रस का बर्णन (४८-६७) नबग्रह पूजा (८०-६७) दिग्पूजा छल से सखियों के साथ रसलीला (६४-१०६)

दशम सर्ग में

श्रीकृष्ण की पशुपतिलीला (१-७) श्रीराधिका के वदन में भ्रमर के बैठने पर चकित-भावादि का उद्गम, उस से सखियों का आनन्द बिस्तार (८-१६) श्रीराधा के बाम्यतादि का बर्णन, ललिता की रंगोक्ति,युद्धसज्जा के आनन्द से श्रीकृष्ण हस्त से वंशी का गिरना,(२०-३२) श्रीकृष्ण की राहु--सम्बन्धिलीला, वंशी का अन्वेषण, कौतुकादि (३३-१४३) निकुञ्जबिलास, (१४४-१४६)

एकादश सर्ग में–

बृन्दा एवं नान्दीमुखी का आगमन, युगल की परस्पर वेश रचना (१--७) श्रीराधांग में रति--चिन्ह दर्शन कर सखी-गण का हास्य-कौतुकादि (८--१७) सखियों के द्वारा राधा-अंग बर्णन छल से आनन्द आस्वादन (१८-१४५)

द्वादश सर्ग में–

षड्रितु- शोभा का बर्णन, बृन्दाबन-दर्शन के लिये बृन्दा का निबेदन (१--४) श्रीराधिका ने निजांग से वृन्दावन की शोभा का हरण किया है इस बात पर मधुमंगल के द्वारा मुकद्दमा खड़ा करना (५–६) नान्दीमुखी के द्वारा पौर्णमासी--बचन का प्रकाशनादि, (७–११) कन्दर्पराज के द्वारा बिचार करने के लिये श्रीकृष्ण के कुन्दलता के साथ उत्तर– प्रत्युत्तरादि, (१२–१८) श्रीराधा अपहृत द्रव्यों का प्रजागण के लिये अर्पण करें इस प्रकार आदेश–पत्र एवं उसके बाद वंशी–चोरी का बिचार इत्यादि (१९–२६) बन शोभा दर्शनार्थ यात्रा, श्रीराधा की अंग-च्छटा से बन की ओज्ज्वल्यता, श्रीराधा–कृष्ण की मिलित–कान्ति से समस्त मरकतवर्ण हो जाना (२८–३३) वायु-वेग से वृन्दा के हस्त पर स्थित वंशी का शब्द होने पर उस की प्राप्ति (३४--३८) वंशीबादन एवं स्थिर–चर सब का धर्म्म बिपर्य्यय (३९--४२) एकही समय छै ऋतु बिराजित वन-शोभा दर्शन (४३--५०) वृन्दाबन में राधाकृष्ण की पूजा (५१--६७) बसन्त बन बिभाग का बर्णन, (६८--७८) ग्रीष्म बन विभाग का वर्णन (७९--९१) बर्षा वन विभाग का बर्णन (९२-१०५)

त्रयोदश सर्ग में–

शरद्–बर्षा की सीमा में स्थित बन दर्शन (१--५) शरत्–

सुख नामक बन बिभाग का बर्णन (६--२१) शुक-सारी का प्रेम कलह (१२--४४) हेमन्त सुखद नामक बन विभाग का दर्शन (४५--४७) हिम ऋतु सम्बन्धि वन वर्णन (४८--६६) श्रीकृष्ण-हस्त स्थित वृन्दा-प्रदत्त कुन्दमाला के विविध बर्ण धारण करने पर सखीगण का परिहास (६७--७१) श्रीराधा--कृष्ण के कथनोपकथन (६२--११४)

चतुर्दश सर्ग में-

श्रीराधा के प्रेम-वैचित्त्य का बर्णन, (१--२६) श्रीराधाकुण्ड तट पर बसंन्तलीला (२७--४८) झूलन एवं मधुपान (४६-७६)

पञ्चदश सर्ग में-

सरोजकुञ्ज में निद्रा परायण राधा के साथ श्रीकृष्ण की बिहार--चेष्टा (१--२४) राधा-अङ्ग में वेशरचना एवं बिभ्रम (२६--२६) दासीगण की सेवा, राधिका की आज्ञा से सखियों के प्रति कुंज में श्रीकृष्ण का बिलास (३०--३८) बिलास के उपरान्त समागत-सखियों के साथ कुतकिनी श्रीराधा का कौतुक (३६--४२) जलक्रीडा (४३--६१) वेशरचना (६२--११०) पद्म-मन्दिर में जल-पान एवं शयनादि (१११--१४६)

षोडश सर्ग में-

सारी--शुक मुख से श्रीकृष्णांग बर्णन (१--११०)

सप्तदश सर्ग में-

शुक द्वारा श्रीकृष्ण के गुणों का बर्णन (१--४६) शुक द्वारा कृष्णाष्टक पठन (५०--५८) सारी द्वारा राधाष्टक पाठ(५६-६७)

अष्टादश सर्ग में-

श्रीराधा—कृष्ण के द्वारा सारी-शुक को पढाना (१-१६)

पाशाक्रीडा [२५--५७] सूर्य्यपूजादि [५७--७३] श्रीमती का हस्त रेखा बिचार [७४--८३] । सखागण के निकट श्रीकृष्ण का गमन एवं अपने गृह पर राधिका का प्रत्यावर्त्तन (८४-९८) ।

उन्नीस सर्ग में- (अपरान्हलीला)

सखियों के आनन्दोत्सव का बर्णन [१-२०] धेनुवृन्द के साथ गृहाभिमुख में गमन [२१-३७] देवताओं की स्तुति एवं उसके दर्शन से सखा—गण का हास्यकौतुक (३८—४८) श्रीराधिका के द्वारा बिविध प्रकार खाद्य सामग्री का प्रस्तुत व प्रेरण करना, एवं वेश—भूषादि का धारण (४९—६७) नन्दालय में रन्धन—उद्योग, सब की कृष्ण-दर्शन के लिये व्याकुलता [६४-७५] श्रीकृष्ण के द्वारा गौ--सम्भालन एवं गृह-गमन-शोभा (७६—८३) ब्रजवासियों की श्रीकृष्ण-दर्शन परिपाटी एवं प्रेम का बर्णन (८४-१०९)

बीसवाँ सर्ग में- (सायंलीला)

श्रीराधिका के द्वारा प्रेरित द्रव्यों से जल पान एवं स्नानादि (१-२२) गोशाला में गमन एवं दोहनादि (२३-३५) शालग्राम-नारायण जी की आरती का दर्शन, एवं रात्रि-भोजन-परिपाटी का वर्णन, (३६-५४] अट्टालिका से युगल का परस्पर दर्शन एवं यशोदा के द्वारा प्रेरित अन्नादि द्रव्यों के राधिका का भोजन (५५-६८) ।

इक्कीस सर्ग में—(प्रदोपलीला)

रंगालय में गुणीजन कृत नृत्य-गीत -वाद्यादि का दर्शन (१-१६) श्रीकृष्ण का शयन (१७-२२) श्रीराधा का अभिसार (२३-२७) गोविन्दस्थली [योगपीठ] की शोभा, उसका संस्थान ब उसमें विराजित मणिमन्दिर एवं कुञ्जादि का बर्णन (२८-

९३) रत्नमन्दिर में श्रीराधा की कृष्ण-प्राप्ति के लिये बिविध-दशा (९४—१०१) श्रीकृष्ण का अभिसार (१०२-१०६) श्रीराधा की प्रेमचेष्टा (१०७-१०८) सखियों का रंग बिलास एवं युगल-मिलनादि (१०९-११८)

बाईस सर्ग में--- (नैशलीला)

काञ्चनवेदी पर दोनों का उपवेशन एवं वनभ्रमण (१—३०) गान में श्रीकृष्ण के द्वारा लता बर्णन एवं उसी गान में सखियों के द्वारा राधा-कृष्ण बर्णन (३१-४५) वंशीवट में उपवेशन एवं यमुना दर्शन (४६-५३) पुलिन में चक्रभ्रमणादि (५४-५८) हल्लीशक-नृत्य (५९-६७) चक्र से उतर कर भूमि पर रास [६८-७६] , गान, स्वर, ग्राम, श्रुति, तान, मूर्च्छनादि एवं राग-रागिनी आदि का लक्षण एवं नामादि कथन (७७-८६] बाद्य एवं यन्त्रों का नाम प्रकार[८७-९०] हस्तक भेद [९१-९२] ताल एवं मानादि [९३-१०१]

तेइसवाँ सर्ग में-

गीत एवं नृत्यों का प्रकार भेद, उन की प्रणाली एवं कला-बिनोद (१-३८) श्रान्ति एवं सेबा का प्रचार, (३९-४८) मधु-पान (४९-५१) रतिलीला एवं कान्ताओं का बेश-बिन्यासादि (५२-५५) परिहासादि (५६-६२) यमुना में जल-केलि(६३-७४) स्वर्णमण्डप में बेशरचनादि (७५-८२) जलयोग एवं शयन-लीला (८३-९१) ।

पद्मपुराण पातालखण्डीय-बृन्दाबनमाहात्म्य के ५२ वें अध्याय में इस प्रकार दैनन्दिनीलीला का कथन है:-

बृन्दादेबी-वक्ता एवं गोपीभावाबिष्ट नारद जी श्रोता। गोपीभाव से राधाकृष्ण का भजन करना सर्वोपरि है। श्रीराधिका

के परकियाभाव से बिभावित होना इस में कथन है-यथा-"ततः सखीजनैस्यस्याः श्वश्रु ं सम्प्राथ्य यत्नतः। पक्तु माहूयते स्वन्नं ससखी सा यशोदया॥ नारद उवाच-कथमाहूयते देवी पाकार्थं तु यशोदया। सतीषु पाककर्त्रीषु रोहिणीप्रमुखास्वपि॥ वृन्दोवाच-पूर्वं दुर्वाससा दत्तो वरस्तस्यै महामुने। इति कात्यायनीब-क्त्राच्छ्रुतमासीन्मया पुरा॥ त्वया यत्पच्यते देवि तदन्नं मदनु-ग्रहात्। मिष्टं स्यादमृतस्पर्द्धि भोक्तुरायुष्करं तथा॥ इत्याह्व-यति तां नित्यं यशोदा पुत्रबत्सला। आयुष्मान्मे भवेत्पुत्रः स्वा-दुलोभात्तथा सती। श्वश्वानुमोदिता सापि हृष्टा नन्दालयं ब्रजेत्। ससखीप्रकरा तत्र गत्वा पाकं करोति च॥" अर्थात्-यशोदा जी के आदेशानुसार सखियाँ श्रीराधा जी की सास की प्रार्थना कर नित्यप्रति राधिका को रसोई बनाने के नन्दालय में ले आती थी। नारद जी वृन्दा से इसका कारण पूछते हैं कि रसोई बनाने बाली बहुत सी पाककर्त्री हैं परन्तु राधिका को बुलाने का क्या कारण है? वृन्दा कहती है-पहले दुर्वासा जी ने राधा को वर दिया था कि वह जो रसोई करेगी वह अमृत सदृश होगा, उसके भोजन करने बाला चिरायु रहेगा। यह बात श्रीयशोदा ने पौर्णमासी के मुख से सुनी थी। अतः कुन्दलतादि सखियों के द्वारा नित्य प्रति जटिला से प्रार्थना कर बुलाती थी। श्रीराधिका अपनी सास जटिला का आदेश लेकर सखियों के साथ नित्यप्रति नन्दालय जाती है एवं वहाँ बिबिध प्रकार से रसोई बनाती हैं। श्रीरूपगोस्वामि पाद ने इसी अध्याय का आधार लेकर ही द्वादश श्लोक में "स्मरणमंगलस्तोत्र" की रचना की। इसी को सूत्र रूप में रखकर, श्रीकबिराजगोस्वामी ने इस बृहत् गोबिन्दलीलामृत महाकाव्य का प्रस्तुत किया। श्रीकवि-कर्णपूर महोदय ने भी कृष्णान्हिककौमुदी नामक सरस ग्रन्थ का

निम्र्माण कर लीलानुभव इच्छुक भक्तजनों को लीला-रस समुद्र में मज्जन कराया। उनके परवर्त्ती आचार्य्य श्रीयुक्त विश्वनाथ चक्रबर्त्ती ने भी "कृष्णभावनामृत" नामक सरस मधुर महाकाव्य की रचना के द्वारा उन भक्तों को रस–समुद्र में पुनः पुनः आप्लावित कराया। ये संस्कृत के तीनो ग्रन्थ लीलास्मरण करने वाले भक्तों का परम —उपादेय माने गये हैं। पदकर्त्ता यदुनन्दनदासजी ने गोविन्दलीलामृत का पयारादि नाना छन्दों द्वारा वंगभाषा में अनुबाद किया है जिस का प्रकाशन हो भी गया है। पदकर्त्ता रायशेखरजी ने भी "दण्डात्मिका-लीला" का संक्षेप वंगभाषा पद्य में रचना की तथा नरोत्तमठाकुर महाशय ने भी "स्मरणमंगल" नाम से संक्षेप में छन्द बद्ध निम्र्माण किया। इधर हिन्दीभाषा मर्म्मज्ञ आचार्य्य-गण ने हिन्दीभाषा भाषी रसिक सज्जनों के लिये ब्रजभाषा में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। उन में से वृन्दाबनदासजी कृत "अष्टयाम" दामोदरदासजी कृत "स्मरणमंगलभाषा" श्रीमधुसूदनगोस्वामीजी के द्वारा विरचित "स्मरणमंगल" प्रसिद्ध है। ये तीन ग्रन्थ हमारे द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। श्री-वलबन्तभैय्यासाहिब (ग्वालियर) का स्मरणमंगल भी बहुत सुन्दर है उस का भी प्रकाशन हो गया है। श्रीकृष्णचैतन्य-गोस्वामी (पटना) महाराज की लाईब्रेरी में गोविन्दलीला-मृत का आनुक्रमिक एक अनुबाद है, जिस का प्रकाशन अभी नहीं हुआ। गुणमञ्जरी कृत "स्मरणमंगलभाषा" भी संक्षेप में बिरचित एक सुन्दर अनुबाद है जो कि श्रीनरोत्तम-ठाकुर महाशय के द्वारा विरचित वंगभाषा पयार के "स्मरण मंगल" ग्रंथ का ब्रजभाषा में रूपान्तर सरस अनुबाद है जिस का प्रकाशन हम कर चुके हैं। अभी भी गोविन्दलीलामृत

के बहुत से संक्षेप व वृहद्रूप में अनुवाद का सन्धान मिलता है परन्तु अभी ये सब हस्तगत नहीं हैं॥ ब्रजबासी विरक्त गौड़ीय वैष्णवगण पहले इस गोविन्दलीलामृत को कंठस्थ कर लेते हैं पश्चात् उसी के आधार पर साथ साथ लीला-स्मरण भी करते हैं। साहित्यभण्डार में यह एक अनुठा अद्वितीय अनुपमेय ग्रंथ है। इस में नाना प्रकार अलङ्कार, छन्द, व्याकरण, कोषादि का प्रयोग दिखलाया गया है। सूपविद्या व संगीतविद्या की पराकाष्ठा दिखायी गयी है। कामकला का वर्णन भी साहित्य ढंग से किया गया है। रसाचार्य्यभरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जो रस विवेचन किया है, काव्यप्रकाश व साहित्यदर्पणादिक अलङ्कार ग्रंथ में जिस का बिवेचन है उस लौकिक रस को गौड़ीय आचार्य्यों ने अलङ्कार-कौस्तुभादि ग्रंथ में अलौकिक रूप से परिस्फुट परिवर्द्धित किया है। गौडीय आचार्य्यों का कहना है कि प्राकृत में रस नहीं है, वास्तविक अप्राकृत वस्तु में ही रस होता है। क्यों कि श्रीभगवान ही रसरूप हैं। उस रस का सम्पूर्ण आस्वादन श्रीकृष्ण-स्वरूप में हुआ है।

"नेष्टा यदङ्गिनि रसे कविभिः परोढा
तद्गोकुलाम्बुजदृशां कुलमन्तरेण।
आशंसया रसविधेरबतारितानां
कंसारिणा रसिकमण्डलशेखरेण॥
(धृत उज्वलनीलमणौ पूर्वाचार्य्यवाक्यम्)

श्रीकृष्ण ही समस्त अबतारों के अबतारी, समस्त रसिक-मण्डली के शेखर स्वरूप हैं। वे रसविधि की आस्वा-दन-आकाङ्क्षा से अपने परिकर वर्गों को पृथिवी पर अवतारित करा कर स्वयं अबतरित हुए। ब्रजभूमि को ही उन्होंने

परम केन्द्र बनाया। परिकरों में प्रेयसीवर्ग मुख्य है उन में ही श्रीराधिका। वे सब श्रीकृष्ण की आल्हादिनीशक्ति हैं। लीलास्वादन के लिये पृथक् शरीर धारण कर अवतीर्ण होते हैं। रसशास्त्र में शृंगाररस का स्वरूप श्यामरंग एवं अधिष्टाता देवता श्रीकृष्ण हैं ऐसा निर्णय दिया है। "श्रीरूपगोस्वामि ने "अशेषनायिकावस्थाप्राकट्याद्भुतचेष्टिते?" ऐसा चाटुपुष्पाञ्जली में श्रीराधिका के लिये कहा है।

प्राकृत में जो रस है वह उस दिव्य-रस की छाया मात्र है उस में विभावादि रस सामग्री का वैरूप्य, वैकृत्य होता है। अप्राकृत में विभावादि का अपचय नहीं है। श्रीकृष्ण नित्यकिशोर विशिष्ट हैं। उन में प्राकृत की भाँति वयः का परिणाम नहीं है। कवियों ने प्राकृत नायक-नायकादि रस सामग्री लेकर जो रस खड़ा किया है परन्तु वह उस दिव्यरस के सामने तुच्छ मात्र है। रस के मूलकारण नायक—नायिका के प्राकृत होने के कारण किसी भी प्रकार रस सामग्री नहीं मानी जा सकती है। वे सब उनके चरितादि काव्यादिशास्त्र में गर्भित होकर रसास्वादकों की आस्वादन दृष्टि में अलौकिक रूप माने जाते हैं इस प्रकार लौकिकरसवेत्ता आचार्यों की भावना है परन्तु वह परिणाम में दुःखद होती है। श्रेयः प्रार्थी भक्त जन उस का आस्वादन क्यों करना चाहेगा। उस में उन का प्रत्यवाय हो सकता है। मानो किसी काव्य में ऐसा वर्णन है कि एक गन्धर्व अपनी पत्नी गन्धर्वी को छोड़ कर दूसरी (किसी गन्धर्वी) के साथ प्रीति जोड़ता है। यद्यपि परकीयाभाव से रस की पुष्टि होती है तो भी यहाँ तो दोनों नरक भागी होते हैं उस का आस्वादन करने वाला भी नरकगामी हो सकता है। इसी लिये वैष्णवाचार्यों ने उस

रस को तुच्छ व परिणाम में दुःखद बतलाकर अप्राकृत (भगवद् सम्बन्धि) को ही सुख रूप एवं आस्वाद्य रूप माना है। मानो परकीयाभाव में रस की पुष्टि होती है अतः सब उसका आस्वादन करने लग जावे तो परिणाम में क्या होगा उसे सुधीगण स्वयं विचार करले। जो कारण अवस्था में दुःखरूप है वह कार्य्यावस्था में व परिणाम में सुख रूप किस प्रकार हो सकेगा। श्रीभगवान कारण-कार्य्य दोनों ही अवस्थाओं में आनन्दरूप माने जाते हैं।

उन को लेकर जो रसपद्धति है वह यथार्थ में अनुभवनीय है। श्रीकृष्ण में परकीयाभाव का दूषण नहीं है वरं सर्वोत्कृष्ट रस-चर्वण के कारण परम उपादेय है। सिद्धान्त में जब राधिकादि ब्रजगोपियाँ उनकी आल्हादिनी शक्ति (स्वरूप शक्ति) हैं तो उस में दोषावकाश कहाँ है। श्रीकृष्ण की ब्रजगोपिओं के साथ कामवत् लीला का श्रवण कर अनभिज्ञ लोग नाना प्रकार की कल्पना करते हैं। उनको यह पता नहीं है कि भगवान् सर्व-नियन्ता हैं वे सबके शासक हैं। उन्हे कौन शासन कर सकता है। वे क्यों वेदादि के शासन में रहेंगे॥ श्रीसनातनगोस्वामिचरणने "यत्पाद-पंकजपरागनिषेवतृप्ता" इस रासपंचाध्यायी के उपसंहार श्लोक की टीका में कहा है—

"किमुतेति-अखिलसत्त्वानां सर्वजीवानां, तिर्यगादयः क्रमेण तामसराजससात्त्विकाः, ईशितव्यानां स्वभावत एव नियम्यानामिति मुक्तानामपि तदधीनता सूचिता कुशलाकुशले पुण्य-पापे ताभ्यामन्वयः सम्पर्कः सर्वनियन्तृत्वेन नियामकाभावात् परम-स्वतन्त्रत्वाच्च एतदेवहि परमेश्वरत्वं नामेति भावः"।

श्रीपाद रूप गोस्वामी ने निज प्रणीत भक्तिरसामृतसिन्धु के प्रारम्भ में नारद-पञ्चरात्रादि शास्त्रीय सिद्धान्त का उत्थापन करते

हुए बिशुद्धा भक्ति का निरूपण किया है। आपने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

"सर्वाभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥" अर्थात्—

अन्य-समस्त अभिलाषाओं से रहित, ज्ञान-कर्म-योग-आदि से निरावरण, अनुकूल भाव से केवल कृष्ण का अनुशीलन ही उत्तमा भक्ति है।

आपने पहिले भक्ति के क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षलघुताकृत, सुदुर्लभा, सान्द्रानन्द-बिशेषात्मा एवं श्रीकृष्णाकर्षिणी ये छै महान गुण बतला कर प्राणिमात्र का ही उसमें अधिकार है, ऐसा निर्णय दिया है। तत्पश्चात् भक्ति के चौसठ अंगों का बिचार-निर्णय करते हुए उनमें से श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण-पाद-सेवन-अर्चन-बन्दन-दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन ये नवधा भक्ति का उत्कर्ष दिखला कर पुनः चौसठ अंगों में पञ्चधा भक्ति का सर्वोत्तमत्व बतलाया है। १-श्रीभागवतास्वाद, २-नाम-संकीर्त्तन, ३-श्रीमूर्त्तिसेवा, ४-मथुरावास, ५-कृष्णभक्तसंग। वह श्रवण-कीर्त्तन-स्मरणादि विशिष्ट भक्ति वैधी-एवं रागानुगा भेद से दो प्रकार मानी जाती है; कोई कोई वैधी-भक्ति को मर्य्यादाभक्ति एवं रागानुगा को पुष्टि भक्ति करके कहते हैं। नित्य परिकरों में जो भक्ति वह रागात्मिका कही जाति है जिसमें राग की प्राधान्यता है। अपने अनुकूल-विषय में स्वाभाविक परमआविष्टता तथा जिस का हेतु प्रेममय तृष्णा है वह राग है॥ उस रागमयी भक्ति को रागात्मिका कहते हैं। वैकुण्ठादि धामों में वैधी भक्ति का सन्निवेश है। रागात्मिका भक्ति केवल व्रजवासीजनों में अभिव्यक्त हो कर विराजमान रहती है। वह रागात्मिका कामरूपा तथा सम्बन्धरूपा से दो

प्रकार की है। जो भक्ति सम्भोगतृष्णा को प्रेममय रूप से परिणत करती है वह कामरूपा भक्ति है जिस में केवल श्रीकृष्ण-के सुख का उद्यम देखा जाता है। वह भक्ति ब्रजदेवियों में सुप्रसिद्ध रूप से विराजमान है।

श्रीगोविन्द में पितृत्वादि अभिमान अर्थात् "मैं कृष्ण की माता व मैं कृष्ण के पिता हूँ" इस प्रकार भावना सम्बन्ध-रूपा है। रागात्मिका भक्ति-के दो भेद होने के कारण रागानुगा भक्ति भी दो प्रकार है-कामानुगा एवं सम्बन्धानुगा। नित्यसिद्ध ब्रजबासीजन में विराजमान जो रागात्मिका भक्ति है उस का अनुसरण रागानुगा है जिस का आधार साधक भक्त में है। साधक अपने को नित्य-परिकर ब्रजवासियों का आनुगत्य मान कर उन की भाव-माधुरी में मुग्ध हो कर रागानुगा भक्ति का याजन करता है। रागानुगा भक्ति में शास्त्र मर्य्यादा का शैथिल्य हो जाता है, परन्तु सिद्धान्त रूप में यह नहीं मानना चाहिये कि प्रारम्भ से ही वैधी-भक्ति का भी त्याग करदे। रागानुगा भक्ति के उदय(आविर्भाव) तक ही वैधीभक्ति की जाती है। श्रीरूप गोस्वामी ने-श्रद्धा साधुसंग-भजनक्रिया-अनर्थनिवृत्ति-निष्ठा-रुचि-आसक्ति- भाव-प्रेम ये नै प्रकार भक्ति का सोपान (क्रमतः चढने की सीढ़ियाँ) वतलाई हैं। साधक भक्त की स्थिति प्रेम पर्य्यन्त है। साधक मन में अपने को ब्रजवासिओं के आनुगत्य मान कर अथच वाहिर श्रवणादि भक्ति का याजन करता हुआ सिद्धकक्षा में पहुच जाता है, जिस को जातरती कहते हैं। उस अवस्था में वह शरीर छोड़ देता है। लीलाशक्ति योगमाया उस समय जिस ब्रह्माण्ड में श्रीकृष्ण की जन्मादिप्रकट लीला हो रही होगी वहाँ नित्य परिकर ब्रजवासियों के साथ प्रकट कराती है। ब्रज में शान्त-दास्य-

सख्य-वात्सल्य–मधुर ये पांच भाव विराजमान हैं। परन्तु शान्त रस का कोई प्रभाव नही है क्योंकि उस के साधन का ब्रज में सम्पूर्ण अभाव है। दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर इन चार भावों में से मधुर रस अर्थात् प्रिय-प्रेयसी भाव (श्रीकृष्ण प्रिय एवं गोपीगण प्रेयसी इस प्रकार भाव) का सर्व प्राधान्य है। साधक भी अपनी रुचि के अनुसार उन भावों का ग्रहण कर लेता है। मधुररस के उपासक साधक भक्त मन में अपने को ब्रजगोपियों के आनुगत्य पूर्ण अर्थात् गोपी रूप में विभावित करके बाहिर इन्द्रियों के द्वारा श्रवणादि भक्ति का याजन करें। भाव सिद्ध हो जाने पर वह जब शरीर त्याग करता है तब योगमाया उस भक्त को गोपी रूप में विभावित करके नित्य परिकर ब्रजगोपियों के साथ गोपीगर्भ में जिस ब्रह्माण्ड में कि श्रीकृष्ण की प्राकट्य लीला हो रही होगी वहाँ प्रवेश करा देती है।

साधन भक्ति की सीढ़ी श्रद्धादि नै प्रकार की है। नित्यपरिकर ब्रजगोपियों की–रति ही पहिला सोपान है। वह रति उत्तरोत्तर बृद्धि–बिकसित होकर प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव आख्या को धारण करती है।

"स्याद्दृढ़ेयं रतिः प्रेमा प्रोद्यन्स्नेहः क्रमादयम् ।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि ॥"

पहले भक्ति के चौसठ अंग उन में से नवधा भक्ति का मुख्यत्व बतलाया गया है। उन में से रागानुगा मार्ग में स्मरणांग का प्राधान्य है। क्योंकि राग मानसिक धर्म्म है जिस में स्मरण भी मानसिकी क्रिया रूप है।

चैतन्यचरितामृत में कहा है —

बाह्य अन्तर इहार दुइ त साधन।
बाह्य साधक देहे करे श्रवण–कीर्त्तन॥

मने निज सिद्ध देह करिया भावन ।
रात्रिदिने करे ब्रजे कृष्णेर सेवन ॥

श्रीरूप चरण ने श्री-भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा—

कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम् ।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्य्याद्वासं ब्रजे सदा ॥
सेवासाधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि ।
तद्भावलिप्सुना कार्य्या ब्रजलोकानुसारतः ॥

"साधकरूपेण यथावस्थितदेहेन, सिद्धरूपेण अन्तश्चिन्तिताभीष्टतत्सेवोपयोगिदेहेन" दुर्गमसङ्गमनी ।

श्रीराधागोविन्द की मानसिकलीला का चिन्तन करने में गोपीभाव (प्रकृतिभाव) की परम आवश्यकता है। जिस के बिना स्मरण करना असम्भव है। यहाँ प्रकृति भाव कहने पर यह नहीं समझ बैठे कि अपने को साधारण स्त्री मानले। प्राकृत देही देह सम्बन्धी वह स्त्री नहीं है। वह तो लीलाशक्ति चिन्माया के द्वारा बिभावित परम शुद्ध रूप गोपी शरीर भावना-मयी है। मायिक देह तो माया-वैभव से संगठित पिता-माता के वीर्य्य-रज से उत्पादन्न है। श्री-गोस्वामी जीव चरण ने भक्तिसन्दर्भ में कहा है कि—"किन्तु रहस्य-लीला तु पौरुषविकारवदिन्द्रियैः पितृपुत्रदासभावैश्च नोपास्याः स्वीयभावविरोधात, रहस्यत्वंच क्वचिदल्पांशेन क्वचित्तु सर्वांशेनेति ज्ञेयम्"।

श्रीकृष्ण की यह दैनन्दिनी-लीला सब से पर बस्तु है इस आस्वादन कामादि से रहित-परम-पवित्र चिन्मय गोपीभाव विभावित चित्त से ही हो सकता है। इसी लिये नारद जी को भी गोपी रूप बनाना पड़ा। पद्म—पुराण के पातालखण्डीय वृन्दाबनमाहात्म्य में-बर्णन है- महादेव जी के आदेशानुसार श्रीनारद जी ने वृन्दादेबी से इसका श्रवण किया था महादेब जी ने

उसका बर्णन करने में अपने को अक्षम बतलाया। अन्यत्र बर्णन है-गोबर्द्धन और राधाकुण्ड के मध्यभाग में कुसुमसरोबर के समीपबर्त्ती श्रीनारद जी ब्रह्माजी से गृहीतदीक्ष (गोपालमंत्र से दीक्षित) हो कर मतान्तर में सदाशिवजी से युगलमन्त्र का प्राप्तकर रागमार्ग-गोपीभाव प्राप्ति के लिये तपस्या करने लगे। उस तपस्या के फल रूप उनके मन में राधाकृष्ण की दैनन्दिनी-लीला श्रवण करने के लिये परम अभिलाषा हुई। आप ने वनदेवी से प्रार्थना की परन्तु वनदेवी ने तुम ऋषि (पुरुष रूप) हो इस लीला का श्रवण में तुम्हारा अधिकार नहीं है क्योंकि इसके श्रवण में गोपी भाव (प्रकृतिभाव) का ही एकमात्र उपादान है। गोपीभाव प्राप्ति का उपाय पूछने पर श्रीकुसुमा देवी ने कुसुमसरोबर में स्नान के लिये आदेश किया। श्रीनारद जी स्नान करने लगे एवं तत्क्षण ही गोपीरूप हो गये। अब वनदेवी उनको राधागोबिन्द जी की दैनन्दिनी अष्टकालीय लीला का श्रबण कराने लगी। पद्मपुराण पाताल खण्डीय वृन्दबनमहात्म्य के चौदहवाँ अध्याय तथा सनत्कुमार संहिता ३६ माँ पटल में अध्याय रूप में जिस राधागोबिन्द की दैनन्दिनी लीलाका बर्णन है।

यद्यपि राधागोबिन्द की अत्यन्त गूढ एवं रहस्यमयी लीला से परिपूर्ण यह विशाल गोबिन्दलीलामृत केवल ब्रजचरित परायण-रागानुगा-मार्ग के पथिक, निष्किञ्चन वैष्णव जनों को आस्वाद्य है परन्तु काम-क्रोधादि से कलुषित, भगवद्लीला-चरित्र में अनभिज्ञ साधारण जनों के लिये यह अनुपादेय ही है। हृदय में किसी प्रकार इसके प्रति अनर्थभावना न हो जाये अतः सावधानी से इस का पठन पाठन करना चाहिये। ब्रजबासी गौड़ीय विरक्त—वैष्णबों की यह पद्धति धारावाहिक रूप से चली आ रही थी कि लीला

स्मरण के पहले इस ग्रन्थ के श्लोकों को कंठस्थ करले और तत्पश्चात् उसी के आधार पर लीला-स्मरण करें। अब कुछ दिनों से इस परिपाटी में शिथिलता अवश्य आगई है जो समय का प्रभाव है। मानसिक लीला स्मरण के बिना ब्रजवास व्यर्थ है। क्यों कि व्रज में इस का प्राधान्य है। हृदय में गोविन्दलीलामृत के आधार पर मानसिकलीला का चिन्तन और-हरेकृष्ण महामन्त्र के एक लक्ष,दो लक्ष,ततोऽधिक तीनलक्ष संख्या जप यह निष्किञ्चन व्रजबासी विरक्त वैष्णवों की भजन-पद्धति है। यह पद्धति गृह में रहने वाले वैष्णवों के लिये चल नहीं सकती क्यों कि उन को अवकाश कहाँ? तो भी पठन पाठन में कोई हानि नही है. हृदय में शुद्धभाव रहना चाहिये। अनर्थ तो समस्त विषयों में आजाता है परन्तु सावधानी की आवश्यकता है। राधागोविन्द की रहस्यमयी इन लीलाओं का श्रवण कर के बहुतों भक्तों के हृदय में कामादि कलुषता आ सकती है-अगर ऐसा सोच लें तो निवृत्ति परायण शुक पराशरादि मुनिजन क्यों इन का श्रवण कराते। नैमिश्यारण्य में विविधवासनाओं से युक्त मुनिजन भगवान् की रहस्यमयी रासलीला का श्रवण क्यों करते? रासपंचाध्यायी के उपसंहार में "हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः" एसा कहा गया है। शंका-कलुषित हृदय कुछ भी शंका करले परन्तु यथावत ऐसा नहीं है। वहाँ हृदयरोग कामादिक का शीघ्र नाश होना कहा गया है। जयदेवादिक महानुभावों ने शृंगारिक-लीला का बर्णन किया है। गौडीय आचार्यों का शृङ्गारबर्णन अधिकतर ग्रन्थों उपलब्ध हैं। अगर हम हृदय में अन्य प्रकार सोचते है तो हम उन साहित्य—रसास्वादन से वञ्चित रह जावेंगे। कलुषित हृदय वाले तार्किकजन इस प्रकार भले सोचले परन्तु भगवद्भक्त इस प्रकार क्यों विचार करेगा। यह अवश्य

मानना होगा कि किसी विषय में अनुकूलभावना व साथ साथ प्रतिकूल भावना अवश्य रहती है। बालक मातृस्तन से मधुर दुग्ध रस का पान करता है अगर स्तन पर जोंक (कीडा विशेष) को रख दिया जावें तो वह स्तन से रक्त पान करेगा। हमारी सृष्टि में बहुत सा अनर्थ आचारण रहेगा अगर ऐसा विचार कर लेते हैं तो ब्रह्माजी अपनी सृष्टि नहीं कर पाते, हमारा इतना कहने का तात्पर्य्य—यह ग्रन्थ राधागोबिन्द की परम रहस्यमयी लीलाओं से परिपूर्ण है अतः इसका प्रकाशन होना उचित नहीं है, इस प्रकार के विचार भक्त जन न करें। बंगाक्षर में कई हजारों संख्या में इसका प्रकाशन होगया है। यह ग्रन्थ परम रहस्य-मय है ऐसा हम जानते हैं परन्तु मन में यह भी बिचार करते हैं कि यदि देवाक्षर में इसका प्रकाशन न किया जावें तो एतद् देशीय वैष्णबजन, बिद्वज्जन इस ग्रन्थ के प्रगाढ़ रस-साहित्य के आस्वादन से बञ्चित रह जावेंगे। भरतादि रसाचार्य्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में रसपद्धति का शास्त्रीय विचार दिया है। उसी पद्धति को लेकर रूपगोस्वामी आदि गौड़ीय आचार्यों ने उज्बलनीलमणि आदि ग्रन्थों की रचना की। भरतादि ने जिस लौकिक कारणादि को लेकर जो रस पद्धति प्रस्ततु की गौड़ीय-आचार्य्यों ने उसको राधा-गोबिन्द की भक्ति रसधारा में ओत प्रोत कर दिव्य रूप और सजीब बना दिया है। भक्ति-रसामृत-सिन्धु व उज्वलनीलमणि का उद्देश्य भी यही है। कविकर्णपूर ने आनन्दवृन्दावन चम्पू में रासादि-लीला का जो सरस बर्णन किया है वह रस—पद्धित से पृथक् नहीं है। गोविन्दलीलामृत में भी ठीक ऐसा ही किया गया है। रसपद्धति के अनुसार जहाँ जिस प्रकार का बर्णन करना उचित है ठीक उसी प्रकार इस में बर्णन किया गया है।

रसपद्धति में कहा गया है कि सम्भोग शृङ्गार-का बर्णन

छल पूर्वक अन्यरसों से करना भावावह व उचित है। इस ग्रन्थ में ठीक ऐसा किया गया है। कहीं तो वीररस में कहीं अद्भुत-रस में कहीं वा अन्य रसों में। साहित्य बासना युक्त विद्वज्जन इस का अनुभव कर सकता है। अस्तु इस समय इस के प्रकाशन की आवश्यकता है। प्रारम्भिक अवस्था में जब मैं कुसुम-सरोवर में रह कर गोबिन्दलीलामृत के श्लोकों को कण्ठस्थ करता था तब मन में प्रबल अभिलाषा होती थी कि इस का वंगाक्षर में तो प्रकाशन हो गया है परन्तु देवाक्षर में हो जाय। तभी से हमारी भीतर की चेष्टा रही। एक बार इसी लिये हम बम्बई गये, वहाँ निर्णयसागर प्रेस के अधिकारियों से इसको-प्रकाशन के लिये प्रार्थना की, परन्तु सफल प्रयन्त नहीं हुये। यह कार्य्य बडा लम्बा व कष्टसाध्य था इस लीये प्रारम्भ करने का साहस नहीं होता था। कभी कभी हताश हो जाता था। अत्यधिक परिश्रम के करण मस्तिष्क में कमजोरी व शरीर में रुग्णता ने घर बना लिया। अभी भी जिन ग्रन्थों का देवाक्षर में प्रकाश करने की लालसा है उन ग्रन्थों का प्रकाशन न हो रहा है इस लिये मन में बडी चिन्ता हो जाती है। न हमारे पास धन का सम्बल है और न जन सहयोग ही। अस्तु—कुछ दिन पहले हमारे परमस्नेही भक्तिपरायण राधामाधब के सेबानिष्ठ, झारसुगुडा निबासी श्रीमान् सेठ मूलचंदजी राधाकुण्ड में आये थे। मैंने उन से इस के प्रकाशन के लिये आग्रह किया, उन्होंने आर्थिकसहायता के लिये सम्मति दे दी। बड़े उत्साह के साथ मैंने इस का प्रारम्भ कर दिया। उन्ही की आर्थिकसहायता से ही अब यह कार्य्य फलोन्मुख हुआ। सेठ जी वर्त्तमान में उडीशादेश के सम्बलपुर जिले में झार-सुगुडा में निवास करते हैं वहाँ पर उन्होंने भक्तियाजन का केन्द्र बनालिया। जिस से आस पास के भक्ति समाज व

मारवाडी समाज में बड़ा प्रभाव पडा हुआ है। वहाँ उन्होंने राधा-माधव का मन्दिर बनबाया है जिस में राधामाधब की सेबा है। मैं एकबार वहाँ गया था कुछ दिन वहाँ उन्हीं के पास रहा भी। मैने उनकी सेवा—परिपाटी देखी कि वे निरन्तर सेवा में तल्लीन रहते हैं। पुजारी वगैरा रहते हुए भी आप स्वयं ही अपने हाथों से राधामाधव की सेवा करते हैं। वे दीर्घजीवी हों यह प्रभु से प्रार्थना है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में निर्दिष्ट समय से कुछ अधिक समय लग गया है। इस लिये मैं सब से क्षमा चाँहता हूँ। सेठ जी के भी कई उत्कंठा पूर्ण पत्र आये थे। परन्तु कई कारणों से प्रकाशन कार्य्य में बिलम्ब हो गया। परिशेष में हम उन दोनों सज्जनों को धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत कर हमें यथा समय प्रदान किया। प्रथमखण्ड(प्रथमसर्ग से ग्यारहसर्गतक)के अनुवाद करने वाला-श्रीमान रघुवरदयाल जी एवं दूसरा खण्ड के (द्वादशसर्ग से शेषतक) मेरे बन्धुवर श्रीयुक्त प्रेमानन्द जी।

मैं ग्रन्थ मुद्रण प्रारम्भ में अस्वस्थ हो गया था अत: प्रथम-खण्ड के अनुवाद शोधनादि होकर ठीक रूप से न होने पाया। द्वितीय संस्करण में हम इस पर ध्यान देंगे। इस में सब से अधिक त्रुटी यह रह गयी कि टीका के साथ यह ग्रन्थ प्रकाशित न होने पाया। इस ग्रन्थ के टीकाकार श्रीबृन्दाबन-चक्रबर्त्ती महोदय हैं और टीका का नाम सदानन्दविधायिनी है, जिस की रचना समाप्ति १७१२ शकाब्द मार्गशीर्ष पूर्णिमा है। बंगाक्षर में यह टीका छप चुकी है। देबाक्षर में इस का प्रकाशन होना परमाबश्यक है। मूल का भाव इसी से प्रस्फुटित हुआ है। इति-

कृष्णदास—

॥ श्रीगोविन्दलीलामृतम् ॥

ॐ प्रथमः सर्गः ॐ

॥ श्रीश्रीराधागोविन्दौ जयताम ॥

श्रीगोविन्दं व्रजानन्द – सन्दोहामन्द – मन्दिरम् ।
वन्दे वृन्दावनानन्दं श्रीराधासङ्गनन्दितम् ॥ १ ॥

योऽज्ञानमत्तं भुवनं कृपालुरुल्लाघयन्नप्यकरोत् प्रमत्तम् ।
स्व-प्रेमसम्पत् सुधयाद्भुतेऽहं श्रीकृष्णचैतन्यममुं प्रपद्ये ॥२॥

श्रीराधाप्राणबन्धोश्चरणकमलयोः केशशेषाद्यगम्या
या साध्या प्रेमसेवा व्रजचरितपरैर्गाढलौल्यैकलभ्या ।
सा स्यात् प्राप्ता यया तां प्रथयितुमधुना मानसीमस्य सेवां
भाव्यां रागाध्वपान्थैर्व्रजमनुचरितं नैत्यिकं तस्य नौमि ॥३॥

जो समस्त व्रजवासियों के आनन्द-समूह के समुद्र हैं, मधुर, श्रीवृन्दावनधाम जिनके आनन्द का मूल-कारण है, और श्रीराधिकाजी के सङ्ग में जो आनन्द में मत्त रहते हैं, उन श्रीगोबिन्द को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

जिन्होंने कृपा करके अज्ञानान्ध समस्त जीवों को भवरोग (संसार) से उद्धार कर अपनी अमृत रूपी प्रेम सम्पत्ति द्वारा उन्मत्त (पागल) बना दिया, ऐसे बिचित्र चेष्टाशाली श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२॥

ब्रह्मा, महादेव और अनन्त आदि भी जिसको समझने में असमर्थ हैं, केवल एक ब्रजलीला के प्रति जब तक किसी का प्रगाढ़ प्रेम और लोलुपता उत्पन्न न हो, उसको नहीं समझा

कुञ्जाद् गोष्ठं निशान्ते प्रविशति कुरुते दोहनान्नाशनाद्यां
प्रातः सायञ्च लीलां विहरति सखिभिः सङ्गवे चारयन गाः।
मध्यान्हे चाथ नक्तं विलसति विपिने राधयाद्धापरान्हे
गोष्ठं याति प्रदोषे रमयति सुहृदो यः स कृष्णोऽवतान्नः ॥४॥
यत्पीतं श्रुति-वाङ्मनोभिरनिशं तृष्णाप्रदं चाद्भुतं
संसारामयहार्य्यपि प्रणयजोन्मादान्ध्य-मोहादिकृत् ।
शश्वच्चर्वितमप्यनल्परसदं देहादि-हृत्पुष्टिदं
तज्जीयादमृतस्पृहाहरमिदं गोविन्दलीलामृतम ॥५॥

जा सकता है, रागानुगामार्ग पर चलने वाले रसिक भक्त जिसका सदैव चिन्तन करते रहते हैं, श्रीराधाजी के प्राण बन्धु श्रीकृष्णजी के चरणारबिन्दों की मानसी प्रेम–सेवा जिस प्रकार भी मिल सके, वही उपाय प्रकाश करने के निमित्त उन श्रीकृष्ण की दिन–प्रतिदिन की लीलाओं को नमस्कार करता हूँ ॥३॥

जो रात्रि व्यतीत होने पर कुञ्ज से गोष्ठ में (नन्दभवन में) प्रवेश करते हैं, जो प्रातःकाल एवं सायंकाल के समय गोदोहन और भोजनादि लीलायें करते हैं, जो दिन के मध्याह्न में और रात्रि में वन के बीच श्रीराधिकाजी के साथ क्रीड़ा करते हैं, संध्या काल होने पर सब सखाओं के साथ गो–चराते क्रीड़ा करते हैं वही श्रीकृष्ण हम सबकी रक्षा करें । ४॥

जिसके पान करने पर श्रुति, मन और वाक्य की तृष्णा निरन्तर बढ़ती रहती है, जो संसार रूपी रोग की शान्ति के लिये महाऔषध होते हुए भी श्रीकृष्णजी के प्रेम से उत्पन्न हुई उन्मत्तता, अन्धता एवं मोह इत्यादि की वृद्धि करती है, जो बार बार चर्वण करने पर सदैव अखण्डरस देती रहती है और अधिक क्या कहा जाये जो श्रीगोविन्दलीलारूपी अमृत देह

अपटुरति तटस्थस्तुच्छबुद्धयामपात्र--
पुरुरसकलनेच्छुः कृष्णलीलामृताब्धेः ।
निरवधि हि तदन्तः क्रीडतां वैष्णवानां
किमु नहि भविताहं हास्यहेतुर्गरीयान् ॥६॥
श्रीरूपसम्राट-विकाशित-कृष्णलीला—
लास्यामृताप्लुतधियां व्रजवैष्णवानाम् ।
हास-प्रकाशनकरी प्रमद-प्रदा वाङ्
मन्दस्य मे भवतु भण्डतरस्य यद्वन् ॥७॥
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन्प्रतीत्यादिमद्युक्तिनोदितः ।
मन्दोऽपि गोविन्द विलासवर्णनै र्मन्दां
गिरं स्वां विदधे सदादृताम् ॥८॥

इत्यादि के लिये पुष्टिकर है, अमृत या मोक्ष तक की इच्छा (लोभ) को दूर करने वाले उस श्रीगोबिन्दलीलामृत की जय हो ।५॥

मैं तुच्छ बुद्धि, दूरस्थ, अनिपुण और अपात्र होते हुए श्रीकृष्णजी की लीला-अमृत कथा समुद्र के रस का वर्णन करने में प्रवृत्त हूँ, इससे क्या उस सागर के बीच विचरण करने वाले समस्त वैष्णवगण के महान हास्य रूप नहीं बनूँगा ॥६॥

जिन समस्त व्रजवासी-वैष्णवों ने विद्वान्, नाट्यकार श्री रूपगोस्वामिजी के विदग्धमाधव इत्यादि ग्रन्थों का पाठ किया है, वे मेरे इस ग्रन्थ को पढ़कर मुझको वञ्चक (भण्ड) कह कर कितना उपहास करेंगे अर्थात् बहुत ही हँसी करेंगे ऐसा मुझे दीख पड़ता है ॥७॥

साधुजनों का कहना है कि श्रीभगवान् के गुणानुवाद की रचना सुन्दर और मनोहर होते हुए भी समस्त जीवधारियों के

मद्‌आस्यमरुसञ्चारखिन्नां गां गोकुलोन्मुखीम् ।
सन्तः पुष्णन्त्विमां स्निग्धाः कर्णकासारसन्निधौ ॥६॥
रात्र्यन्ते त्रस्तवृन्देरितबहुविरवैर्बोधितौ कीरसारी
पद्यैर्हृद्यैरहृद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदितरतिललितौ कक्खटीगीः सशङ्कौ
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निजनिजधाम्न्याप्ततल्पौ स्मरामि ॥१०

पापों का नाश कर देती है। मैं तो एक अति तुच्छ बुद्धि वाला क्षुद्र जीव हूँ, किन्तु भगवद्‌गुणानुवाद के कारण मेरी यह मन्द वाणी भी साधुजनों की आदरणीया होगी, अतः इसी प्रेरणा के बल पर श्रीगोबिन्दलीलामृत का वर्णन कर रहा हूँ ॥८॥

जिस प्रकार मरुभूमि में विचरण करने के कारण दुर्बल गाय को सरोवर, स्थान (अर्थात् हरी-हरी घास और शीतल जगह विश्राम के लिये) देता है, उसी प्रकार विद्वान् लोग मेरे मुख रूपी मरुभूमि में रहने वाली गोकुलोन्मुखी वाणी को अपने अपने कर्णरूप सरोवर के किनारे स्थान प्रदान करेंगे अर्थात् मेरी इस रचना को प्रेम और आदरपूर्वक श्रवण करेंगे ॥६॥

श्रीवृन्दादेवी, अब भोर होने जा रहा है इस आशंका से श्रीराधाकृष्ण को जगाने के निमित्त समस्त शुक-सारिकादि पक्षियों को बुलाती हैं। उस समय उन सबके कोलाहल और प्रिय-अप्रिय कविताओं के पाठ से जागे हुए, विलास-क्रीड़ा से आलस्य प्राप्त, झरोखों से सखियों द्वारा दृष्ट एवं प्रसन्नता प्राप्त और कक्खटी नाम की बन्दरिया की चीत्कार के कारण शङ्का युक्त श्रीराधिका एवं श्रीकृष्ण एक दूसरे की ओर लालसा से देखते हुए अपने-अपने घर जाने के पहिले शय्या पर विराजमान होते हैं, उन श्रीराधाकृष्ण का हम स्मरण करते हैं ॥१०॥

निशावसानं समवेदय बृन्दा बृन्दं द्विजानां निजशासनस्थम् ।
नियोजयामास सराधिकस्य प्रबोधनार्थं मधुसूदनस्य ॥११॥
आसन् यदर्थं प्रथमं द्विजेन्द्राः सेवासमुत्कण्ठधियोऽपि मूकाः ।
बृन्दानिदेशं तमवाप्य हृष्टात् क्रीडानिकुञ्जं परितश्च कूजुः ॥१२
द्राक्षासु सार्य्यः करकेषु कीराः जगुः पिकीभिश्च पिका रसाले ।
पीलौ कपोताः प्रियके मयूराः लतासु भृङ्गा भुवि ताम्रचूडाः ॥१३॥
अथालिबृन्दं मकरन्दलुब्धं रतीशितुर्मङ्गलकम्बुतुल्यम् ।
प्रफुल्लबल्लीचयमञ्जुकुञ्जे जुगुञ्ज तल्पीकृतकञ्जपुञ्जे ॥१४॥

रात्रि व्यतीत हुई जानकर श्रीवृन्दादेवी श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण को जगाने के हेतु अपने आश्रित सब पक्षिगण को सचेत करने लगीं ॥११॥

उनके अनुचर वे सब पक्षी अपनी अपनी सेवा के लिये उत्कंठित होकर पहले से मौनी होकर कुञ्ज में गूँगे के समान बैठे थे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा पाकर आनन्द के साथ कुञ्जके इधर उधर हर्ष के साथ कलरव करने लगे ॥ २॥

द्राक्षालता पर सारिकागण, दाड़िमवृक्ष पर शुकगण, आम्र-शाखाओं पर कोकिल और कोकिला, पीलू वृक्ष पर कवूतर समूह, कदम्बवृक्ष पर मयूरगण, लताओं में भ्रमरगण और पृथिवी पर समस्त कुक्कुट कलरव ध्वनि करने लगे ॥१३॥

उस समय मकरन्द के लोभ से उद्विग्न भ्रमर-गण प्रफुल्ल लताओं से मनोहर तथा कमलवन से शय्यायमान कुञ्जों में प्रविष्ट हो इस प्रकार कूँजने लगे मानो कामदेव की शुभकामना के लिये शङ्खध्वनि कर रहे हैं ॥१४॥

झंकृतिमङ्गीकुरूते रतिमङ्गलझल्लरीव गोविन्दम् ।
बोधयितुं मधुमत्ता मधुपीतति–रुद्भटानन्दा ॥१५॥

पिकश्रेणी मनोजस्य वीणेव व्यक्तपञ्चमम् ।
आललाप स्वरं तारं कुहरिति मुहुर्मुहुः ॥१६॥

रतिमधुरविपञ्ची–नाद–भङ्गीं दधाना
मदन–मद–विकूजत्कान्तपार्श्वे निषण्णा ।
मृदुल–मुकुल–ज्वालास्वाद–विस्पष्टकण्ठी
कलयति सहकारे काकलीं कोकिलाली ॥१७॥

विद्राव्य गोपीधृति–धर्मचर्य्या लज्जामृगीर्मानवृकेष्वमर्षी ।
कपोतघूत्कारमिषेण शङ्के गर्ज्जत्ययं कामतरक्षुराजः ॥१८॥

एवं मधुपान से उन्मत्त उद्भट आनन्द युक्त भ्रमरी-गण भी उसी समय श्रीकृष्ण को जगाने के निमित्त आनन्द पूर्वक कामदेव की स्त्री रति के मंगल स्वरूप झाँझवाद्य की झङ्कार के समान ध्वनि करने में प्रवृत्त हो गई ॥१५॥

समस्त कोकिल–झुन्ड कामदेव की वीणा के समान बारवार कुहू कुहू शब्द का पञ्चमस्वर में आलाप करने लगी ॥१६

कोकिला–गण कामोन्मत्त होकर कोमल आमकली के रसास्वाद से परिपूर्ण अति शौरभशाली आम्रवृक्ष पर अपने अपने जोड़े के समीप बैठकर सुस्पष्टकण्ठ से बीणा के सदृश मनोहर अव्यक्त मधुर ध्वनि करने लगीं ॥१७॥

उसी समय अवसर पाकर कामदेव कबूतर की घूत्कार छल से विशाल व्याघ्र के समान गर्जना करने लगा मानो समस्त गोपियों के धैर्य्य, धर्म्म और लज्जा रूपिणी मृगी एवं मान रूप मृग को वध करने के निमित्त आया है ॥१८॥

राधाधैर्य्यधराधरोद्धृतिविधौ केऽन्ये समर्था बिना
कृष्णं कृष्णसुमत्त कुञ्जरवशीकारेऽप्यलं शृङ्खलाः ।
अन्याः का वृषभानुजामिह बिना धन्यामतीवादृताः
केकाः किं समुदीरयन्ति शिखिनस्तौ बोधयन्तः प्रगे ॥१६॥

ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतैर्युक्तं कु कू कू कू इति स्वरम् ।
कुक्कुटोऽप्यपठत् प्रातर्बेदाभ्यासी बटुर्यथा ॥२०॥

अथ पक्षिणां कलकलैः प्रबोधिता-
वपि तौ मिथोऽविदितजागरौ तदा ।
निबिडोपगूहन-विभङ्ग-कातरौ
कपटेन मीलित-दृशावतिष्ठताम् ॥२१॥

श्रीकृष्ण के अतिरिक्त श्रीराधाके धैर्य्यरूपी पर्वत् के गर्व को कौन नीचा (खर्व) करने में समर्थ हो सकता है एवं श्रीराधाके अतिरिक्त कृष्णरूपी मत्त-हस्ती को वश में करने की जंजीर (श्रृङ्खला) कहकर और किसको आदर अथवा धन्यवाद दिया जा सकता है, अतः समस्त मयूरगण यही समझाने के हेतु मानो प्रातःकाल में केकायुक्त मधुर कलरव द्वारा श्रीराधाकृष्ण की निद्रा भंग करने में प्रवृत्त हुए । यहाँ केका शब्द से पुरुषबाची कौन एवं स्त्रीबाची कौन ध्वनित हैं ॥१६॥

प्रातःकाल जिस प्रकार ब्राह्मण-बालक ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वर में वेदपाठ करते हैं उसी प्रकार कुक्कुटगण कु कू कू कू शब्द बोलने लगे ॥२०॥

उस समय श्रीकृष्ण और श्रीराधिका पक्षियों के कलरव गान से जागने पर भी एक दूसरे को जाग्रत अवस्था में अनुभव न कर सके और गाढ़ आलिंगन के सुख की उपलब्धी करते करते

अथ तौ स्फुरत्कनकपिञ्जरस्थिता वृषभानुजातिदयिता सुपंडिता।
अवदन्निशानिखिलकेलिसाक्षिणी गृहसारिकाप्युषसि मञ्जुभाषिणी
गोकुलवन्धो जय रससिन्धो ! जागृहि तल्पं त्यज शशिकल्पम्।
प्रीत्यनुकूलां श्रितभुजमूलां वोधय कान्तां रतिभरतान्ताम् ॥२२,२३॥

उदयं प्रजवोदयमेत्यरुणास्तरुणी-निचये सहजाऽकरुणः।
निभृतं निलयं व्रजनाथ ! ततस्त्वरितोऽट कलिन्दसुतातटतः॥२४॥

कमलमुखि ! विलासायासगाढ़ालसाङ्गी
स्वपिषि सखि ! निशान्ते यत्त्वायं न दोषः।

पीछे इस सुख का भंग न हो जाय, अतः कपट निद्रा में आँखें मूदे पड़े रहे ॥२१॥

श्रीराधा-कृष्ण के बिहार वर्णन करने में दक्षा मञ्जुभाषी नाम वाली वही सारी जो श्रीराधाजी की प्रियतमा एवं समस्त निशाक्रीड़ा की साक्षि-स्वरूपा है, ऊषाकाल उपस्थित होने पर उज्वल-स्वर्ण पिंजरे में वैठी हुई कहने लगी-"हे गोकुलाधिपति ! हे रससागर तुम्हारी जय हो। इस समय निद्रा का त्याग करो, चन्द्रमा के समान उज्ज्वलशय्या को छोड़ दो। परम प्रणयिनी, भुजमूलाश्रिता और क्रीड़ाभार से क्लान्त हुई श्रीराधाजी को जाग्रत करो ॥२२,२३॥

हे नाथ ! अत्यन्त निष्ठुर नवोदित सूर्य्य जो युवतिगण में सहज निर्दय (प्रतिकूल रूप) है वह अति वेग के साथ उदयाचल की ओर गमनकर रहा है-तुम यमुना किनारा परित्याग करके शीघ्र एकान्त स्थान में चले जाओ ॥२४ ॥

हे कमलमुखी सखी ! विलास के परिश्रम से उत्पन्न हुए अतिशय आलस्य को परित्याग करने के लिये ऊषाकाल में निद्रा सुख का अनुभव कर रही हो, हे साध्वि ! इसमें तुम्हारा कुछ

दिगियमरुणितैन्द्री किन्तु पश्याविरासी-
त्तव सुखमसहिष्णुः साध्वि ! चन्द्रासखीव ॥२५॥

याता रजनी प्रातर्जातं सौरं मंडलमुदयं प्राप्तम ।
सम्प्रति शीतलपल्लवशयने रुचिमपनय सखि ! पंकजनयने ॥

कृष्णानुराग-गरिमाथ विचक्षणाख्यः
कीरोऽति धीरमतिरुद्भटवाग्वरिष्ठः ।
दीप्तः प्रसन्न-मधुराक्षरसंघहृद्यां
पद्यावलीं पठति माधवबोधदक्षाम् ॥२७॥

जय जय गोकुल-मङ्गलकन्द व्रजयुवतीततिभृंग्यरविन्द !
प्रतिपद-वर्द्धितनन्दानन्द श्रीगोविन्दाच्युत नतशंद ॥२८॥

दोष नहीं है। यह देखो पूर्वदिशा रूपी वधु तुम्हारे सुख को देखकर असन्तोष प्रकाश करते करते चन्द्रावली के समान क्रोध में रक्तवर्ण हो गई है ॥२५॥

हे कमलाक्षी ? हे सखी ? रात्रि समाप्त हो चुकी है, प्रातःकाल हो गया है, सूर्य्यदेव ने उदयाचल की ओर यात्रा करली है, इस समय शीतल नवीन-पत्रवाली शय्या के सुख का परित्याग करदो ॥२६॥

इसके उपरान्त विलक्षण नाम से प्रसिद्ध, धीरस्वभाव, कृष्ण में गाढ़अनुरागी शुक जो कि वहां उपस्थित था वह श्रीकृष्ण की निद्राभंग करने में उपयोगी सरस मधुर-वर्णावली युक्त मनोहर पद्य का पाठ करने लगा ॥२७॥

हे अच्युत ! तुम्हारी जय हो, तुम समस्त व्रजवासियों के मंगल के आश्रय हो, तुम सकल भ्रमरी रूपी व्रजरमणीगण के लिये कमल स्वरूप हो और हर प्रकार से नन्दराजा के हर्ष और

प्रभातमायातमशेष–घोष–तृषार्तनेत्र–भ्रमरारविन्द !।
गरिष्ठ भूयिष्ठ-विशिष्ट–निष्ठं गोष्ठं प्रतिष्ठस्व दविष्ठमिष्टम् ॥२६॥

सरसिजनयनेनं व्यक्तरागातिरक्तं
दिगियमुदयमैन्द्री पश्य वीक्षाकृतुम ।
घनघुसृण–विलिप्तेवोढ़रक्ताम्बरासी–
त्वदिह निभृतकुञ्जे कृष्ण ! निद्रां जहीहि ॥३०॥

विधुना सहिता सवितुश्चकिता रजनी वनिता चलिता त्वरिता।
अनया समया प्रियया त्वरया सहितः सरितस्तटतोऽट ततः ॥३१॥

आनन्द को बढ़ाते रहते हो । हे शरणागत–वत्सल ! हे गोविन्द ! तुमको नमस्कार है ॥२८॥

हे गोविन्द ! तुम समस्त व्रजवासियों के सतृष्ण–नेत्र-भ्रमरों के कमल स्वरूप हो। समस्त पूजनीय व्यक्ति जिनका अनुराग कभी नाश नहीं होता है वे उत्कण्ठा के साथ गोचारण-लीला के लिये तुम्हारे गमनकाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये उस दूरवर्ती गोचारण स्थानपर पहुँचकर उनकी इष्टकामना पूर्ण करो ॥२६॥

हे कमलनयन ? वह देखो, सूर्य्यदेव क्रोधावेश में रक्तवर्ण होकर उदयगिरि की यात्रा कर रहे हैं। पूर्व–दिशा रूपिणी नव विवाहिता रमणी उनका दर्शन करते करते किरणों के जाल में फँसकर मानो रक्तवर्ण वस्त्र धारण करने लगी है, इसलिये हे कृष्ण ! इस निर्जन कुञ्ज में निद्रा परित्याग करो । ॥३०॥

हे कृष्ण ! यह देखो रात्रीरूपी रमणी सूर्य्यदेव के भय से शीघ्रता से चन्द्रदेव के साथ भागी जारही है, तुमभी अपनी कान्ता श्रीराधाजी सहित यमुना किनारे से चले जाओ ॥३१॥

एकं प्राच्यामरुणकिरणापाटलायां विधत्ते
चक्षुःकान्ते त्वरितमपरं दूरगे चक्रवाकी ।
शंकाक्रान्तास्तरु-कुहरगा मूकतां यान्ति घूकाः
शंके भास्वानुदयमुदगात्कृष्ण ? निद्रां जहीहि ॥३२॥

वृन्दावक्त्रादधिगतविद्या सारी हारीकृतबहुपद्या ।
राधास्नेहाश्रयमधुमत्ता तस्या निद्रापनयनयत्ता ॥३३॥

कलवाक् सूक्ष्मधी नाम्नी प्रेमोत्फुल्लतनूरुहा
स्वरसज्ञा-रङ्गभूमौ ततो वाणीमनर्त्तयत् ॥३४॥ युग्मकम् ॥

व्रजन्ति सर्वतो जना न यावदध्वनि व्रजे ।
व्रजेन्द्रनन्दनप्रिये व्रजाशु तावदालयम् ॥३५॥

रात्री व्यतीत हो जानेपर चकवी, पूर्वदिशा की ओर जो कि सूर्य्य की आभा से रक्तवर्ण हो गई है वह, एक नेत्र द्वारा दृष्टिपात कर रही है और दूसरे नेत्र द्वारा अति दूरवर्ती अपने पति का निरीक्षण कर रही है। दिवागमन से भयभीत उल्लू पक्षी वृक्ष कोटरों में प्रवेश कर रहे हैं। सूर्य्य उदयाचल की ओर चले जा रहे हैं, इस लिये हे नाथ ! निद्रा का परित्याग कर दो ॥३२॥

वहाँ श्रीराधाजी की प्रेम-पात्री अर्थात् प्रेम मधुपान से उन्मत्ता मयना (सारी) जिसने श्रीवृन्दादेवी की सिखलाई हुई समस्त विद्या को गले के हार के समान कण्ठस्थ कर लिया था वह श्रीमतीजी की निद्रा-भंग करने का प्रयास करने लगी ॥३३॥

मिष्ठभाषिणी एवं प्रेम से पुलकायमाना सूक्ष्मधी नाम वाली सारिका अपनी जिह्वा-रूपिणि रंगभूमि पर वाणी को नृत्य कराने लगी ॥३४॥

हे कृष्णप्रेयसी श्रीराधे ! व्रज के समस्त मार्गों पर जन-समूह के गमनागमन करने के पहिले ही तुम शीघ्र अपने

सुमुखि ततस्त्वरितमितस्त्यज शयनं व्रज भवनम् ।
उदयधरं सरति परं त्वरितगतिर्दिवसपतिः ॥३६॥

निद्रां जहीहि विजहीहि निकुञ्जशय्यां
वासं प्रयाहि सखि नालसतां प्रयाहि ।
कान्तञ्च बोधय न बोधय लोकलज्जां
कालोचितां हि कृतिनः कृतिमुन्नयन्ति ॥३७॥

कृष्णोऽप्यनिद्रः प्रिययोपगूढः कान्ताप्यनिद्राऽप्यमुनोपगूढा।
तल्पात्प्रभाताकुलमप्यनल्पाश्लेषोत्थात्मेतन्मिथुनं शशाक ॥३८॥

कृष्णस्य जानूपरियन्त्रितसन्नितम्वा
वक्षःस्थले धृतकुचा वदनेऽर्पितास्या ।

घर का मार्ग लो ॥३५॥

हे सुन्दरमुखी ! देखो ना सूर्य्यदेव शीघ्रता से उदयाचल की ओर गमन कर रहे हैं अतः निद्रा छोड़कर घरके लिये प्रस्थान करो ॥३६॥

हे सखी, राधे ! अब निद्रा छोड़दो, अपने प्रियतम को सचेत करो, निकुञ्जशय्या का त्याग करो, आलस्य को छोड़ कर अपने घर जाओ, कार्य्य-कुशल व्यक्तिगण समयोचित चेष्टा का त्याग नहीं करते हैं, जिससे लोकलज्जा का प्रकाश न होने पाये ऐसा करो ॥३७॥

प्रभात होने पर भी एक दूसरे के प्रगाढ़ आलिङ्गन पाश को दूर करने में असमर्थ श्रीराधा और श्रीकृष्ण जागते हुए भी चञ्चलचित्त से उस गाढ़ आलिगंन सुख का अनुभव करते हुए शय्या न छोड़ सके ॥३८॥

श्रीराधाजी प्रातःकाल के समय जाग्रत अवस्था को प्राप्त होती हुई भी, श्रीकृष्ण की दोनों जङ्घाओं में अपनी कटि, वक्षस्थल में

कण्ठे निवेशितभुजाऽस्य भुजोपधाना
कान्ता न होङ्गति मनागपि लब्धबाधा ॥३६॥
गोष्टायन-त्वरितधीः शयनात्समुत्को-
प्युत्थातुमेकमपि रीङ्गयति स्वमङ्गम् ।
राधाङ्गगाढ़परिरम्भगारंङ्गभङ्ग-
शंका विशृङ्खलमना न मनाक् प्रियोऽपि ॥४०॥
श्रीकृष्णलीला-रचनासुदक्षस्तत्प्रेमजानन्दविफुल्लपक्षः ।
दक्षाख्य आह श्रित-कुञ्जकक्षः शुकः समध्यापित-कीरलक्षः ॥४१॥
आतोऽरण्य-भ्रमणभरतः सुष्टु निद्राति वत्स-
स्तस्मादुच्चैर्न दधिमथनं दासिका संविधेयम् ।

अपनी दोनों कुचायें, मुखारविन्द को मुखारविन्द में अर्पण कर दोनों भुजाओं द्वारा कण्ठ आलिङ्गन और उनकी दोनों भुजाओं का तकिया बनाकर आलस्य और निद्रा के वशीभूत अपने शरीर को सञ्चालन करने में असमर्थ रहीं। अर्थात् शय्या परित्याग न कर सकीं ॥३६॥

श्रीकृष्ण गोचारण केलिये पहिले शय्या परित्याग करने के निमित्त चञ्चल हो उठे, किन्तु श्रीराधाजी के शरीर के प्रगाढ़ आलिङ्गन रंग भंग होने की आशंका से अपने अंग को पृथक करने में असमर्थ हो रहे थे ॥४०॥

कुञ्ज में पहले से ही बैठा हुआ दक्ष नाम का एक तोता (शुक) जो लाखों शुकों का अध्यापक था और श्रीकृष्णलीलाओं को गायन करने में अच्छा पंडित था वह आनन्द से पुलकाय-मान हो अपने दोनो परों को फैलाकर कहने लगा ॥४१॥

अरी दासिओ ! वत्स श्रीकृष्ण वन वन घूमने के कारण श्रम को प्राप्त हुआ है और इस समय निद्रा-सुख अनुभव

नेत्थं यावद् गृहमधि जनन्यालपन्त्युत्थिता ते
तावत्तूर्णं प्रविश निभृतं कृष्ण शय्यानिकेतम ॥४२॥

कालिन्द्याद्यास्तव सुरभयः स्तब्धकर्णोर्ध्ववक्त्रा
हंवारावैरुषसि तृषिताश्चाह्वयन्त्यः स्ववत्सान ।
युष्मन्मार्गे निहित-नयनास्त्वन्मुखालोकनोत्काः
सीदन्त्यूधोभरजनितया पीडयेति प्रतीहि ॥४३॥

समाप्य वैभातिककृत्यमुक्ता मा पौर्णमासी सह ते जनन्या ।
द्रष्टुं भवन्तं प्रविशेन्न यावच्छय्यालयं तावदुपैहि तूर्णम ॥४४॥

अथ कीरगिरा गोष्ठगमने सत्वरो हरिः ।
उत्तस्थौ निभृतं स्वाङ्गान्यपकृष्य प्रियाङ्गतः ॥४५॥

कर रहा है इसलिये तुम सब चुपचाप दधि मन्थन करो। हे कृष्ण ! अपनी माता श्रीयशोदाजी के शय्या परित्याग करने के एवं इस प्रकार बोलने के पहिले ही तुमको छिपकर अपने शयनागार में शीघ्र पहुँच जाना चाहिये ॥४२॥

हे गोविन्द ! तुमको निवेदन किया जाता है कि तुम्हारी कालिन्दी आदि सब गो कान खड़े करके अपने भूखे बछड़ों को बुलाने के लिये हम्वा हम्वा शब्द कर रही हैं, दूध के भार से उनके स्तन पीड़ा-अनुभव कर रहे हैं और तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा से मार्ग की ओर दृष्टि किये खड़ी हुई हैं ॥४३॥

देवी पौर्णमासी प्रातःकर्म्म समाप्त करके तुम्हारी माता सहित जब तक तुमको देखने न आवें इसके पहिले ही तुम शीघ्र शयनगृह में चले जाओ ॥४४॥

शुक के इस निर्देश को श्रवणकर श्रीकृष्ण शीघ्रता से गोचारण को जाने के लिये श्रीराधाजी के अंग से अपने अंग को

पूर्वं प्रबुद्धा अथ तद्वयस्या निकुञ्जजालाध्वसमर्पितास्याः ।
बृन्दा-समेता ददृशुर्मृदूनि तयोः प्रभातोद्गत-चेष्टितानि ॥४६॥

राधिका रतिभरैरथोद्धता स्वप्रियं प्रियकृतः कलापिनी ।
सुन्दरीति विदिता विसृज्य तह्याजिगाम रतिमन्दिराङ्गनम ॥४७॥

ततः कदम्बादवरुह्य तूर्णमुन्मण्डलीकृत्य कलापवृन्दम् ।
पुरो नरीनर्त्ति मुदा परीतो नाम्ना हरेस्ताण्डविकः कलापी ॥४८॥

सपदि हरिणीरङ्गिण्याख्या विहाय निजप्रियं
मुदितहृदया कुञ्जद्वारं रसाल-तलात्तदा ।
द्रुततरगतिर्गत्वा प्रेम्णा विलोल-विलोचनं
विनिहितवती वक्त्राम्भोजे स्वजीवितनाथयोः ॥४९॥

धीरे धीरे पृथक् करके खड़े हो गये अर्थात् शय्या का परित्याग कर दिया ॥४५॥

इस बीच में श्रीललिता आदि श्रीराधाकृष्ण की सब सखियाँ पहिले ही जाग चुकी थीं और श्रीबृन्दादेवी के साथ निकुञ्ज की खिड़कियों के झरोखों में से श्रीराधाकृष्ण की प्रभात कालोचित कोमलक्रीड़ा का दर्शन करने लगीं ॥४६॥

इसी समय सुन्दरी नाम की एक मयूरी अपने पति का सहवास त्यागकर कदम्ब-बृक्ष से उतरकर निकुञ्ज के आँगन में आ खड़ी हुई ॥४७॥

इसके पश्चात् ताण्डविक नाम का मयूर कदम्ब-बृक्ष से उतरकर अपनी पुच्छ को फैलाते फैलाते आनन्दमग्न हो श्रीकृष्ण के चारों ओर नृत्य करने लगा ॥४८॥

उसी समय रङ्गिणी नाम की एक हरिणी अपने पति को छोड़कर प्रसन्नचित्त तथा शीघ्रता से आमके बृक्ष के नीचे

ययौ निकुञ्जं स हरेः कुरंगः कृष्णानने प्रेरितदृक्तरंगः।
नाम्ना सुरंगः कृतकृष्णरंगस्तदाम्रमूलादलमावशाङ्कः ॥५०॥
उत्थायेशः शान्निविष्टोऽथ तल्पे व्याजान्निद्राशालिनीं मीलिताक्षीम्।
दोर्भ्यां कान्तां स्वाङ्कमानीय तान्तांम्पश्यत्यस्या माधुरीं माधुरीति॥
घूर्णायमानेक्षणखञ्जरीटं ललाटलोलालकभृंगजालम्।
मुखं प्रभाताब्जनिभं प्रियायाः पपौ दृशेषत्स्मितमच्युतोऽसौ ॥५२॥
संश्लिष्टसर्वाङ्गुलिबाहुयुग्ममुन्मथ्य देहं परिमोटयन्तीम्।
उद्बुद्ध जृम्भास्फुटदन्तकान्तिमालोक्य कान्तां मुमुहे मुकुन्दः ॥५३॥

से कुञ्ज के द्वार पर आकर प्रेम-चञ्चल नेत्रों से जीवननाथ श्रीराधाकृष्ण के मुखकमल की ओर दृष्टिपात करने लगा ॥४९॥

इसके उपरान्त सुरंग नाम का एक अन्य मृग श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा से नेत्र फाड़े आम्रवृक्ष के नीचे से निकलकर श्रीकृष्ण की खोज में उछलता कूदता, आलय त्यागकर निकुञ्ज की ओर दौड़ने लगा ॥५०॥

इस बीच श्रीकृष्ण निद्रा त्यागकर शय्या के ऊपर बैठ गये और कपट निद्रा से आखें बन्द की हुई और क्लान्त श्रीराधाजी को अपनी भुजाओं से गोद में लेकर माधुरीति से उनकी रूप माधुरी का दर्शन करने लगे ॥५१॥

इसके बाद श्रीकृष्ण श्रीराधाजी को जगाकर मन्द मन्द मुसकराते हुए उनके खञ्जन-पक्षी के समान चञ्चल नेत्रों का, भौरों की पंक्ति के समान केशराशि से सोभायमान मस्तक का और प्रभात समय के खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुखारविन्द का नेत्रों द्वारा पान करने लगे ॥५२॥

जो सब उँगलियों को एक दूसरेमें सटाकर दोनों भुजाओं को ऊँचा किये अँगड़ाई ले रही हैं और जमुहाई लेते समय

ययौ निकुञ्जं स हरेः कुरंगः कृष्णानने प्रेरितदृक्तरंगः।
नाम्ना सुरंगः कृतकृष्णरंगस्तदाम्रमूलाद्गलमावशाङ्कः ॥५०॥
उत्थायेशः शान्निविष्टोऽथ तल्पे व्याजान्निद्राशालिनीं मीलिताक्षीम्।
दोर्भ्यां कान्तां स्वाङ्कमानीय तान्तां पश्यत्यस्या माधुरीं माधुरीति॥
घूर्णायमानेक्षणखञ्जरीटं ललाटलोलालकभृंगजालम्।
मुखं प्रभाताब्जनिभं प्रियायाः पपौ दृशेषत्स्मितमच्युतोऽसौ ॥५२॥
संश्लिष्टसर्वाङ्गुलिबाहुयुग्ममुन्नम्य देहं परिमोटयन्तीम्।
उद्बुद्ध जृम्भास्फुटदन्तकान्तिमालोक्य कान्तां मुमुहे मुकुन्दः॥५३॥

से कुञ्ज के द्वार पर आकर प्रेम-चञ्चल नेत्रों से जीवननाथ श्रीराधाकृष्ण के मुखकमल की ओर दृष्टिपात करने लगा ॥४६॥

इसके उपरान्त सुरंग नाम का एक अन्य मृग श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा से नेत्र फाड़े आम्रवृक्ष के नीचे से निकलकर श्रीकृष्ण की खोज में उछलता कूदता, आलस्य त्यागकर निकुञ्ज की ओर दौड़ने लगा ॥५०॥

इस बीच श्रीकृष्ण निद्रा त्यागकर शय्या के ऊपर बैठगये और कपट निद्रा से आखें बन्द की हुई और क्लान्त श्रीराधाजी को अपनी भुजाओं से गोद में लेकर साधुरीति से उनकी रूप माधुरी का दर्शन करने लगे ॥५१॥

इसके बाद श्रीकृष्ण श्रीराधाजी को जगाकर मन्द मन्द मुसकराते हुए उनके खञ्जन-पक्षी के समान चञ्चल नेत्रों का, भौरों की पंक्ति के समान केशराशि से सोभायमान मस्तक का और प्रभात समय के खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुखारविन्द का नेत्रों द्वारा पान करने लगे ॥५२॥

जो सब उँगलियों को एक दूसरेमें सटाकर दोनों भुजाओं को ऊँचा किये अँगुड़ाई ले रही हैं और जमुहाई लेते समय

स्वीयाङ्कोत्तानसुप्तामुषसि मृदु मृषा रोदनेपल्स्मिताभ्या-
मर्द्धोन्मुक्ताप्तकेशां विमृदित-कुसुम-स्रग्धरां छिन्नहाराम।
उन्मील्योन्मील्य घूर्णालस-नयनयुगं स्वाननालोकनोत्कां
कान्तां तां केलितान्तां मुदमतुलतमामाप पश्यन व्रजेन्दुः ॥५४॥
हेमाब्जांग्याः प्रबल-सुरतायास-जातालसायाः
कान्तस्याङ्के निहित-वपुषः स्निग्ध-तापिञ्छ-कान्तेः।
शम्पाकम्पा नवजलधरे स्थास्नुतां चेद्धास्यन
श्रीराधायाः स्फुटमिह तदा साम्यकक्षामवाप्स्यत् ॥५५॥
स्फुरन्मकर-कुण्डलं मधुरमंदहासोदयं
मदालस-विलोचनं कमलगन्धि-लोलालकम्।

जिनके सब दाँतों की शोभा प्रकाश पारही है ऐसी प्रियतमा श्रीराधाको देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त सुखी हुए ॥५३॥

प्रातःकाल होनेपर अपनी गोद में ऊर्ध्वमुख लेटी हुई, मधुर मन्दहास्य से युक्त, बनावटी खेद (विलाप) प्रकट करती हुई, बाल बिखेरे हुई, भिन्न भिन्न मोतियों का हार और फूल माला पहिने हुई, अनुरागभरी अपने दर्शनों की लालसा से उत्सुक, क्रीड़ाक्लान्त प्रियतमा श्रीराधाजी का दर्शन कर श्रीकृष्णजी अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए ॥५४॥

अतिशय रतिक्रीड़ा चेष्टा के कारण आलस्य युक्त स्वर्ण कमल के समान श्रीराधाजी का शरीर तमालबृक्ष के समान श्यामवर्ण श्रीकृष्णजी के अंग से स्पर्श प्राप्त हुआ था, ऐसा ज्ञात होता था मानो बिजली की लता नवजात-बादलमें दृढ़ता से स्थिर हो गई है ॥५५॥

श्रीकृष्ण के कमल की सुगन्ध से सुगन्धित चञ्चल केश राशियों से शोभायमान, दशनक्षत और काजल के धब्बों से

मुखं स्वदशनक्षताञ्जनमलीमसौष्ठं हरेः
समीक्ष्य कमलेक्षणा पुनरभूद्विलासोत्सुका ॥५६॥
परस्परालोकनजातलज्जा-निवृत्त-चञ्चद्दरकुञ्चिताक्षम् ।
ईषत्स्मितं वीक्ष्य मुखं प्रियाया उद्दीप्ततृष्णः पुनरास कृष्णः ॥५७॥
वामेन चाधः शिर उन्नमय्य करेण तस्याश्चिबुकं परेण ।
विभुग्नकण्ठस्मितशोभिगण्डं मुखं प्रियाया स मुहुश्च चुम्ब ॥५८॥
कान्ताधरस्पर्श-सुखाब्धिमग्ना करं धुनाना-दर-कुञ्चिताक्षी ।
मामेति मन्दाक्षर-मन्नकण्ठी सखीदृशां सा मुदमाततान ॥५९॥

रञ्जित (चिन्हित), मनको हरने वाले मकराकार कुण्डलों से आच्छादित एवं मन्द मन्द हास्य से युक्त मुखार-विन्द के दर्शन करके श्रीराधाजी पुनः रतिक्रीड़ा के लिये उत्सुक हो उठीं ॥५६॥

एक दूसरे के प्रति देखने के कारण किञ्चित् लज्जायुक्त एवं संकुचित नेत्रों द्वारा शोभायमाना प्रियतमा श्रीराधाजी के मन्द मन्द हास्ययुक्त मुखारविन्द का दर्शन करके श्रीकृष्ण के मनमें विलास-वासना उपस्थित हो उठी ॥५७॥

उस समय श्रीकृष्ण विशेष प्रकार से टेढ़ी गर्दन करके बांये हाथ से नम्रता के साथ श्रीप्यारीजी के मस्तक के अधोभाग को ऊपर उठाकर और दाँये हाथ से उनकी ठोढ़ी को ऊपर करके मन्द मन्द हास्य से सुशोभित कपोलों का चुम्बन करने लगे ॥५८॥

प्रियतम के द्वारा अधर-स्पर्श किये जाने के कारण आनन्द-सागर में डूबी हुई श्रीराधाजी कुछ कुछ नेत्र बन्द किये प्रतिकूल अभिनेत्री (वामानायिका) के समान भुजाओं द्वारा हटाने का भाव दिखलाती हुई और धीमे धीमे स्वर

अथास्या वयस्याः प्रमोदात्स्मितास्याः
सखीं तां हसन्त्यो मिथः प्रेरयन्त्यः ।
सशङ्काः समन्तात्प्रभाताद् रन्तात्
प्रविष्टा निकुञ्जं सशब्दालि-पुंजम् ॥६०॥

अभिलक्ष्य सखीर्विहसद्वदनाः सविधोपगता विचलन्नयनाः ।
दयिताय मुदं द्विगुणां ददती दयितोरुयुगादुदतिष्ठदियम् ॥६१॥

त्वरोत्थिता संभ्रम-संगृहीत-पीतोत्तरीयेन वपुः पिधाय ।
पार्श्वे प्रियस्योपविवेश राधा सलज्जमास्यं सुखमीक्षमाणा ॥६२॥

में निषेध वाचक अक्षर मा–मा (नहीं नहीं) का उच्चारण करती हुई सखियों के नेत्रों के लिये हर्ष उत्पादन करने लगीं ॥५६॥

इसके उपरान्त सब सखियां श्रीराधाजी के मुख से वही निषेध वाक्य सुनकर प्रेमसे पुलकायमाना एवं श्रीप्रियाजी के प्रति मन्द मन्द मुसकराती हुई "सखी आगे चलो आगे चलो" यह कहती हुई उपहास करने लगीं । एक दूसरे के प्रति सब सखियाँ ऐसा कहती कहती प्रभात समीप आरहा है यह देख सकुंचितभाव से भ्रमरों की गुँजार से परिपूर्ण निकुंज में प्रवेश कर गईं ॥६०॥

तब श्रीमती राधिकाजी मन्द मन्द मुसकान से सखियों को निकट आते देख प्रियतम के आनन्द को दुगना करती हुई उठ कर खड़ी हो गईं और आपने अतिशय तथा चंचल नयन घबराहठ के कारण शीघ्रता से पीतवर्ण ओढ़नी (उत्तारीय-वसन) उठाकर अपने अंग पर लपेट लिया, फिर लज्जा से अवनत मस्तक किये श्रीकृष्ण के समीप बैठकर सखियों के मुख की ओर निहारने लगीं ॥६१–६२॥

मिथो रदन-विक्षताधरपुटौ विलासालसौ
नखांकित-कलेवरौ गलित-पत्रलेखाश्रियौ ।
श्लथाम्बर-सुकुन्तलौ त्रुटित-हार-पुष्पस्रजौ
मुहुर्मुमुदिरे पुरः समभिलक्ष्य ताः स्वप्रियौ ॥६३॥
मध्येऽच्युताङ्ग-घनकुंकुम-पङ्कदिग्धं
राधांघ्रि यावक-विचित्रित-पार्श्वयुग्मम ।
सिन्दूर-चन्दन-कणाञ्जन-विन्दु-चित्रं
तल्पं तयोर्दिशति केलि-विशेषमाभ्यः ॥६४॥
प्रश्लिष्ट-पुष्पोच्चय-सन्निवेशां
ताम्बूल-रागाञ्जन-चित्रिताङ्गीम ।

इसके बाद प्रिया-प्रीतम के सामने खड़ी हुई सब सखियां यह देखकर हँसी उड़ाने लगीं कि दोनों के होठों (अधर) पर दाँतों के चिन्ह बने हुए हैं, दोनों विलास-क्रीड़ा के कारण थक गये हैं; दोनों के शरीर पर नख-चिन्ह बने हुए हैं, समस्त अंग की वेषभूषा विगड़ गई है, सारे वस्त्र ढीले (शिथिल) हो गये हैं, कानों के कुण्डल स्थानच्युत हो गये हैं और मोतियों के हार एवं गले की वनमालायें छिन्नभिन्न हो गई हैं ॥६३॥

उस समय बीच में लगे हुए श्रीकृष्णजी के शरीर के कुँकुम (जाफरान) के चिह्न और उन्हीं के आस पास लगे श्रीप्रियाजी के चरणों के माहवर के चिह्न एवं सिदुँर और चन्दन के कण और अञ्जन के विन्दुओं से सुशोभित यह शय्या मानो सब सखियों को उन प्रिया-प्रीतम की रति-क्रीड़ा का विशेष परिचय दे रही थी ॥६४॥

इसके बाद मर्दित वासी-फूलों से सुशोभित, पान-काजल तथा विलास के चिन्हों से रंजित कोमलशय्या को देखकर सब

व्यक्तीभवत्कान्त-विलासचिन्हां-
शय्यामपश्यन् स्वसखीमिवाल्य: ॥६५॥
प्रमिताक्षराज्ञि परिहासततिं गदितुं हरेश्चल-रदच्छदनम् ।
सुतनोश्च नम्रमभितस्त्रपया वदनाम्वुजं पपुरमू: स्वदृशा ॥६६॥
वक्ष: स्वं दर्शयंस्ताभ्यो दृग्भंग्योवाच ता हरि: ।
दिदृक्षु: स्वप्रियावक्त्र-भावशावल्य-माधुरीम् ॥६७॥
विधुं प्रयास्यंतमवेक्ष कान्तं विश्लेष-भीतोषसि पश्यताल्य: ।
दिदृक्षुयेवाम्वर-चित्रपट्यां राधेन्दुलेखा-शतमालिलेख ॥६८॥
इति निगदति कृष्णे वीक्ष्य साऽग्रे वयस्या:
प्रहसित-वदनास्ता: सङ्कुचल्लोलनेत्रा ।

सखियाँ उसे सखी राधाजी के समान समझने लगीं ॥६५॥

तब वे सखियाँ यथार्थ ज्ञान को प्राप्त हुईं तथा अपने मनोभाव दर्शाने की चेष्टा करती हुई कृष्ण के दोनों अधरों और लज्जा-विनम्र श्रीराधा के मुखारविन्द का नेत्रों द्वारा पान करने लगीं ॥६६॥

तब श्रीकृष्ण उनके अभिप्राय को समझते हुए तथा श्रीराधाजी के मनोभाव की माधुर्यमा को देखने की इच्छा से अपने वक्षस्थल को प्रदर्शित करते हुए नेत्र-भङ्गी द्वारा उनसे कहने लगे ।६७॥

हे सखियो ! श्रीराधारूप तारा ने चन्द्रमा रूपी अपने प्रियतम को जाते देख वियोग के भय से अपने हृदयरूपी परदे पर सैकड़ों रेखाओं को अंकित कर लिया है ॥६८॥

श्रीराधाजी श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से यह वाक्य सुन और सामने खड़ी हुई सखियों को परिहास करते देख लज्जित हुई अपने मनोहर गालों पर मुसकान लिये हुए भ्रकुटि

विकसदमल-गण्डं दोलिता रेचितभ्रूः
प्रियमनृजु-कटाक्षैः पश्यतिस्म घ्नतीव ॥६९॥
हेलोल्लासा दरमुकुलिता वाष्पसान्द्रारुणान्ता
लज्जा-शङ्का-चपल-चकिता भङ्गुरेर्ष्या-भरेण।
स्मेरस्मेराद्दयित-वदनालोकनोत्फुल्लतारा
राधादृष्टिर्दयित-नयनानन्दमुच्चैर्व्यतानीत् ॥७०॥
इत्थं मिथः प्रेम-सुखाब्धिमग्नयोः
प्रगेतनीं विभ्रममाधुरीं तयोः।
निपीय सख्यः प्रमदोन्मदास्तदा
तदात्वयोग्याचरणं विसस्मरुः ॥७१॥
विलोक्य लीलामृतसिन्धुमग्नौ
तौ ताः सखीश्च प्रणयोन्मदान्धाः।

चढ़ा कर तरेरे (वक्र) नेत्रों से प्रियतम की ओर इस प्रकार निहारने लगी मानो उनके छिन्नभिन्न के लिये चेष्टाशील हो गई। ६९॥

आहा! उस समय श्रीकृष्ण के मुखारविन्द की ओर देखते हुए श्रीराधाजी के नेत्रों का भाव विषेश ऐसा था, मानो वे (नेत्र) उनके (श्रीराधाजी के) बनाव शृँगार के कारण अत्यन्त आनन्द से भरपूर थे, कुछ कुछ मुँदे हुए थे। जो कि अश्रुपूर्ण तथा रक्तवर्ण थे। लज्जा और भय से चञ्चल और चकित थे। ऐसे श्रीराधाजी के नयन श्रीकृष्ण के आनन्द को बढ़ा रहे थे ॥७०॥

समस्त सखियाँ प्रेमरूप सुख-सागर में मग्न श्रीराधाकृष्ण के तथा उनकी रात्रीविलास माधुरी को देखती हुई आनन्द की उत्सुकता के कारण अपने अपने घर जाना भूलगईं ॥७१॥

श्रीवृन्दादेवी यह देख कि श्रीराधा-कृष्ण तो आनन्द-सागर

वृन्दा प्रभातोदय-जात शंका
निजेङ्गितज्ञां निदिदेश सारीम् ॥७२॥
गुरुलज्जा-भर्तृभीति-लोकहासनिवारिका ।
शुभाख्या सारिका प्राह राधिका-बोधसाधिका ॥७३॥
आगन्ता ग्राहयित्वा तव पतिरधुना गोष्ठतः क्षीरभारा-
नुत्तिष्ठोत्तिष्ठ राधे तदिह कुरु गृहे मङ्गलां वास्तुपूजाम् ।
इत्थं यावद्धवाम्बा तव नहि शयनादुत्थिता वावदन्ती
तावच्छय्या-निकेतं व्रज सखि निभृतं कुञ्जतः कञ्जनेत्रे ॥७४॥
तारापतिना सह सखि,तारा निखिल-निशाकृत-विविध-विहारा ।
लीना सम्प्रत्यम्बर-पटले त्वमपि च कुञ्जाद्गृहमय सरले ॥७५॥

में डूबे हुए हैं और सखियाँ भी प्रेम के बशीभूत हो बाह्य-ज्ञान खो बैठी हैं अतः अपनी आज्ञानुवर्तिनी, ईंगित को समझने-वाली सारिका को बुला कर कहने लगी ॥७२॥

वह सारिका जो निद्रा-भंग कराने में चतुर थी, गुरुजनों की लज्जा का विशेष ध्यान रखती थी, पति की ओर से भय और लोकापवाद को भी निवारण कराने में दक्षा थी, श्रीराधिकाजी को सम्बोधन कर कहने लगीः- ॥७३॥

हे सखि ! कमलनयने ! जटिला अब जागने को ही होगी, इसलिये उसके यह कहने के पहिले ही कि "तुम्हारा पति गोशाला से दूध लिवा लाया है-शीघ्र शय्या छोड़ो और गृहदेवता की पूजा का प्रबन्ध करो" तुमको कुञ्ज त्याग देनी चाहिये और छिपे छिपे अपने शयन घरमें उपस्थित हो जाना चाहिये ॥७४॥

हे सरलस्वभावा सखि राधे ! देखो ना समस्त तारागण चन्द्रमा के सहित आकाश के अन्तर-पट में छिपे जारहे हैं, तुम भी कुञ्ज त्यागकर घर के प्रति चली जाओ ॥७५॥

चन्द्रवर्त्म-कपिशं रवि-किरणै-राजवर्त्म मिलितं जन-निचयैः।
कुञ्जवर्त्म-कुतुकं त्यज सरले घोषवर्त्मगमनं हितमधुना ॥७६॥
शंकापङ्का-कलितहृदया शंकतेऽस्या धवाम्बा
छिद्रान्वेषी पतिरतिकटुः स्वार्थनामाभिमन्युः।
रुष्टाभीक्ष्णं परिवदति सा हा ननन्दापि मन्दा
प्रातर्जातं तदपि सरलां कृष्ण नैनां जहासि ॥७७॥
सारीवचो मन्दर-शैलपात-संक्षुब्धहृद्दुग्धपयोधिरेषा।
अथाद्भ्रमन्नेत्र-नवीन-मीना वियोगदीना शयनादुदस्थात् ॥७८

हे सखि! इस समय सूर्य्य की किरणों के प्रकाश से आकाश पीला हो गया है और राजमार्ग पर मनुष्यों का आगमन आरम्भ हो गया है, अब तुम कुञ्ज का लोभ छोड़कर शीघ्र घर की ओर चलदो, यही तुम्हारे लिये हितकर होगा ॥७६॥

इसके बाद सारिका कृष्ण से कहने लगी-हे कृष्ण! क्या तुमको पता नहीं कि जो इनके (श्रीराधाके) पति की माता है उसका हृदय शंकारूपी कीचड़ में फँसा हुआ है अर्थात् वह इनके चरित्र पर शंका किये बैठी है। इनके पति अभिमन्यु बड़े ही उग्र स्वभाव के हैं, उनने अपना अभिमन्यु नाम सार्थक कर दिया है, जरासा भी छिद्र देखकर कटुवाक्यों का प्रयोग कर देता है। इनकी ननद इनके प्रति बहुत द्वेष रखती है, जली कटी बातें कहती है, तुम क्यों अभीतक (भोर होने पर भी) इस बेचारी सीधी रमणी को रोके हुए हो,-जाने क्यों नहीं देते हो ॥७७॥

तब क्षीरसागर में जैसे मन्दराचल पर्वत के अघात से हलचल उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार सारिका के वाक्यों के सुनने से श्रीराधाजी का हृदय चलायमान हो गया। उनके दोनों नेत्र समुद्र मध्य में नवीन मछली जैसे घूमने लगे और कृष्ण के

कृष्णोऽपि कान्तं वृषभानुजायाः पश्यन्मुखं भीति-विलोल-नेत्रम ।
नीलं सुचीनं दयिता-निचोलं गुन्ठनम्वतल्पात्त्वरयोदतिष्ठत् ।।७६

परिवर्तित-संव्यानौ मिथस्तावथ शङ्कितौ ।
परस्परकरालम्बौ निरगातां निकुञ्जतः ।।८०।।

राधा-पाणि सव्येऽसव्ये पाणौ विभ्रद्वेणुं कृष्णः ।
रेजे कुञ्जान्निर्यन् यद्वद्विद्युन्माला-श्लिष्टाम्भोदः ।।८१।।

हैमं भृङ्गारमेका व्यजनमथ परा स्वर्णदण्डं दधाना ।
काप्यादर्शं सुदर्शं घुसृण-मलयजाऽमत्रमन्या विचित्रम ।
काचित्ताम्बूलपात्रं मणिचितमपरा सारिकां पञ्जरस्था-
मित्थं सख्यः कियत्यः प्रमुदितहृदया निर्ययुः कुञ्जगेहात् ।।८२।।

वियोग से दुखी हो उन्होंने शय्या का परित्याग कर दिया ।।७८।।

तब श्रीकृष्ण श्रीराधाजी के व्याकुल नेत्र और मुखारविन्द की मनोहर-छवि को देख शीघ्रता में उनका एक नीलवर्ण वस्त्र पहिन शय्या में से उठ गये ।।७६।।

इसके बाद एक दूसरे का हाथ पकड़े और एक का वस्त्र दूसरे पहिनकर भयभीत हुए कुञ्ज से बाहर आये ।।८०।।

श्रीकृष्णजी बाँये हाथ में श्रीराधाजी का हाथ और दाहिने में वंशी लिये जब कुँञ्ज से बाहिर निकले तब ऐसे प्रतीत हुए मानो बिजली के जाल में बादल घिरा है ।।८१।।

इसके पश्चात् सखियों में से कोई तो सोने का झाड़, कोई पँखा, कोई सोने की डण्डी, कोई निर्मल दर्पण, कोई अनोखा और उज्वल चन्दनपात्र, कोई मणियों से जड़ाऊ पानदान और मयना का पिंजरा हाथ में लिये प्रसन्न मन कुञ्ज से बाहर निकलीं ।।८२।।

माहेन्द्रकान्त–च्छदनं सकाञ्चनं दान्तं ससिन्दूर–समुद्गकं परा।
आपन्नसत्वा कुचकुट्मलोपमं कुञ्जाद् गृहीत्वा निरगान्मृदुस्मिता ॥८३॥

आश्लेष–संछिन्नगुणात्परिच्युतं हाराल्लसन्मौक्तिक–सञ्चयं मुदा।
विचित्य काचित्स्वपराञ्चले दृढं निवध्नती कुञ्जगृहाद्विनिर्ययौ ॥८४॥

ताटङ्कं केलि-विभ्रष्टं तल्पादादाय सत्वरा।
निर्गत्य स्वेश्वरी-कर्णे युयोज रतिमञ्जरी ॥८५॥

तल्पप्रान्तादुपादाय कञ्चुलीं रूपमञ्जरी।
प्रियनर्मसखी सख्यै निर्गत्य निभृतं ददौ ॥८६॥

पतद्ग्राहमुपादाय दासिका गुणमञ्जरी।
ताम्बूल-चर्वितं ताभ्यो विभजन्ता वहिर्ययौ ॥८७॥

कोई सखि हाथी दाँत का वना हुआ सुवर्ण औरि इन्द्रनील-मणियों से जड़ाऊ, गर्भिणी स्त्री की चोली की आकृति वाला, सिन्दुर से परिपूर्ण संपुट (डिब्बा) हाथ में लिये हुए प्रसन्न-मुद्रा में कुञ्ज से बाहर हुई ॥८३॥

कोई सखी आलिगंन के भार से टूटे हुए हार के मोतियों को अपने आँचल में बाँधे कुञ्जघर से वाहर निकल रही थी। ८४॥

रतिमञ्जरी ने बासी शय्या के ऊपर से कर्णफूल उठाकर अपनी स्वामिनी श्रीराधाजी के कान में पहिरा दिया ॥८५॥

प्रियनर्मसखी रूपमञ्जरी शय्या के अन्त-भाग से चोली (अँगिया) उठाकर कुञ्ज के बाहर अपनी सखी श्रीराधाजी को एकान्त में पहराने लगी ॥८६॥

इसके अनन्तर गुणमञ्जरी सखी पीकदान से चबाया हुआ पान निकाल कर सब सखियों को वाँटते हुए कुञ्ज के वाहर आई ॥८७॥

मञ्जुलाली तयोरङ्गाच्च्युत-माल्यानुलेपनम् ।
तल्पादादाय सर्वाभ्यः प्रयच्छन्ती विनिर्गता ॥८८॥
विलोक्याग्रे मेघाम्बर-वृतशरीरं प्रियतमं
वयस्यां तां पीताम्बर-परिवृताङ्गीं प्रमुदिताम्
हसन्त्यस्ताः सख्यः करपिहितमुख्यः प्रतिदिशं
दिशन्त्यश्चान्योन्यं कुटिलचलदृग्भिर्मुमुदिरे ॥८९॥
समीक्ष्य तासां परिहासभङ्गी-मन्योऽन्यवक्त्रार्पितफुल्लनेत्रौ ।
समुच्छलत्प्रेम-सुखाब्धिमग्नौ चित्रार्पिताच्छाविव तावभूताम् ॥९०॥
घनश्यामं चीनं वसनमभिलीनं प्रियतनौ
क्षमा नासीत्कान्ता स्वमपि परिचेतुं घनरुचौ ।
समज्ञासीत् स्फीतं हरिरपि न पीतं प्रियतमा
तनौ लीनं चीनं कनकरुचिकम्बाविव पयः ॥९१॥

मञ्जुलाली नाम की सखी शय्या के ऊपर से श्रीराधाकृष्ण के अंग से गिरी हुई फूल मालायें और चन्दन उठाकर सब सखियों को देती हुई कुञ्ज के बाहर आई ॥८८॥

उस समय सखियाँ श्रीकृष्ण को नीलवस्त्र और प्रसन्नचित्त श्रीराधाजी को पीताम्बर धारण किये देख, हँसी रोकने के लिये अपने अपने मुँह पर हाथ धरे टेढ़ी चितवन से एक दूसरे को प्रिया प्रीतम की इस अवस्था को इंगित करती हुई आनन्द अनुभव करने लगीं ॥८९॥

तब श्रीराधा और कृष्ण सखियों की इस प्रकार उपहास भावमुद्रा देख, आनन्द-सागर में डूबे हुए एक दूसरे की ओर चित्रवत् देखने लगे ॥९०॥

किन्तु श्रीराधा यह न जान पाईं कि आकाश के समान नीलवर्ण श्रीकृष्ण के अंग में उनका नीलवस्त्र अदृश्य सा

तयोर्लीला-सुधापान-प्रत्यूहामर्ष-सङ्कुला ।
निन्दन्त्यरुणमुद्यन्तमथाह ललिता सखीम् ॥६२॥
उषसि वरवधूनां पश्य राधेऽरुणोऽयम्
रमणसहित-लीलाभङ्गतः पापरुग्भिः ।
गलित-पदयुगोऽप्यद्या पितन्नो जहाति
ध्रुवमिति वचनं यद्दुस्त्यजः स्वस्वाभावः ॥६३॥
अरुणारुणे निदधत ततोऽम्बरे रतिकेलिभङ्गजरुषारुणां दृशम् ।
ललितोपहास-जनितस्मितानना वृषभानुजाह मृदुमञ्जु भाषिणी ॥

हो गया है एवं श्रीकृष्ण भी यह न पहिचान सके कि सुवर्ण के समान सुन्दर-कान्ति वाला उनका पीताम्बर श्रीप्रियाजी के गौरवर्ण अंग में विलीन प्राय हो गया है—जैसे शङ्ख में भरा हुआ दूध एक दूसरे के वर्ण से मेल पा जाता है ॥६१॥

प्रातःकाल के समय श्रीललिताजी श्रीराधा-कृष्ण के अमृत रूपी लीला सुख में बाधा उत्पन्न हुई देख क्रोध में आकर नव उदित सूर्य्य की निन्दा करती हुई श्रीराधाजी से कहने लगीं ॥६२॥

हे सखि राधे ! देखो ना—यह प्रातःकालीन सूर्य्य, पतियों सहित स्त्रीगण के क्रीड़ासुख में विघ्न डालने के हेतु कुष्ट रोग को प्राप्त हो गया है और इसी पाप के कारण इसके दोनो पैर गलकर छूट गये हैं। इतने पर भी तो यह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है। मुझको आज ही पंडितों की इस बातपर विश्वास होता है कि अपना स्वभाव कभी नहीं छूट सकता ॥६३॥

तब श्रीराधा ललिता सखी के मुख से वही उपहास की बात सुन मुसकराते हुए और क्रीड़ा में बाधा पड़ी जान क्रोध में नेत्र लालकर रक्तवर्ण सूर्य्य रश्मियों से भरपूर आकाश मण्डल की ओर दृगपात कर मधुर मधुर वचन बोलीं ॥६४॥

अनूरुरप्यस्तमयन् क्षणाद्भ्रान्नभो विलङ्घ्योदयमेति सोऽयम् ।
चेत्सोरुमेनं सविधिर्व्यधास्य-द्वार्त्तापि रात्रेर्न तदाभविष्यत् ॥६५॥

मनोरमां वीक्ष्य विभात-लक्ष्मीं निपीय तस्या वचनासवञ्च ।
मुदोन्मदो विस्मृतगोष्ठ्यानः प्राणेश्वरीं तामवदन्मुकुन्दः ॥६६॥

इनं प्रभातोपगतं समीक्ष्य कान्तेव कान्तान्तरभुक्तकान्तम् ।
पश्यान्यदिक्सङ्गकषायिताङ्गं प्राचीयमीर्ष्यारुणितेव जाता ॥६७॥

पश्योन्मत्तो द्विजेशोऽप्यखिलजन-तमस्तोमहन्तापि शान्तः
कान्तोऽयं ते समन्तात्सपदि निपतितो वारुणीं सन्निषेव्य ।
इत्थं स्वीयेन सङ्गप्रमुदित-नलिनीहास-सञ्जात-लज्जा
शङ्के वक्त्रं पिधत्ते ह्युषसि कुमुदिनी संकुचद्भिर्दलैस्वैः ॥६८॥

हे सखि ! – जंघा रहित यह सूर्य्य अस्ताचल की ओर चले जाने के बाद क्षणभर के लिये अदृश्य हो जाता है तब रात्रि होती है, और फिर समस्त आकाश-मण्डल की परिक्रमा कर पुनः उदय होता है। इस बीच में यदि ब्रह्मा इनकी दोनों जङ्घाओं की रचना कर देता–तब रात्रि होना तो दूर रहा उसका नाम भी कोई न जानता–अर्थात् कभी रात्रि नहीं होती ॥६५॥

श्रीकृष्ण श्रीराधाजी की इसप्रकार मधुर वार्त्ता सुन और प्रभातकाल की मनोहर शोभा के दर्शन करते करते गोचारण जाना भूल गये और कहने लगे–"हे प्रियतमे देखो ! वह प्राची दिशा रूप रमणी नव उदित सूर्य्य को किसी अन्य-रमणी के साथ रतिक्रीड़ा करते देख, ईर्षा से रक्तवर्ण हो उठी है" ॥६६-६७

हे प्रिये राधे–देखो ! पद्मिनी कुमुदिनी से कह रही है, कि–हे पगली कुमुदिनी जगत का अन्धकार दूर करने वाले तुम्हारे पतिचन्द्रदेव मदिरा पानकर पतित हो गये हैं। पति-समीप बैठी हुई नलिनी को इस प्रकार हास्य उपहास करते देख कुमु–

दृष्ट्वा तमःक्षयममी विधुनान्यपुष्टा नक्तं तमश्चयनिभाश्चकिताः प्रभाते
मित्रं तदाश्रयतया तमसा चरंतीं ग्रस्तं कुहूरिति कुहूं स्वगिराह्वयन्ति॥

वसन्तकान्त-संसर्ग-जातानन्द-भराटवी।
कपोतीघूत्कृतिमिषात्शीत्करोतीव सोन्मदा ॥१००॥

पश्यानुसरति चञ्चलभृंगः कैरविणी कुलकेलि-पिशङ्गः।
नलिनी-कोषे निशिकृतसङ्गं भृङ्गी शशिमुखिकृतनतिभङ्गम् ॥१०१॥

कान्तमायान्तमाशंकयारुणांशुद्विगुणारुणाम्।
कोकी कोकनदं चञ्चा चुम्बत्यानन्दविह्वला ॥१०२॥

दिनी ने लज्जा से अपना मुख अधखिले पुष्प-पङ्खड़ियों में छिपा लिया है ॥९८॥

कृष्णवर्ण कोकिल समूह, रात्रि में चन्द्रमा अन्धकार का नाश कर रहा है, कहीं श्यामवर्ण होने के कारण हमारा भी नाश न करदे, इस भय से व्याकुल हो कुहू कुहू कलरव द्वारा अमावस्या को मानो बुला रहा है। क्यों कि अमावस्या को सूर्य्य और चन्द्र एक ही स्थान में रहने से राहु उनको ग्रास कर लेता है ॥९९॥

वसन्त-रूपी कान्त के संसर्ग जात आनन्द में उन्मत्ता यह अटबी, कबूतरी के फुत्कार छलसे मानो शीत्कार शब्द कर रही है ॥१००॥

हे चन्द्रमुखी राधे ! देखो—भ्रमरी जो कि रात्रि में कमल में आवद्ध हुई थी वह अब प्रभात होने पर बाहर निकलने की चेष्टा कर रही है। भ्रमर जो कि कुमुदिनि के संसर्ग से पीतवर्ण हो गया है, वह मधुपान की लालसा से उसका पीछा कर रहा है ॥१०१॥

हे प्रिये ! देखो, चकवी, 'मेरा पति आरहा है इस आशङ्का से आनन्दिता हुई रक्त कमल का, जो कि सूर्य्य के रक्तवर्ण-

कलस्वनाख्यः कलकण्ठि हंसः समीक्ष्य नौ सम्मदफुल्लपक्षः ।
रिरंसुमप्येष विसृज्य हंसीं तटं तटिन्याः पुरतः समेति ॥१०३॥

स्वसहचर-विसृष्टं सामिभुक्तं मृणालम्
मदकल-कलकण्ठी बिभ्रति पश्य चञ्च्वा ।
रमणमनुसमेति त्वांन्मुखाब्जार्पिताक्षी
सरसिजमुखि नाम्ना तुण्डकेरी मराली ॥१०४॥

मलयसिखरचारी पङ्कजामोदधारी
व्रततिनटकुमारी लास्यशिक्षाधिकारी ।
वहति जलविहारी वायुरायासदारी
सरमण-वरनारी स्वेद-जालापहारी ॥१०५॥

किरणों के जाल से दुगना रक्तवर्ण हो गया है उसे नेत्रों द्वारा चुम्बन कर रही है ॥१०२॥

हे मधुरभाषिणी ! देखो-कलस्वन नाम वाला यह हंस, हम दोनों को देख कर, रतिक्रीड़ा की इच्छा वाली हंसिनी का संग त्याग कर आनन्द से दोनों परों को फैलाए यमुना में आरहा है ॥१०३॥

हे कमलमुखी ! देखो, तुण्डकेरी नाम की हंसिनी सहचरहंस द्वारा परित्यक्ता अपने स्वामि के अभुक्त-मृणाल को चञ्चु में दवाये, तुम्हारे मुखारविन्द की ओर देखती हुई, और मधुर-मधुर अस्फुट शब्द करती हुई, उसके पीछे पीछे आ रही है ॥१०४

हे प्रिये ! देखो-मलय-पर्वत से चलने वाली ठण्डी वायु कमलवन से अपने साथ सुगन्ध लिये, लतारूपी नायिका को नृत्य-शिक्षा प्रदान करती हुई और समस्त लोगों की थकावट दूर करती हुई तथा रमण के साथ रमणियों की रति-क्रीड़ा से उत्पन्न पसीने को वहन करती हुई मन्द मन्द गति से चल रही है ॥

इतीशयोः सुमधुर-वाग्विलासयोः
समीक्ष्य तां स्वभवन-यान-विस्मृतिम् ।
सखीश्च ताः स्मित-रुचिरा मुदोन्मदा
वनेश्वरी दिवसभिया स सोन्मनाः ॥१०६॥

अथ वृन्देङ्गिताभिज्ञा समयज्ञा तरुस्थिता ।
पद्यमुद्योतयामास कक्खटी बृद्धमर्कटी ॥१०७॥

रक्ताम्बरा सतां वन्द्या प्रातः सन्ध्या तपस्विनी ।
ऊर्ध्व-प्रसर्पदर्कांशुर्जटिलेयमुपस्थिता ॥१०८॥

अथ जटिलाया अतिकुटिलायाः श्रवण-सशङ्कौ श्रितभयपङ्कौ ।
वरतनुकृष्णावतिरतितृष्णा-बपिनिरितग्तौ व्रजपुरशस्तौ ॥१०९॥

श्रीबृन्दादेवी-सुमधुर वाग्बिलास वाले श्रीराधा और कृष्ण दोनों मधुर मधुर वार्तालाप में उन्मत्त हो रहे हैं और दोनों को अपने घर जाने तक की भी सुधि नहीं रही है और सब सखियाँ भी उनके प्रेम में उन्मत्ता हो रही हैं ऐसा जानकर स्वयं उत्कण्ठित हो गई हैं ॥१०६॥

इस समय कालोचित कार्य्य करने में दक्ष और श्रीबृन्दादेवी की आज्ञानुसार चलने वाली कक्खटी नामक एक बूढ़ी वन्दरिया बृक्ष के ऊपर से यह पाठ (गान) करने लगी। ॥१०७॥

आहा ? साधुजनों की पूजनीया, प्रातःसन्ध्या रूपिणी तपस्विनी लाल-वस्त्र धारण किये मानो किसी तपस्विनी (जटिला) की भाँति आकाशगामी सूर्य्य की किरण रूपी जटासे जटिला हो आरही है। यहाँ कक्खटी "किरणरूपी जटा से जटिला" इस शब्दश्लेष के द्वारा बृद्धा जटिला का आगमन सूचित कर रही है ॥१०८॥

समस्त व्रजवासियों के मंगल स्वरूप श्रीराधिका एवं श्रीकृष्ण

भ्रस्यद् कूल-चिकुर-स्रजमुन्नयन्तौ
भीतौ पृथग् गहन-वर्त्मनि चापयान्तौ ।
तौ वीक्ष्य भीतितरलौ जटिलेति नाम्ना
सख्यस्ततस्तत इतश्चकिता निरीयुः ॥११०॥

वामे चन्द्रावली-परिजनान घोषवृद्धान पुरस्तान्
कृष्णः पश्चात् कुटिलजटिलामागतां मन्यमानः।
यान्तीं कान्तां सभयचटुलां दक्षिणे दृष्टुमुत्क-
श्चञ्चद्ग्रीवं दिशि दिशि दृशौ प्रेरयन् गोष्ठमायात् ॥१११॥

अनुगता जटिलेत्यभिशङ्किनी गुरुनितम्ब-कुचोद्वहनाकुला ।
द्रुतविलम्बित-वल्गु ययौ व्रजं कर-धृताम्बर-केशचयेश्वरी ॥११२

ने जब दुष्ट-आचरण वाली जटिला के आने की वार्ता सुनी तब भयभीत हुए नेत्रों से कुञ्ज की ओर देखते हुए बाहर आये ॥१०६॥

तब सब सखियाँ, जटिला के आगमन से भयभीत, श्रीराधा कृष्ण को जिनके वस्त्र स्खलित हो गये हैं बाल बिखरे हुए हैं और गले के हार टूट गये हैं, राजमार्ग पर अलग अलग जाते देख, इधर उधर भागने लगीं ॥११०॥

तब श्रीकृष्ण अपनी बाँयी ओर चन्द्रावली के परिकर को, सामने घोष मुहल्ले के बृद्धजनों को और पीछे दुष्टा जटिला को आता अनुमानकर तथा दाहिनी ओर भयभीता श्रीप्रिया को घर जाते देख उत्सुक और व्याकुल नेत्रों से इधर उधर दृष्टिपात करते करते गोशाला के लिये जाने लगे ॥१११॥

इसके बाद श्रीराधा इस आशङ्का से कि-"पीछे पीछे जटिला आरही है" अपने स्खलित-वस्त्र और बालों को दोनों हाथों में सम्हालती हुई, कुच और स्कन्धों का भार वहन करने में

भयानुरागोच्चय-धूम्रलोलदृक् तिरस्करिण्या पिहिते मनोरथे।
निजे निवेश्यैव हि रूपमञ्जरी गृहं निनीषुः पथि तां तदन्वयात्॥

इतस्ततः क्षिप्तचलेक्षणाशुगै-र्मीदुःस्थहृद्वृत्तिचयैर्भटैरिव।
अग्र सरैस्तां रतिमञ्जरी च सा, निवारयन्त्यन्यजनांस्तदान्वयात॥

चकित-चकितं विन्यस्यन्तौ पदानि निजाङ्गने
गुरुजनगृहद्वारि न्यस्तातिलोल-विलोचनौ।
निभृत-निभृतं वेश्म स्वं स्वं प्रविश्य विसाध्वसा-
वपि सुषुपतुः स्वे स्वे तल्पेऽलसाकुलमानसौ ॥११५॥

व्याकुला, शीघ्रता से व्रज की ओर प्रस्थान करने लगी। ११२॥

श्रीरूपमञ्जरी श्रीराधिकाजी को घर ले जाने की इच्छा से भय और अनुराग सहित उनके पीछे पीछे चलने लगी मानो अपने धुँए के समान काले नेत्रों की छाया में उनको छिपा कर जिससे उनको कोई जाते हुए देख न पाये इस प्रकार से मार्ग में उनके इधर उधर दृष्टिपात करती जाने लगी ॥११३॥

जिस प्रकार भाट, राजा के आगे आगे चलकर इधर उधर देखता हुआ चञ्चल नेत्र रूपी वाण द्वारा विपरीतभाव वाली सामने की भीड़ को हटाता हुआ चलता है, उसी प्रकार श्रीरति-मञ्जरी इस भय से कि "कहीं श्रीराधिका जो अपने भाव में मग्न हो चली जा रही है, विरुद्ध भावापन्न जन-समूह को देख दुख को न प्राप्त हों," अपने चञ्चल नेत्रों द्वारा, जहाँ जहाँ उनकी भय-भीता मनोवृत्ति पड़ती जाती वहाँ वहाँ प्रतिकूल-भावापन्न जन-समूह को हटाती हुई श्रीराधिकाजी के पीछे पीछे चलने लगीं॥

इसके वाद श्रीराधा और श्रीकृष्ण समस्त आदरणीय व्यक्तियों के घरों के दरवाजों की ओर चकित नेत्रों से देखते हुए डरते डरते अपने अपने घर में प्रवेश करने लगे और रात्रिजाग-

निर्वर्त्य विभ्रमभरं समये स्वधाम्नि
सुप्तेऽच्युते प्रतिलयं श्रुतयो यथेशम्।
लीला-वितान-निपुणाः सगुणाः समीयुः
सख्योऽप्यलक्ष्यगतयः सदनं यथास्वम् ॥११६॥
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदास-कृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः कुञ्ज-निशान्त-केलिरचनं नामायमादिर्गतः ॥१॥

रण के कारण आलस्य को प्राप्त हुए अपनी अपनी शय्या पर लेट गये ॥११५॥

जिस प्रकार सृष्टिकर्त्ता आदि-पुरुष, प्रत्येक-युग में जगत् पालनादि लीला-विलास समाप्त करके प्रलयकाल में अनन्त शय्या (शेषशय्या) पर अपने धाम में शयन कर लेते हैं और समस्त वेद-श्रुतियाँ अलक्षित भाव से उन में आकर मिलजाती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के कुञ्ज-विलासादि लीला समाप्त करने पर, लीला रचना में निपुण सब सखियाँ अज्ञात मार्ग से अपने अपने घर में प्रवेश करती हैं ॥११६॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी के चरण-कमलों के मधुपान में भ्रमर के समान श्रीरूपगोस्वामिजी की सेवा के फल-स्वरूप, श्री-रघुनाथदासगोस्वामि द्वारा प्रेरणा किया हुआ, श्रीमद्जीव-गोस्वामि के संसर्ग से उत्पन्न एवं श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामि के वरदान के प्रभाव से प्रकाशित श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य का "कुञ्ज निशान्त केलि रचना" नाम का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥१॥

❀ अथ द्वितीयः सर्गः ❀

राधां स्नात-विभूषितां व्रजपयाहूतां सखीभिः प्रगे
तद्गेहे विहितान्न-पाकरचनां कृष्णावशेषाशनाम्।
कृष्णं बुद्धमवाप्तधेनुसदनं निर्व्यूढ़-गोदोहनं
सुस्नातं कृतभोजनं सहचरैस्तांश्चाथ तञ्चाश्रये ॥१॥

अथ प्रभाते कृत-नित्यकृत्या प्रीत्याच्युतस्यातिविहस्त-चित्ता।
प्रेमेन्दुपूर्णा किल पौर्णमासी तूर्णं व्रजेन्द्रालयमाससाद ॥२॥

मन्थानोद्धृत-गव्यविन्दु निकरैर्व्याकीर्ण-रम्याङ्गणं
प्रेमस्निग्ध-जनान्वितं वहुविधैरत्नैर्विचित्रान्तरम्।
क्षीरोर्म्म्युच्छलितं मुदाहि-विलसच्छय्या-प्रसुप्ताच्युतं
श्वेतद्वीपमिवालयं व्रजपतेर्वीक्ष्यास सानन्दिता ॥३॥

जो प्रातःकाल होनेपर स्नान आदि से निवृत हो भूषण वस्त्रादि धारण कर श्रीयशोदाजी की आज्ञानुसार उनके घर आकर उनकी दी हुई अन्न-सामिग्री द्वारा रसोई वनाती हैं और श्रीकृष्णजी का भुक्तावशेष भोजन करती हैं उन श्रीमती राधिकाजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो प्रातःकाल होनेपर शय्या त्यागकर गोशाला जाकर नियमानुसार गोदोहन करते हैं, स्नान एवं सब-सखाओं के साथ भोजन करते हैं, उन श्रीकृष्णजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

इसके पश्चात् प्रातः काल में जिनके आकाश रूपी हृदय में प्रेम रूप पूर्णचन्द्र सदा ही विराजमान हैं, ऐसी योगमाया पौर्णमासी प्रातःकर्म्म समापन कर श्रीकृष्ण के प्रेम के कारण अतिशय व्यग्र होकर शीघ्रता से श्रीनन्दराय के घर उपस्थित हुईं ॥२॥

वहाँ जाकर देखती हैं कि घर की शोभा असीम है। आँगन

तामागतामभिप्रेक्ष्य साक्षादिव तपःश्रियम् ।
व्रजराज्ञी पराभिज्ञा स्थितिज्ञाभ्युद्ययौ मुदा ॥४॥
एहि भो भगवति व्रजवन्द्ये स्वागतासि भवतीं प्रणमामि ।
इत्युदीर्य सविधे प्रणमन्तीं सा मुकुन्द-जननीं परिरेभे ॥५॥
आशीर्भिरभिनन्द्यमू गोविन्द-दर्शनोत्सुका ।
पप्रच्छ कुशलं चास्याः सधवात्मज- गोततेः ॥६॥

में सर्वत्र मथानी के कारण दही, दूध और मक्खन के छोटे छोटे कण पड़े हुए हैं और प्रेम से पुलकायमान सब लोग स्थान स्थान पर विराजमान हैं। मानो भवन के अन्दर यह छींटे भिन्न भिन्न प्रकार के रत्न सदृश अनुपम शोभा को बढ़ा रहे हैं। मन्थन के वेग से क्षीरसागर में जैसे दूध घूर्णित दशा को प्राप्त होकर इधर उधर किनारे पर गिर जाता है ठीक ऐसा प्रतीत होता है। मानो श्वेत-द्वीप में श्रीहरि अनन्त शय्या पर शयन कर रहे हों। इस प्रकार भवन की शोभा के दर्शन से श्रीपौर्णमासी देवी असीम आनन्द को प्राप्त हुईं ॥३॥

तब श्रीयशोदाजी उन दिव्य-ज्ञान वाली साक्षात् तपस्या की सिद्धि (श्री) के समान पौर्णमासी देवी को आती देख आदर सत्कार के हेतु आगे बढ़कर कहने लगीं ॥४॥

हे भगवती! "शुभागमन, तो? पधारिये, यात्रा में कोई विघ्न तो नहीं हुआ"? तब श्रीपौर्णमासी बोलीं, "हे व्रजवन्द्ये! आपको नमस्कार है" ऐसा कह कर उन्होंने पास खड़ी श्री-यशोदाजी को आलिङ्गन कर लिया ॥५॥

श्रीकृष्ण-दर्शनों की उत्सुका श्रीपौर्णमासीदेवी आशीर्वाद वाक्यों द्वारा अभ्यर्थना करती हुई उनके पति, पुत्र और गो-समूह की कुशलता पूछने लगीं ॥६॥

निवेद्य कुशलञ्चास्यै तयोत्कण्ठितया सह ।
उत्का शय्यागृहं सूनोः प्रविवेश व्रजेश्वरी ॥७॥

तावद्गोभट-भद्रसेन-सुवल-श्रीस्तोककृष्णार्ज्जुन-
श्रीदामोज्ज्वल-दाम-किङ्किणि-सुदामाद्याः सखायोः गृहात्।
आगत्य त्वरिता मुदाभिमिलिताः श्रीसीरिणा प्राङ्गणे
कृष्णोत्तिष्ठ निजेष्टगोष्ठमय भो इत्याह्वयन्तः स्थिताः ॥८॥

हि हि प्रभातं किमु भो वयस्या अद्यापि निद्राति कथं सखा नः।
तद्बोधयाम्येनमितीरयन् स्व-तल्पादुदस्थान्मधुमङ्गलोऽपि ॥९॥

समुत्तिष्ठ वयस्येति जल्पंस्तल्पालयं हरेः ।
निजालस-स्खलद्यानः प्रविशन्मधुमङ्गलः ॥१०॥

श्रीयशोदाजी अपनी सारी कुशलता बतलाती हुई अतिशय उत्सुकता से श्रीपौर्णमासी को साथ लिये श्रीकृष्णजी के शयन-घर में चली गईं ॥७॥

उसी समय गोभट, भद्रसेन, सुवल, स्तोककृष्ण, अर्जुन श्रीदाम, उज्वल, दाम, किङ्किणी और सुदाम आदि सब सखा गण श्रीवलदेवजी को साथ लिये प्रफुल्लित मन से आँगन में इकट्ठे हो—हे कृष्ण उठो, गोशाला चलो, ऐसा कहते हुए पुकारने लगे ॥८॥

तब मधुमङ्गल उपहास सूचक 'ही ही' शब्द उच्चारण करता हुआ कहने लगा, 'हे सखाओ ! प्रभात हो चुका, किन्तु हमारे सखा श्रीकृष्ण अभी तक सो रहे हैं। मैं इनको सचेत करूँगा'। ऐसा कहते कहते अपनी जगह से खड़ा हो गया ॥९॥

मधुमङ्गल निद्रालस्य के कारण लड़खड़ाता हुआ, 'हे सखे, कृष्ण, उठो' यह कहते हुए उनके शयनकक्ष में प्रवेश कर गया ॥

तद्वाग्विगत–निद्रोऽयमुत्तिष्ठासुरपीश्वरः ।
उत्थातुमीश्वरो नासीद् घूर्णा–पूर्णाक्षणः क्षणम् ॥११॥
सुक्षीर–रत्नाकर–मन्दिरान्त, रनन्त–रत्नोज्ज्वलतल्पमध्ये ।
सुप्तं हरिं बोधयितुं प्रवृत्ता, माता श्रुतिर्वा प्रलयावसाने ॥१२
पर्य्यङ्के न्यस्य सव्यं तदुपरि निहित–स्वाङ्गभाराथ पाणि
कृष्णस्याङ्गं स्पृशन्तीतर–करकमलेनेषदाभुग्नमध्या ।
सिञ्चन्त्यानन्दवाष्पैः स्नुतकुचपयसां धारया चास्य तल्पं
वत्सोत्तिष्ठाशु निद्रां त्यज मुखकमलं दर्शयेत्याह माता ॥१३॥
सुचिरमपि सवत्सास्तामनालोकयन्त्यो
न खलुसुरभयस्ता यद्यपि प्रस्नुवन्ति ।
तदपि तव पितागाद्गोष्ठमेकः स निद्रा–
सुखशयनभयात्तो त्वामसम्बोध्य वत्स ॥१४॥

श्रीकृष्ण मधुमङ्गल के ऐसा कहने पर जाग तो गये किन्तु निद्रा के आवेग से उनके नेत्र मिचमिचे से हो रहे थे और वे उठने की इच्छा करने पर भी उठ नहीं सकते थे ॥११॥

प्रलयकाल के अन्त में जिस प्रकार सब श्रुतियाँ क्षीरसागर रूपी मन्दिर में शयन करने वाले श्रीहरि को जगाने में लगी रहती हैं, उसी प्रकार माता यशोदा उज्वल रत्न शय्या पर सोये हुए श्रीकृष्ण को जगाने लगीं ॥१२॥

वे बाँये हाथ से पलंग का सहारा लेते हुए झुककर दाँये हाथ से श्रीकृष्ण के शरीर को स्पर्श करने लगीं और अश्रुजल, स्तन दुग्ध से उनकी शय्या भिगोते हुए कहने लगीं–'हे वत्स उठो ! कमल–मुख दिखाओ' ॥१३॥

फिर यशोदा कहने लगीं–'हे वत्स ! सुरभि आदि गौओं ने तुमको अधिक समय से देखा नहीं है अतः वे दूध नहीं दुहने

उत्तिष्ठ कुर्य्या मुखमार्ज्जनन्ते बलस्य वासः किमिह त्वदङ्गे ।
इति ब्रुवाणाऽपनिलाय नीलं वासस्तदङ्गादवदच्च साय्यीम् ॥१५॥
अयि भगवति पश्याचोटितं मेऽस्य सूनोः
कमल-मृदुलमङ्गं मल्लीलासु लोलैः ।
खर-नखर-शिखाभिर्धातुरागादि-चित्रं
चपल-शिशु समूहै हा हता किं करोमि ॥१६॥
स्नेहभरैः स्वजनन्यार्श्चित्रपदामिति वाणीम् ।
तामवधार्य्य मुरारिर्ह्री-चकितेक्षण आसीत ॥१७॥
कृष्णं सशङ्कमाशङ्क्य परिहास-पटुर्वदुः ।
स्नेह-क्लिन्नान्तरामम्बामवदन्मधुमङ्गलः ॥१८॥

देती हैं । तुम्हारे पिताजी तुम्हारी निद्रा-भंग के कारण अकेले ही गोवत्सों को लेकर गोशाला चले गये हैं ॥१४॥

'हे वत्स उठो, हाथ मुख धोओ । इस समय तुम्हारे शरीर पर बलदेवजी के नीलवस्त्र क्यों हैं' ऐसा कहकर वस्त्र उतार आर्य्या भगवती श्रीपौर्णमासीदेवी से कहने लगीं ॥१५॥

अरि भगवती ! देखो तो हमारे कन्हाई के सारे अंग पर गेरू जैसी धातु के धब्बे (चिह्न) लगे हुए हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि चञ्चल बालकों के साथ मल्लयुद्ध क्रीड़ा से नाखूनों के चिह्न सारे अंग को क्षतविक्षत किये हैं । हाय हाय यह क्या हुआ, मैं तो मरी-अब क्या करूँ ॥१६॥

श्रीकृष्ण माता के मुख से प्रेम और आश्चर्य्य भरे वाक्य सुनकर लज्जा के कारण भयभीत हो गये अर्थात् नेत्र नीचे कर लिये ॥१७॥

तब उपहास करने में चतुर मधुमङ्गल सखा श्रीकृष्ण को लज्जा युक्त देख स्नेह मयी श्रीयशोमति माता से कहने लगा ॥१८॥

सत्यमम्ब वयस्याली—वारितापि मयानिशम् ।
रेमेऽनेनातिलुब्धेन कुञ्जेषु केलिचञ्चला ॥१६॥

अथ प्रकाशीकृत—बाल्यविभ्रमो यत्नात् समुन्मील्य विलोचनं मुहुः ।
पश्यन् पुरः स्वां जननीं हरिः पुनर्न्यमीलियत् स स्मित-वक्त्रपङ्कजः ॥

आकर्ण्य वाचं व्रजराजपत्न्याः समीक्ष्य कृष्णस्य च बाल्यचेष्टाम् ।
भावान्तराच्छादकरीं जनन्यास्तं पौर्णमासी स्मितपूर्वमाह ॥२१॥

सखीनां सन्दोहैर्निरवधि महाकेलिततिभिः
परिश्रान्तस्त्वं यत् स्वपिषि सुमते योग्यमिह तत् ।
अनालोक्य त्वां भो तृषितमपि नो तर्णककुलं
धयत्यूधः किन्तु व्रजकुलपते जागृहि ततः ॥२२॥

माता ! आप सत्य कहती हैं । मैं जानता हूँ वे कौन हैं । मेरे मना करने पर भी वे लोग प्रतिदिन कुञ्ज में आकर क्रीड़ा के लोभी इस कृष्ण को परेशान करती हैं ॥१६॥

तव श्रीकृष्ण मधुमङ्गल के मुख से इस प्रकार बाल्यलीला प्रकाशक परिहास पूर्ण बातें सुन कर कुछ कुछ मुस्कराते हुए मुख ऊपर को उठा आँखें खोलकर देखने लगे एवं माताजी को खड़ा देख फिर नेत्र मूँद लिये ॥२०॥

इसके उपरान्त श्रीपौर्णमासी देवी यशोमतिजी के इस प्रकार वात्सल्य- प्रेम से भरे वचन सुन बाल्य—लीलाओं का ध्यान कर, मुख्यबात छिपाती हुई हँसते हँसते श्रीकृष्ण से कहने लगीं ॥२१॥

हे सुमते ! हे व्रजकुलपते ! रात्रि में सखियों के साथ क्रीड़ा करने से थके, निद्रा सुख पा रहे हो यह तो ठीक है किन्तु गोवत्स सब भूखे प्यासे हैं और तुम्हारे दर्शन किये बिना वे दूध नहीं पी रहे हैं, इसलिए निद्रा छोड़ो ॥२२॥

उत्तिष्ठ गोष्ठेश्वरनन्दनाराात् पश्याग्रजोऽयं सह ते वयस्यैः ।
गोष्ठं प्रतिष्ठासुरपि प्रतीक्ष्य त्वामङ्गने तिष्ठति तर्णकैश्च ॥२३॥

समुच्छ्रिपाणिद्वयमुन्नमय्य विमोचयन् सोऽथ रसालसाङ्गम् ।
जृम्भाविसर्पद्दशनांशुजाल-रतमालनीलः शयनादुदस्थात् ॥२४॥

खट्वैकदेशे त्वथ सन्निविष्टो विन्यस्तपादाब्जयुगः पृथिव्याम् ।
नमाम्यहं त्वां भगवत्यथीति जगाद जृम्भोद्गमगद्गदं सः ॥२५॥

विस्रस्तमस्याञ्जन-पुञ्जमञ्जु गलत्प्रसूनं मृदु केशपाशम् ।
विपविभ्रम–स्नेहभराकुलेयमुद्यम्य चूड़ां जननी बबन्ध ॥२६॥

पुरस्थ–जाम्बूनद-झर्झरीतः पानीयमानीय करेण माता ।
प्रक्षाल्य सूनोरमृजन्मुदास्यं घूर्णालसाख्यं स्वपटाञ्चलेन ॥२७॥

हे नन्दनन्दन ! उठो । बलदेव सब सखाओं और गोवत्सों सहित आँगन में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥२३॥

उस समय श्रीकृष्ण पौर्णमासी के यह वाक्य सुन दोनों हाथ ऊपर किये मुट्ठी बाँधे अँगुड़ाई और जमुहाई लेने लगे और शय्या से उठने लगे इस समय उनके दांतों की दोनों पंक्तियों की आभा में तमाल के समान श्यामवर्ण उनका शरीर शोभायमान दीख रहा था ॥२४॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, पलके की एक ओर पट्टी पर बैठ पृथिवी तक दोनों पैर लटकाये जमुहाई लेते हुए गद्गद्वाणी से कहने लगे–'भगवती ! तुमको नमस्कार है' ॥२५॥

इसके अनन्तर माता श्रीयशोदा ने श्रीकृष्ण के बालों को उलझा हुआ और उनमें लगे फूलों को बिखरा हुआ देख स्नेह से विकल हो, उनका जूड़ा सँवार दिया ॥२६॥

श्रीयशोमतिजी ने तब अन्तःपुर से सोने के कलश में जल

सव्येन पाणिं मधुमङ्गलस्य करेण वंशीमितरेण बिभ्रत् ।
मात्रार्य्यया चानुगतोऽथ कृष्णः शय्यालयात् प्राङ्गणमाससाद॥२८
एके करावस्य परे पटान्तमङ्गानि चान्ये युगपत् स्पृशन्तः ।
प्रेम्णा समुत्काः परितः सखायः प्रोत्फुल्लनेत्राः परिवव्रुरेनम्॥२९॥
भो वत्स गोष्ठं व्रज पाययित्वा तांस्तर्णकान् स्वाः सुरभीश्च दुग्ध्वा ।
त्वं प्रातराशाय पुनर्निकेतं तूर्णं समेहीति तमाह माता ॥३०॥
अथ तैः सहितः स तया प्रहितः स्वगवां त्वरितः सदनं चलितः ।
अवदत् स वटुः परिहासपटुः पथि तं गगने घटयन्नयने ॥३१॥
वयस्य पश्याम्बर-दीर्घिकायां प्रसारयन्तं करजालमालाः ।
आदित्य-कैवर्त्तमवेत्य भीतास्तारा-सफर्य्यः परितो निलिल्युः ॥३२

मँगाकर श्रीकृष्ण का मुखारविन्द और आलस भरे नेत्र धोकर अपने अञ्चल से पोंछ दिया ॥२७॥

तब श्रीकृष्णजी बाँए हाथ में मधुमंगल का हाथ धारणकर और दाँए हाथ में वंशी धारण किये शैय्या त्याग कर श्रीमाताजी और पौर्णमासीदेवी के पीछे२ चलकर आँगन में चले आये॥२८

उस समय सखाओं में से कोई तो उन (श्रीकृष्ण) के शरीर को, कोई दोनों भुजाओं को और कोई वस्त्र का स्पर्श करते हुए, प्रेमानन्द में विभोर हो उनके चारों ओर घेरा डाल खड़े हो गये ॥२९॥

यशोमतिजी तब श्रीकृष्ण से कहने लगीं, हे पुत्र ! गोशाला जाने के बाद सब वत्सों को अच्छी प्रकार दूध पिलाकर तुम कलेऊ के लिए घर चले आना ॥३०॥

श्रीकृष्ण जब माता की आज्ञा सुनकर शीघ्रता से गोशाला जाने लगे, तब वही हास्य-रसिकता में चतुर मधुमंगल ऊँचे नेत्र कर श्रीकृष्ण से कहने लगा ॥३१॥

सखे ! देखो, आकाश रूप सरोवर में तारा रूपी मछलियाँ,

मृगतृष्णाकरं प्रेक्ष्य प्रोद्यदर्क-मृगादनम् ।
मृगाङ्कः स्वमृगं त्रातुं विशत्यस्तगिरेर्गुहाम् ॥३३॥

विसृष्ट-तारादि-विभूषणोयं कालक्रमान्निःसरदिन्दुगर्भा ।
कपोत-फूत्कार-मिषाद्द्यु योषा श्रमेण पश्योषसि कुन्थतीव ॥३४॥

त्वन्मुख-स्वसुहृदा परिभूतमब्जमब्जमुख खादपयान्तम् ।
वीक्ष्य भोः सहजमप्यहितं हा लोकयाब्जमधुना हसतीदम् ॥३५॥

इत्थं गिरस्ता मधुमङ्गलस्य निशम्य ते हासकरीर्हसन्तः ।
गोपालपालाः पशुपालबाला गोशालमाला विविशुर्यथास्वम् ॥३६

सूर्य्य रूप धीवर (मछली पकड़ने वाले) को किरण रूप जाल फैलाते देख, डर कर अदृश्य हो रही हैं ॥३२॥

हे सखे ! देखो, मृग-चिह्न वाला यह चन्द्रमा, मृगतृष्णा की खान प्रातःकालीन सूर्य्य को उदय हुआ जान, इस भय से कि कहीं यह सिंह के समान मेरे मृग को न खा जाये, अतः अपने मृग की रक्षा के निमित्त अस्ताचल की ओर भाग रहा है ॥३३॥

हे कृष्ण ! देखो, आकाश रूपा रमणी, अपने आभूषण रूप तारागण और गर्भ में धारण किये हुए चन्द्रमा को समयानुसार अर्थात् प्रातःकाल होने पर अस्ताचल की ओर जाते देख, कबूतरी की फुत्कार जैसे रुदन कर रही है ॥३४॥

हे चन्द्रमुख ! हे कमलनयन ! तुम्हारे मुखकमल की संगिनी पद्मिनी, सूर्य्य द्वारा तिरस्कृत एवं अहितकारी चन्द्रमा को अस्ताचल की ओर भागते देख मानो उपहास कर रही है ॥३५॥

तब समस्त गोप बालक मधुमंगल के मुख से इस प्रकार हास-परिहास की गूढ़ बातें सुन कर गोचारण के हेतु अपनी २ गोशाला को चल दिये ॥३६॥

गोपालोऽपि स्वगोशालं सराममधुमङ्गलः ।
सकाव्य-गीष्पतिः सायं शशीवाम्बरमाविशत् ॥३७॥

दधार द्युषदां रामो धवलावलि-वेष्टितः ।
कैलाश-गण्डशैलाली-मध्यस्थैरावतभ्रमम् ॥३८॥

मध्येऽच्युतोऽञ्चन् धवलावलीनामुदाननानां परितः स्थितानाम् ।
दधौ जनानां स्फुट-पुण्डरीक-श्रेण्यन्तरञ्चद्भ्रमरभ्रमं सः ॥३९॥

हि ही गङ्गे गोदावरि शबलि कालिन्दि धवले
हि ही धूम्रे तुङ्गि भ्रमरि यमुने हंसि कमले ।
हि ही रम्भे चम्पे करिणि हरिणीति व्रजविधु-
र्मुहुर्नामग्राहं निखिल-सुरभीराह्वयदसौ ॥४०॥

इसके बाद श्रीकृष्ण जब मधुमंगल और बलदाऊजी के साथ गोशाला जा रहे थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानो चन्द्रमा, बृहस्पति और इन्द्र सहित आकाश-मण्डल में उदय होरहा है ॥३७

श्रीबलदेवजी, धवला आदि गौओं से घिरे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो इन्द्र का ऐरावत हाथी कैलाश पर्वत के निचले भाग में खड़ा है, ऐसा देवताओं को भ्रम होरहा था ॥३८॥

जब ऊपर को मुख उठाये धवला आदि गौओं ने श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया, तब सब लोगों को ऐसा भ्रम होने लगा कि मानो खिले हुए श्वेत-कमलों की पंक्ति के बीच भ्रमर-गण क्रीड़ा कर रहे हैं ॥३९॥

तब श्रीकृष्ण प्रत्येक गौ का नाम लेकर इस प्रकार बुलाने लगे :—"हे गंगे ! हे गोदावरी ! हे शबलि ! हे कालिन्दी ! हे धवले ! हे धूम्रे ! हे तुंगि ! हे भ्रमरी ! हे यमुने ! हे हंसी ! हे कमले ! हे रम्भे ! हे चम्पे ! हे करिणी ! हे हरिणि ! इत्यादि ॥४०

न्यस्ताङ्गः प्रपदोपरि प्रघटयन् जानुद्वये दोहनीं
काश्चिद्दोग्धि पयः स्वयन्त्वथ परा स्वैर्दोहयत्यन्मुखी।
अन्याः पाययति स्वतर्णकगणान् कण्डूयनैः प्रीणय-
न्नित्थं नन्दसुतः प्रगे स्वसुरभीरानन्दयन्नन्दति ॥४१॥
अथान्यतः कल्य-विभग्न-निद्रा विनिद्र-वात्सल्य-सुधां स्रवन्ती।
उत्थाय तल्पाज्जरती समायाद्गृहं समुत्का मुखरा स्वनप्त्र्याः ॥४२॥
स्वभाव-कुटिलाप्यात्मसुत-सम्पत्तिकाङ्क्षया।
व्याकुला जटिलायातां मुखरां तामथाब्रवीत् ॥४३॥
सूनोः प्रजायुर्द्धन वृद्धयेऽसौ त्वया स्नुषा ज्ञे नियतं नियोज्या।
सुमङ्गल-स्नान-विभूषणादौ गोकोटिहेतोस्तपनार्चनाय ॥४४॥

इसके बाद श्रीकृष्ण-चरणों के पञ्जों के सहारे बैठ दोनों घुटनों के बीच दुग्धपात्र लिये कुछ गौओं को स्वयं दोहने लगे और कुछ एक को दूसरों से दोहन करा लिया। किसी-किसी के बच्चे को दूध पिलाने लगे। दूसरी सब गायों की गर्दन सहलाते हुए प्यार करने लगे। आपने प्रत्येक के बच्चे को दुग्ध-पान कराया। इस प्रकार अपनी सब गौओं को प्रेम-प्रदान करते२ स्वयं भी आनन्दानुभव करने लगे ॥४१॥

इसके उपरान्त मुखरा नाम की बुढ़िया सबेरे-सबेरे यावट-ग्राम में अपनी नातिनी श्रीराधा के प्रति असीम वात्सल्य और उत्सुकता से प्रेमरूप सुधा का वर्षण करती हुई उनके घर आई ॥४२

कुटिल स्वभावा जटिला, मुखरा को आया देख अपने पुत्र के ऐश्वर्य्य की कामना से बुढ़िया से कहने लगी- ॥४३॥

हे विदुषी! हमारे पुत्र की प्रजा, धन और आयु वृद्धि के निमित्त एवं करोड़ों गोधन की प्राप्ति के लिये हमारी पुत्रवधु को सूर्य्यदेव की पूजा के हेतु मंगलस्नान के लिये प्रस्तुत करो और

आज्ञानवज्ञा निजगोष्ठराज्ञ्याः कार्य्यानभिज्ञोक्तिषु तेऽप्यवज्ञा।
इत्यादिशत्यन्वहमर्थविज्ञा विज्ञापिता मे किल पौर्णमासी ॥४५॥
तस्मात् त्वमार्य्ये स्वां नप्त्रीं सर्व्वमङ्गल-मण्डिताम्।
विधेहि सर्व्वसम्पत्तिर्यथा सूनोर्भवेन्मम ॥४६॥
वधूमथाभाषत पुत्रि तल्पादुत्तिष्ठ तूर्णं कुरु वास्तुपूजाम्।
त्वं मङ्गल स्नान-विधिं विधाय पूजोपहारं सवितुर्विधेहि ॥४७॥
प्रभातमायातमहो तथापि निद्राति नप्त्रीति मुहुर्वदन्ती।
स्नेहद्रुताङ्गी मुखरा प्रविश्य शय्यालयं तामवदत्तदेदम् ॥४८॥

अलङ्कार-आभूषणों से विभूषित करो। आगे कहने लगीः- ॥४४॥

किसी एक दिन मैंने श्रीपौर्णमासीदेवी से अपने पुत्र की प्रजा इत्यादि वृद्धि के लिये निवेदन किया था, तब उन सर्वज्ञा विदुषी ने मुझको यही कह रक्खा है कि 'हे जटिले! तुम व्रजेश्वरी श्रीयशोमति की आज्ञा कभी न टालना अर्थात् जो वह कहें वही करना और दूसरे मूर्ख-लोगों की बातों पर कभी ध्यान न देना' ॥४५॥

हे आर्य्ये मुखरे! इस कारण ही तुमसे प्रार्थना करती हूं कि हमारे पुत्र की सब प्रकार सम्पत्ति वृद्धि की कमना से मङ्गलमयी अपनी नातिनी को मङ्गलस्नान आदि सूर्य्यपूजा के निमित्त नियुक्त करो ॥४६॥

इसके बाद जटिला श्रीराधिकाजी से कहने लगी, पुत्री! शीघ्र शय्या परित्याग कर सूर्य्यदेव की पूजा के निमित्त स्नान करो और आवश्यक सामग्री का आयोजन करो ॥४७॥

स्नेहमयी मुखरा बार बार तब यह कहती हुई,-"कितने आश्चर्य्य की बात है, दिन निकल आया और राधा अबतक सो रही है" उनके शयन गृह में प्रवेश कर गईं ॥४८॥

उत्तिष्ठ वत्से शयनात् प्रमुग्धे व्यस्मारि वारोऽद्य रवेस्त्वया किम् ?
स्नात्वा प्रभातार्घ्य-विधानमस्मै पूजोपहारं रचयास्य चाशु ॥४६॥
तद्वचः प्रतिवुद्धाथ विशाखोत्थाय सालसा ।
सखि तूर्णं समुत्तिष्ठोत्तिष्ठेति प्राह सत्वरा ॥५०॥
तासां वचोभिः शयनेऽथ मुग्धा मुहुः प्रजागर्य्य पुनर्निदद्रौ ।
विचालिता वीचिचयैस्तडागे सा राजहंसीव रतालसाङ्गी ॥५१॥
तदैववासराभिज्ञा जग्राह रतिमञ्जरी ।
सखी वृन्दावनैश्वर्य्याः श्रीमच्चरण-पङ्कजम् ॥५२॥
इत्थमियं वहुभिः कृतबोधा स्वाच्छयनादुदतिष्ठदनल्पात् ।
तामथ वीक्ष्य सुपीत-पटाङ्गीं शङ्कित-हृन्मुखरेदमुवाच ॥५३॥

हे प्रसन्नवदना राधे ! शय्या छोड़ो ? क्या भूलगई कि आज रविवार है । शीघ्र स्नान करके सूर्य्यदेव को प्रातःकालीन अर्घ्य प्रदान करो और उनकी पूजा का अयोजन करो ॥४६॥

विशाखासखी वृद्धा के इस प्रकार वचन सुन खड़ी तो हो गई किन्तु राधा का शरीर आलस्य के कारण बेवश था। वह शीघ्रता से कहने लगी, 'सखि उठो ! सखि उठो ! ॥५०

जटिला, मुखरा और विशाखा के यह वाक्य सुन प्रफुल्ल-वदना श्रीराधिका जो विलास-क्रीड़ा से आलस्य को प्राप्त हो गई थीं, सरोवर में उठी हुई प्रवल लहरों द्वारा अस्थिरा राजहंसिनी की भाँति निद्रा के आवेग में कभी जागने लगीं और कभी सोने लगीं ॥५१॥

इस समय श्रीरतिमञ्जरी सखी ने अवसर पाकर बृन्दावनेश्वरी श्रीवृषभानुनन्दिनी के दोनों चरणकमल पकड़ लिये ॥५२॥

श्रीमती राधिकाजी विशाखा आदि सखियों द्वारा जगाये जाने पर अपनी वहुमूल्य शय्या पर से उठ गईं । वृद्धी मुखरा

द्रुतकनकसवर्णं सायमेतन्मुरारे-
र्वसनमुरसि दृष्टं यत् सखी ते विभर्त्ति ।
किमिदमयि विशाखे हा प्रमादः प्रमादो
व्यवसितमिदमस्याः पश्य शुद्धान्वयायाः ॥५४॥
तद्वचश्चकितधीर्हृदि सख्याः वीक्ष्य पीतवसनं चलदृष्ट्या ।
हा किमेतदिति ताञ्च दिशन्ती द्रागुवाच जरतीञ्च विशाखा ॥५५
स्वभावान्धे जालान्तरगत-विभातोदित-रवि-
च्छटाजाल-स्पर्शोच्छलित-कनकाङ्गद्युतिभरैः ।
वयस्यायाः श्यामं वसनमपि पीतीकृतमिदं
कुतो मुग्धे शङ्कां जरति ! कुरुषे शुद्धमतिषु ॥५६॥

उनके अंग पर पीतवस्त्र देख सन्देह को प्राप्त हुई कहने लगीं ।।

अरि विशाखे ! कल सायंकाल मैंने स्वर्ण के समान जो पीताम्बर श्रीकृष्ण को अपने वक्षःस्थल पर धारण किये देखा था वही वस्त्र तुम्हारी सखि राधिका पहिने हुए है । इसका क्या कारण है ? हाय हाय कैसी असावधानता है, कैसा भ्रम है । इस निर्मल अकलङ्क उच्च वंश में उत्पन्न हुई रमणी की यह क्रिया तो देखोः- ॥५४॥

विशाखा-सखी मुखरा के मुख से निकले यह वाक्य सुन आश्चर्ययुक्त, चञ्चल नेत्रों से श्रीराधिकाजी के वक्षःस्थल पर पीत-वसन देख कर 'हाय ! यह क्या' ! ऐसा कहती हुई मुखरा से बोली ॥५५॥

अरि अल्पबुद्धे ! क्या दीखता नहीं ? खिड़की की जाली द्वारा प्रातःसूर्य्य की किरणें घर के भीतर प्रवेश कर रही हैं जो हमारी स्वर्णवर्णा सखि श्रीराधाजी को स्पर्श कर उनके अंग की कान्ति को बढ़ा रही हैं, इसी से उनका नीलवसन पीताम्बर जैसा

ललिता-प्रमुखास्तावत् सख्यस्ताः स्व स्व गेहतः ।
आजग्मुस्त्वरिताः सख्याः प्रस्खलद्गतयोऽन्तिकम् ॥५७॥
दास्योऽपि स्नान-सम्भारान् स्नानवेदी-समीपतः ।
प्रतीक्ष्यमाणाः संस्थाप्य स्वेश्वरीं तस्थुरग्रतः ॥५८॥
उत्थायाथ वराङ्गी दास्या स्थापितमग्रे ।
अध्यास्तासनवर्य्यं सा नानामणिचित्रम् ॥५९॥
सावतारयदाभरणनिचयं ललिता स्वसखीतनुतः सदयम् ।
कनकव्रततेरिव सप्रणयं पल्लव-कुसुम-स्तवक-प्रचयम् ।६०॥
तावद्वासांस्युपादाय रजकस्य किशोरिके ।
मञ्जिष्ठा-रंगवत्याख्ये स्वेश्वरीमुपतस्थतुः ।६१॥

भासमान हो रहा है। हे बूढ़ी तुम किस अभिप्राय से हमारी विशुद्ध-मति वाली सखि श्रीराधिकाजी के प्रति इस प्रकार सन्देह कर रही हो ॥५६॥

इस बीच ललिता आदि अन्य सब सखियां विलम्ब हुई जान अपने अपने घर से लड़खड़ाती हुई शीघ्र श्रीराधिकाजी के निकट आ उपस्थित हुईं ॥५७॥

उसी समय समस्त-दासियाँ श्रीस्वामिनीजी के उठने के पहले ही स्नान की सब सामिग्री लेकर चौकी के समीप रख उनके आने की प्रतीक्षा करने लगीं ॥५८॥

इसके बाद श्रीमतिजी स्नान का समय आया जान सहसा उठकर दासियों द्वारा लाये गये विविध मणियों से रञ्जित आसन पर विराज गईं ॥५९॥

ललिता- सखि ने श्रीराधिकाजी के अंग से सब आभूषण उतार दिये तब वे ऐसी दीख पड़ती थीं मानो पुष्प और पत्तों से रहित स्वर्णलता है ॥६०॥

इसके बाद मञ्जिष्ठा और रंगवती नाम की दो धोबी कन्यायें

गन्धचूर्ण-परिपूर्ण-बिचूर्णद्गम्रया पुटिकन्याम्रदलस्य ।
पद्मरागखचित-स्फटिकाभानिन्दिनः स्वदशनान् परिमार्ज्य ॥६२
हैमीं जिह्वाशोधनीं सा कराभ्यां
धृत्वा चादौ शोधयित्वा रसज्ञाम् ।
दासीदत्तं-स्वर्णभृङ्गार-वारां
गण्डूषैः संक्षालयामास वक्त्रम् ॥६३॥युग्मकम् ॥
पाणी प्रोञ्छ्य श्रीमुखेन्दुञ्च ताभ्यां दत्तं वासः स्नानयोग्यं गृहीत्वा ।
कुम्भैरम्भःसंभृतैः शातकुम्भैर्व्याकीर्णां सा स्नानवेदीमयासीत् ॥
तत्र काञ्चनमय-मृदुपीठे चीनचेलपिहिते विनिविष्टाम् ।
सेवने परिजना निपुणा द्राक् तामुपायनकराः परिवव्रुः ॥६५॥

अपनी ईश्वरी श्रीमतिजी के पहिन के सब वस्त्र ले उपस्थित हो गईं ॥६१॥

तब श्रीराधिकाजी ने अत्यन्त महीन किये हुए सुगंधित चूर्ण द्वारा पहिले पद्मराग-मणियों से जड़ित, स्फटिकमणी की कान्ति को भी तिरस्कार करने वाले, अपने दाँतों को साफ किया। फिर स्वर्ण की बनी जीभि (रसना शोधिनी) को दोनों हाथों में ले जिह्वा को साफ किया तब दासियों द्वारा दिये गये सोने की झारि के जल से कुल्ली करके मुख साफ किया ॥६२-६३॥

इसके बाद दोनों हाथ और मुखचन्द्र को साफ कर उन्ही दोनों रजक कन्याओं द्वारा दिये गये स्नान योग्य वस्त्र-धारण कर श्रीराधिका स्नान चौकी के समीप गईं, जिसके चारों ओर जल से परिपूर्ण शोभा पा रहे थे ॥६४॥

इसके बाद सूक्ष्म-वस्त्र पहिने श्रीराधिकाजी सुन्दर सुवर्ण निर्मित चौकी पर बैठ गई और सेवा में निपुण दासियाँ हाथों में तैलपात्र लिये उनके चारों ओर सेवा के लिये खड़ी हो गईं ॥६५॥

मर्दनोद्वर्त्तनालक्त-केशसंस्कार-कोविदे ।
सुगन्धा-नलिनी-नाम्न्यावागते नापितात्मजे ॥६४॥
अभ्यज्य नारायणतैलपूरैरुद्वर्तनैः स्निग्ध-सुगन्धिशीतैः ।
उद्वर्त्तयामासतुरङ्गमस्याः प्रेम्णा स्वभावोज्वलशीतमेते ॥६७॥
गन्धाढ्य-पिष्टामलकैः कचांस्ते संस्कृत्य चाङ्गान्यथ धारयापाम् ।
चीनांशुकामार्ज्जन-पूर्व्वमस्याः प्रक्षालयामासतुरुज्वलानि ॥६८॥
मन्दपक्क-परिवासित-कुम्भ-श्रेणिसंभृतजलैरलमेताः ।
शातकुम्भघटिकात्ता-विमुक्तैस्तां मुदा सवयसः स्नपयन्ति ॥६९॥
अङ्गानि तस्या मृदु चीनचेलैः संमार्ज्य केशानपतोय-विन्दून् ।
विधाय प्रत्युद्गमनीय-वासः सखीं स्वसख्या परिधापयन्ति ॥७०

तदुपरान्त सुगन्धा और नलिनी नाम की दो नाऊ कन्यायें जो तैल-मर्दन, उपटन-मर्दन, आलता-प्रदान और केस-सवाँरने में सुविज्ञा थीं, वहाँ आकर उपस्थित हो गईं। उन दोनों ने यह कार्य्य समापन कर, प्रेम-सहित श्रीराधिकाजी के स्वभाव-शीतल और उज्ज्वल अंग में सुगन्धित और सुशीतल तैल का लेपन किया ॥६६-६७॥

उन दोनों नापित-बालिकाओं ने आमले की पीठि से भली प्रकार सब बालों को साफ कर दिया फिर जलधारा और सूक्ष्मवस्त्र द्वारा श्रीराधिकाजी के समस्त शरीर को भी साफ कर दिया ।.६८॥

तब प्रसन्नवदना सब सखियाँ बड़े बड़े सुवर्ण-कलसों में से छोटे छोटे गड़ुओं में सुवासित जल ले ले कर श्रीराधिकाजी के ऊपर डालती हुई स्नान कराने लगीं ॥६९॥

तब उन सखियों ने केश और समस्त श्रीअंग को सूक्ष्म-वस्त्र से पोंछकर पहनने योग्य दो वस्त्र उनके शरीर पर धारण करा दिये ॥७०

अथागतां भूषण-वेदिकायां सख्यः प्रभातोचितभूषणैस्ताम ।
विभूषयामासुरनङ्गचेष्टा-स्ताम्रुण्यलक्ष्मीमिव भावहावैः ॥७१॥
धूप-धूम-परिशुष्क-सुगन्धीन् स्निग्धकुञ्चितकचाँल्ललितास्या ।
स्वस्तिदाख्यवहुरत्न-विराजद्दान्तकङ्कतिकया परिशोध्य ॥७२॥
दत्तां कृष्णेन चूडामणिवरममलं शङ्खचूडाद् गृहीतं
विन्यस्तानेकमुक्तास्रजि धृतवकुले मूर्द्ध्नि बिन्यस्य वेणीम् ।
डोरीसंनद्धमूलां मणिचयखचितस्वर्णबद्धान्तभागा-
रक्तोद्यत्पट्टतन्तूच्चयवर-चमरीराजदग्रां ववन्ध ॥७३॥
स्वर्णां सन्धित-रक्तपट्टचमरी-युग्मान्त-डोरीद्वया-
वद्धाकुञ्चित-मुष्टिसम्मित-लसन्मध्यं दुकूलं ततः ।

श्रीराधिकाजी, कन्दर्पविषयक दिव्य चेष्टा अर्थात हाव-भाव प्रदर्शन करती हुईं जव श्रृङ्गारवेदी पर विराजीं तव ऐसा प्रतीत हुआ मानो साक्षात् तरुणावस्था-सौन्दर्यलक्ष्मी हैं। उस समय सब सखियों ने आकर समयानुकूल आभूषणों से उनको सुशोभित किया ॥७१॥

ललिता-सखी ने उनके उलझे हुए कोमल केशपाश को अगर के धुँए से सुखा दिया, बालों में सुगन्धित तैल लगा दिया, फिर स्वस्तिदा नामक हाथी–दाँत की कन्घी द्वारा वालों को साफ कर जूड़ा (वेणि) वाँध दिया। वेणी के मूल–देश में वह स्यमन्तक मणि जो श्रीकृष्णजी ने शङ्खचूड़ से प्राप्त कर उनको दी थी डोरी द्वारा वाँध दिया। वेणी के अग्रभाग में सोने के तारों में जड़े हुए भिन्न भिन्न प्रकार रत्न भी सुशोभित कर दिये फिर लाल रेशम के धागों से बनी एक जाली (चमरी) भी वाँध दी ॥७२-७३

तब चित्रा नाम की सखी ने श्रीमतिजी के अंग में वेलवूँटों से सुशोभित लाल पट्ट वस्त्र (घागरा) पहिना कर उसके ऊपर

भृङ्गाली-रुचि पर्य्यधापयदिमां मेघाम्वराख्यं मुदा
चित्रोद्यत् कुरुविन्द-कन्दलघटा शोणान्तरीयोपरि ॥७४॥
अनेक-रत्नाचित-मूलपञ्च-वर्णाढ्य पट्टस्तवकोच्चयान्तम्।
सुवर्ण-सूत्राञ्चित-किङ्किणीकां काञ्चीं नितम्वे समुदानयच्च ॥७५॥
कर्पूरागुरु-काश्मीर-पङ्कमिश्रित-चन्दनैः।
समालिप्य विशाखास्याः पृष्ठं वाहू कुचावुरः ॥७६॥
कस्तूरी-पत्रवल्ली-समुदय-खचितपार्श्वयोराकपोलं
भाले श्रीखण्डविन्दूत् करमृतमभितः कामयन्त्राभिधानम्।
अन्तः कस्तूरिकोद्यन्मलयज-शशभृल्लेखयाधश्चितं सा
चक्रे सीमन्त-रेखान्वितमथ तिलकं सान्द्रसिन्दूरपङ्कैः ॥७७॥

मेघाम्वर नाम से विख्यात ओढ़नी पहिना दी। उसके मध्यभाग में लाल रेशम की दो चमरी इस प्रकार डोरी से वाँधी कि उनकी कमर थोड़ा झुकने पर इतनी पतली हो जाती थी मानो मुट्ठी में आजायेगी ॥७४॥

इसके उपरान्त आनन्द सहित उनकी कटि में रत्न-जटित मेखला पहिना दी। उसमें सफेद, लाल, नीले, पीले और रेशम के गुच्छे और सुवर्ण के तारों में लटकी छोटी छोटी घण्टियाँ (घूँघरू) शोभा को प्राप्त हो रही थीं ॥७५॥

श्रीविशाखा-सखी ने उनकी पीठ, भुजा, कुचा और वक्षःस्थल पर अगर, कर्पूर केसर और पाँच प्रकार के चन्दन का लेपन कर दिया ७६॥

फिर विशाखाजी ने श्रीमति राधिकाजी के मस्तक और माँग में सेँदुर के कर्दम से "कामयन्त्र" नामक तिलक की रचना की उसके पास एवम् दोनों गालोंपर लता और पत्र अंकित कर वीच वीच में कस्तूरी और चन्दन द्वारा अर्द्धचन्द्र वना दिये॥७७॥

पुष्पगुच्छेन्दुलेखाब्ज-मकरी-चूतपल्लवम् ।
लिलेख चित्रं कस्तूर्य्या चित्रा तत्कुचयोस्तटे ॥७८॥
मीनी-प्रसून-नव-पल्लव-चन्द्रलेखा
व्याजात् स्वचिह्नशर-कुन्तधनूंषि कामः ।
तद्भ्रु धनु-धुवनमात्र-निरस्तकर्म्मा
मन्ये न्यधत्त निजतत्कुचकोषगेहे ॥७९॥
चित्रार्पितानेक-विचित्ररत्न-मुक्ताचितारक्त-दुकूल-चोली ।
कुचौ भजालेन्द्रधनुर्विचित्रा तस्तार शैलाविव सान्ध्यकान्तिः ॥
सौवर्णतालदलसम्वलनोपपन्नं श्रुत्योर्मसार लघुपुष्प-विराजदग्रम् ।
भृङ्गास्य-हाटक-सरोरुह कोरकाभं ताटङ्कयुग्ममदधादथ रङ्गदेवी॥ ८१

चित्रासखि ने उनकी दोनों कुचाओं के किनारे कस्तूरी द्वारा फूलों के गुच्छे, अर्द्ध चन्द्राकर रेखायें, कमल, मकर और आम्र-पल्लव के चित्र अंकित कर दिये ॥७८॥

श्रीमति राधिकाजी की दोनों भौओं के कम्पन (चालन) से ऐसा प्रतीत होता था मानो कामदेव ने अपने शर, अस्त्र, मकर और धनुक चिह्नों को वेकाम (अकर्मण्य) विवेचना कर मकरी, कुङ्कुम, नव-पल्लव और अर्द्ध चन्द्राकार रेखाओं के छल से श्री राधिकाजी के स्तन रूप अपने कोशागार में छिपा दिया है ॥

जिस प्रकार सन्ध्याकाल की सुन्दरता तारों की पंक्तियों के वीच इन्दधनुष से शोभा को प्राप्त हो दोनों पर्वतों को ढक लेती है, उसी प्रकार चित्रा-सखी द्वारा पहिनाई गई रत्न और मुक्ताओं से जटित लाल अँगिया ने श्रीराधाजी की दोनों कुचाओं को ढक दिया ॥८०॥

रंगदेवी सखि ने उनके कानों में, कमल कली जैसी आकृति-वाले, और उनके वीच में इन्द्रनीलमणि द्वारा वने छोटे फूलके

हैमे वज्रारुण-मणिचित-स्थूल-नीलाश्ममध्ये
तस्याः श्रुत्योरुपरि सुतनोर्मौक्तिकालीवृतान्ते ।
चित्रा प्रोद्यद्द्यु मणिरुचिरे चारु-चक्रीशलाके
मुक्तास्याष्टापद- कलसिका राजदग्रे युयोज ॥८२॥
रुचिरचिवुकमध्ये रत्नराजच्छलाका-
कलितकर-विशाखा-निर्म्मितोऽस्याश्चकास्ति !
नवमृगमदबिन्दुः शोभयन् श्रीमुखेन्दुं
भ्रमर इव दलाग्रे सन्निविष्टः सरोजम् ॥८३॥
ललाम हेमाङ्कुशिकानिबद्धं नासाग्रमुक्ताफलमायताक्ष्याः ।
शुकास्यदष्टं तनुवृन्तलग्नं निनिन्द पक्वं लबलीफलं यत् ॥८४॥

दो कर्णफूल पहिना दिये जो देखने में ऐसे लगते थे मानो सोने के कमल में भ्रमर वैठे हों ॥८१॥

चित्रासखी ने कोमलाङ्गी श्रीराधिका जी के दोनों कानों में सोने की वनी मण्डलाकार शलाकायें जिनके वीच सूर्य्यकान्त-मणि जगमगा रही थी और उस मणि के बीच इन्द्रनीलमणि शोभा को वढ़ा रही थी, पहिना दीं । इनमें सोने से जड़े मोतियों की लड़ियाँ लटक रही थीं ॥८२॥

विशाखा सखी ने स्वर्ण की सलाई से श्रीराधिकाजी की ठोड़ी में कस्तूरी रस से विन्दु निर्माण कर दिया, जिससे उनका मुखचन्द्र इस प्रकार शोभा पा रहा था मानो कमल-दल पर भ्रमर बैठा शोभा पाता है ॥८३॥

विशालनयना श्रीराधिकाजी की नासिका के अग्रभाग में लटका हुआ स्वर्णसूत्र में गुथा मोती ऐसी शोभा पा रहा था मानो शुक द्वारा भक्षित पके हुए लबली-फल की निन्दा कर रहा है ॥८४॥

सा वीक्ष्य कृष्णानन-पूर्णनिर्मलासितेन्दुकान्त्याचमनातिलालसाम
तद् कूचकोरी विदधेऽथ तद्वपुः-श्रीपुञ्जमञ्ज्वञ्जन-रेखयान्विताम ।।८५
उपरिखचितनानारत्नजालैः स्फुरन्त्या
विमल-पुरटपत्र्या कण्ठमस्या बिशाखा ।
हरिकर-दरचिह्न-श्रीहरं पुष्पराद्या:
सपदि हरिभियेव च्छादयामास मध्ये ।।८६।।
वज्राचिताखण्डलरत्नचित्र, सुस्थूलमध्यो गुणवद्धचञ्चुः ।
ललाम तस्या उपकण्ठकूपं दत्तास्तया हाटक-चित्रहंसः ।।८७।।
सुवर्णगोलीयुगमध्यगोल्लसन्मसार गोली गिलितोऽन्तरान्तरा ।
सुसूक्ष्म-मुक्तावलि-गुंफितस्तया न्ययोजि हारो हृदि गोस्तनाभिधः ।।

विशाखा सखी ने श्रीराधिकाजी के नयन रूपी चकोरी को नीलवर्ण चन्द्ररूप श्रीकृष्णजी के मुखामृत के पान करने में लल-चायमान देख उनके दोनों नेत्रों में श्रीकृष्णजी के अङ्ग कान्ति के समान कोमल नीले काजल की रेखायें अङ्कित करदीं ।।८५।।

विशाखा सखी ने यह देखकर कि श्रीराधिकाजी के कण्ठ में शङ्ख के समान तीन रेखायें हैं, तब इस भय से कि कहीं श्रीकृष्ण अपने हाथों में बने हुए शङ्ख चिह्न की शोभा को श्रीराधिकाजी के कण्ठदेश द्वारा हरण हुआ जान बलपूर्वक धारण न करलें इस भय से उनके गले में मणियों से खचित सुवर्ण गलवन्द अलङ्कार इस अभिप्राय से बांधदिया कि वह दिखाई न दे ।।८६।।

विशाखाजी ने उनके गले में गलगर्त के निकट स्वर्ण-हाँसुली जो मध्य में हीरे और नीलमणियों से जड़ी हुई थी पहिना दी । इसके दोनों मुख मोटे सूत्र द्वारा बांध दिये ।।८७।।

विशाखाजी ने उनके गले में नीलमणियों से जुड़ा हुआ छोटे छोटे मोतियों का हार जिसमें सोने के घुँघरू लगे थे, पहिना दिया ।।

मसार-चन्द्रोपल-पद्मराग-सुवर्णगोलीग्रथितान्तरालैः।
मुक्ता-प्रवालैः परिगुम्फितांसा रत्नस्रजं तद्धृदये युयोज ॥८६॥
वैदूर्ययुग्माचित-हेमधात्रिका बीजाभ-गोलीगिलितोऽन्तरान्तरा।
विचित्र-मुक्तावली-चित्रगुच्छको रराज तस्या हृदयेऽर्पितस्तया ॥६०॥
रासे निशीथे सह नृत्य-गानतुष्टेन दत्तां हरिणा स्वकण्ठात्।
तस्यैव साक्षादिव राजलक्ष्मीं गुञ्जावलीं तद्धृदि सा युयोज ॥६१॥
स्थूलतारावली-रम्या सन्नायक-विभूषिता।
तस्या एकावली ज्योत्स्नी हृदम्बरममण्डयत् ॥६२॥
कनक-खचित-वज्रैर्वेष्टितैः पद्मरागै-
श्रित-हरिमणि-पूर्णाभ्यन्तरा शातकौम्भी।

उन्होंने फिर एक रत्नमाला जिसमें इन्द्रनीलमणियां, चन्द्रकान्तमणियां, पद्मरागमणियां और सुवर्ण के दाने गुथे थे, पहिना दी ॥८६॥

मोतियों की वह दूलड़ी-माला जिसमें सुवर्ण के बने आंवले के बीज के समान दाने और वैदूर्यमणियां गुथी हुई थीं, और जो श्रीविशाखाजी ने श्रीराधिकाजी को पहिनाई थी, उनके कण्ठ में परम शोभा का विस्तार कर रही थी ॥६०॥

श्रीकृष्ण ने रात्रि के समय रासक्रीड़ा में सखियों के नृत्य-गीत से प्रसन्न हो, राजलक्ष्मी के योग्य, जो हार श्रीराधिकाजी को प्रदान किया था, वही गुञ्जाहार, श्रीविशाखाजी ने श्रीराधिकाजी को पहिना दिया ॥६१॥

विशाखाजी ने श्रीमतिजी के कण्ठ में जब एकावलि हार पहिनाया तब वे ऐसी शोभायमान लग रही थीं जैसे चन्द्रमण्डल से युक्त आकाश शोभा पाता है। यह हार मोती और विचित्र-मणियों का बना था ॥६२॥

इसके बाद विशाखाजी ने उनके गले में लोकट (पदक आभ-

प्रतनु-पुरट-राजच्छृङ्खला लम्बमाना
लसति हृदि विशाखा-योजितास्याश्चतुष्की ।।६३।।
पृष्ठान्तः क्रमलम्बमानममलं ग्रीवान्त-हारावली
बीटीबन्धन-पट्टसूत्र-चमरीजालं तदास्या बभौ ।
मन्ये चारु-नितम्ब-शैलकटकान्मूर्द्धाधिरोहार्थकं
सोपानं विधिना कृतं करुणया वेणीभुजङ्गयाः स्फुटम् ।।६४।।
प्रलम्बगुच्छासित-पट्टडोरिका पर्य्युप्त-राजन्नवरत्न-मालया ।
श्लिष्टेथ हैमे भुजयोर्विशाखया न्यधायिषातां हरिरङ्गदाङ्गदे ।।६५
फुल्लारुणाब्ज-विगलन्मधुलिप्तनाल-
संविष्ट-भृङ्ग पटलीद्युतितस्कराणि ।
कान्तेद्रनीलवलयानि कला वियुग्मे
तस्यास्तदा ललितया घटितानि रेजुः ।।६६।।
मुक्तावली-खचित-हाटक-कङ्कणाभ्यां
संवेष्टितः सवलयावलि-सन्निवेशः ।

रण) पहिना दिया । यह हार हीरा, पन्ना, नीलम और सुवर्ण की छोटी-छोटी जंजीरों का बना था ।६३।।

श्रीमतिजी के कण्ठ में विराजित हारों की लड़ियों की ग्रन्थि-बन्धन द्वारा बना हुआ रेशमी चुटीला कटि के नीचे तक क्रमशः लटका हुआ ऐसा प्रतीत होता था मानो वेणीरूपा सर्पिणी कटि रूपा पर्वत के मध्य भाग से मस्तक पर्वत पर आरोहण करेगी अतः विधाता ने सोपान (नसेनी) बनादी है ।।६४।।

विशाखाजी ने काले रेशम की डोरी में वला हुआ (गुथा) रत्न-जड़ित सोने का "हरिरंगद" नामक अंगद (बाजूबन्ध) श्रीमतिजी के दोनों भुजदण्डों में बांध दिया ।।६५।।

खिले हुए लाल-कमल से निकले, रस (मद) से सनी हुई कमल की डण्डी के ऊपर भ्रमर के बैठने से जिस प्रकार शोभा

विम्बैर्विधोर्मिलित-भास्करमण्डलाभ्यां
तस्याश्चकास्ति-नितरामेव सैंहिकेयः । ९७॥
हैमस्फुरन्मर्द्दलिकालिमण्डिता प्रलम्ब-पट्ट-स्तवकावलम्बिनी।
अनेक-रत्नावलि-लालितान्तरा ललास तस्या मणिवन्ध-वन्धनी।
निजनामाङ्किता नानारत्नद्युति-करम्बिता ।
बभावङ्गुलिमुद्रास्या विपक्षमदमर्द्दनी ॥९९॥
चटुल-चटक-रावौ हंसकौ कंसशत्रोः
श्रुतिधृति-मतिहंसी-हारिनादौ विशाखा ।
कनक-खचित-नाना-रत्नजालांशुचित्रौ
लघु लघु निदधे तत्पादपद्मोपरिष्टात् ॥१००॥

होती है, उसी प्रकार (कमलनाल रूपा) श्रीराधाजी के दोनों हाथों में पहिनाई सुवर्ण चूड़ियां शोभा पा रही थीं जिन पर नील-मणि लगी हुई थी और मोतियों से जड़े सुवर्ण कङ्कण, शोभा धारण कर रहे थे मानो सूर्य और चन्द्र के बीच राहु शोभा पा रहा है ॥९६-९७॥

नाना प्रकार के रत्नों द्वारा बनी हुई एवं रेशम डोरी में गुंथी हुई सुवर्ण पौंछी (मादुली) श्रीराधिकाजी के दोनों हाथों में शोभा पा रही थी ॥९८॥

श्रीललिता सखी ने नाना प्रकार के रत्नों की आभा से जग-मगाती, विपक्षीगण को मर्दन करने वाली, 'राधा' नाम से अङ्कित, अँगूठी उनके हाथ में पहिना दी ॥९९॥

विशाखा सखी ने, चञ्चल चड़ुई-पक्षी के समान शब्दायमान पादाभरण (झांझ) जिनकी झङ्कार से श्रीकृष्णजी की श्रवण-शक्ति, धैर्य और बुद्धि लुप्त प्राय: हो जाती थी श्रीमती राधिकाजी के युगल चरणों में धीरे-धीरे पहिना दीं ॥१००॥

कालिन्दीकलहंसालि स्वाध्याध्यापकौ तया ।
भातस्तत् पदयोर्न्यस्तौ नूपुरौ रत्नगोपुरौ ।।१०१।।
रत्नाबलीकान्ति-करम्बितानि विधातृ-विस्मापक-शिल्पभाञ्जी ।
तस्याः सुदेवी-घटितानि रेजुः पादाङ्गुलीयानि पदाङ्गुलीषु ।।१०२
अस्या न्यधादुर्षास नर्म्मदया स्वसख्या
मालाकृतस्तनुजयोपहृतं विशाखा ।
स्मेरारविन्दबदनाथ करारविन्दे
लीलारविन्दमरबिन्दविलोचनायाः ।।१०३।।
तदैव समयाभिज्ञा पुरस्तान्मणिवन्धनम् ।
आदर्शं दर्शयामास सुगन्धा नापितात्मजा ।।१०४।।
सा कृष्णनेत्रकुतुकोचित-रूपवेशं
बष्मावलोक्य मुकुरे प्रतिबिम्बितं स्वम् ।

नाना-विध रत्नों से सुशोभित श्रीराधिकाजी के दोनों चरणों के घूँघरू मानो यमुनाजी के किनारे विचरणशील राज-हंसों को उनकी मधुर ध्वनि की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं ।।१०१।।

श्रीसुदेवी सखी द्वारा पहिनाये गये, श्रीराधिकाजी की चरण अँगुलियों के रत्नजटित छल्लों (अँगूरियक) की बनावट देखकर विधाता भी भ्रम में पड़ जाता है ।।१०२।।

विशाखाजी ने नर्मदा नाम वाली माली कन्या के द्वारा समानीत लीला कमल, कमलनयना श्रीराधाजी को प्रदान किया है ।।१०३।।

उसी समय कालोचित कार्य-कुशला, सुगन्धा नामधारी नाई-कन्या ने आकर श्रीमती राधिकाजी के सामने मणियों से शोभायमान एक शीशा (दर्पण) रख दिया ।।१०४

श्रीराधिका ने, श्रीकृष्ण के नेत्रों का आनन्द बढ़ाने वाले,

कृष्णोपसत्ति-तरलास बराङ्गनानां
कान्तावलोकनफलो हि विशेष-वेशः ॥१०५॥
श्रीचैतन्य-पदारविन्द मधुप-श्रीरूप-सेबाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-कृतिना श्रीजीबसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टबरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः कल्यविलास बर्णनमयः सोऽयं द्वितीयो गतः ॥२॥

❀ अथ तृतीयः सर्गः ❀

ताबद्गोष्ठेश्वरी गोष्ठं गते गोकुलनन्दने ।
सर्वान् गृहजनानाह तद्भक्ष्योत्पादनाकुला ॥१॥
निज-निज-करणीये कर्म्मणि व्यग्रचित्ता
यदपि गृहजनास्तत् प्रेमजालाकुलास्ते ।

अपने वेश-भूषा की परिछाई दर्पण में देख, उनके पाने की तीव्र इच्छा से व्याकुल हो गई, क्योंकि स्त्रियों का श्रृङ्गार उनके पति द्वारा देखे जाने पर ही तो सफल होता है ॥१०५॥

श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुजी के चरण कमलों के मधुपान में भ्रमर रूप श्रीरूपगोस्वामीजी की सेवा के फलस्वरूप, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा प्रकाशित, श्रीजीवगोस्वामी के संसर्ग से उत्पन्न और श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वरदान प्रभाव द्वारा लिखित श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य का द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ॥२॥

—:०—❀—०:—

गोकुलनगरी के आनन्दवर्धक श्रीकृष्णजी के गोशाला जाने पर यद्यपि परिजनगण श्रीकृष्ण के प्रति गाढ़ानुराग के कारण

तदपि सुत-समुद्यत्-स्नेह-पीयूषपूर-
स्नपितमतिरधीशा तान् समादेशीति ॥२॥
दासीः समाहूय जगाद राज्ञी वत्सास्त्वरध्वं द्रुतपाककृत्ये ।
वत्सः कृशीयान् क्षुधितः सरामः स मे समेष्यत्यधुना स्वगोष्ठात् ॥
शाका मूलानि पुष्पद्विदल-फलदलान्यार्द्रकं पिष्टमाष-
श्चुक्रं शुण्ठी हरिद्रा-मरिच-शशि-सिताजीरकं क्षीरसारः ।
चिञ्चाहिङ्गु-त्रिजातं सुमथितवटिकाः सैन्धवं सीरिशस्यं
तैलं गोधूमचूर्णं घृत-दधि-तुलसीधान्य-सत्तण्डुलाश्च ॥४॥
पायसाय व्रजेन्द्रेण प्रातर्वष्कयणी-पयः ।
प्रहितं यत्तदेतच्च सर्व्वं पाकाय नीयताम् ॥५॥
तथेति दिष्टास्ता आसंस्तत्तात्कार्येषु सत्वरा ।
साहूय रोहिणीमाह स्नेह व्याकुल-मानसा ॥६॥

व्यथित थे, उसपर भी अपने अपने कार्य्य में व्यस्त रहते थे । श्रीगोकुलेश्वरी यशोदाजी वात्सल्य-प्रेम से अधीर हो श्रीकृष्ण के भोजन पान योग्य सब वस्तुओं के शीघ्र-प्रबन्ध के लिये उन सबको बार बार आदेश करने लगीं ॥१-२॥

श्रीयशोदाजी दासियों से कहने लगीं, हमारा कृष्ण भूखा होगा। वह बलदेव के साथ अभी गोशाला से आरहा होगा। तुम सब रसोई का कार्य्य शीघ्र समाधान करो ॥३॥

हे दासियो ! बहु प्रकार के शाग, मूल, कञ्चनपुष्प, दाल, फल, पत्र, अदरक, पिठी, खट्टा पालक, सोंठ, हलदी, मिर्च, कपूर, चीनी, जीरा, खोआ, इमली खटाई, हींग, तेजपत्र, मठा, वड़ी, सेंधानमक, गोला, तेल, गोधूम-चूर्ण, घी, दही तुलसी नामक वढ़िया धानके चावल और व्रजराज का लाया हुआ गौ का गाढ़ा दूध, यह सब सामान रसोई घर में ले जाओ ॥४-५॥

दासियों ने ऐसा आदेश पाकर सब कार्य्य का समाधान

सखि रोहिणि तावस्मद्बालकौ मृदुलौ तनू ।
पीडयेते सबलैर्बालैर्बाहुयुद्धेऽति चञ्चलैः ॥७॥
कति सन्ति न मे गेहे गोपा दासास्तथाप्यमू ।
बारितावपि यातस्तौ गोरक्षायै करोमि किम ॥८॥
दुर्गारण्यभ्रमण-नटनायासतः सायमुच्चै-
श्रक्राते नाशनमपि तथा भोजनेषद्रुची तौ ।
बत्सौ जातौ तदिह नितरां दुर्ब्बलौ क्षीणमूर्त्ती
दृष्टं हन्तोदरमपि तयोः पृष्ठलग्नं प्रभाते ॥६॥
द्रुतमय रसवत्यां तत्तथा साधयान्नं
प्रचुर-रुचि यथेमौ प्राश्नुतः प्राज्यतृष्णौ ।

किया । तब श्रीयशोदाजी ने श्रीरोहिणीजी से बुला कर कहाः- ॥६॥

अरी हे सखी रोहिणी ! देखो ना, हमारे घर में अनेक दास होते हुए भी हमारे सुकुमार बालक राम-कृष्ण, हमारा कहना न मानकर, गोशाला जाने के पहले ही, धींगरे (बलवान) बालकों के साथ बाहुयुद्ध कर थक जाते हैं। क्या सहन किया जा सकता है ? ॥७-८॥

श्रीयशोदाजी फिर श्रीरोहिणीजी से कहने लगीः-"हे सखि ! देखो ! दोनों पुत्र, दुर्गम बनों में घूमने के कारण बहुत थक जाते हैं। सायँकाल का भोजन भी प्रायः कम रुचि से करते हैं। इसीलिये ता दोनों दुर्बल और क्षीण होते जारहे हैं। इनका पेट प्रायः कमर में लगा जाता है" ॥६॥

इसलिये हे सखी ! " तुम शीघ्र रसोई घर में जाओ। हमारे दोनों पुत्र जिस भाँति भी तृप्ति पूर्वक भोजन कर पायें उसी प्रकार से सब काम ठीक करो। और सुनो, उन्होंने जो जो

तदतिरुचिरपीष्टा यत्र यत्रास्ति दृष्टा
कुरु सुमुखि तदेतच्चोमनं चातियत्नात् ॥१०॥
तथेतिदिष्टा रामस्य माता दासी-सुसंस्कृताम् ।
संभृताशेषसंभारां प्रीत्या रसवतीं ययौ ॥११॥
सुतेषद्रचिता व्यग्रा मिष्टान्नोत्पादनोत्सुका ।
श्रीराधानयनायासीद् व्याकुला गोकुलेश्वरी ॥१२॥
औपनन्दे: सुभद्रस्य पत्नीं कुन्दलताभिधाम् ।
यदृच्छयागतामग्रे प्रणमन्तीमथाह सा ॥१३॥
अमृतमधुरमास्तां संस्कृतं यत्त्वयान्नं
भवतु स च चिरायुर्यस्तदन्नस्य भोक्ता ।

भोजन पहिले दिन रुचि से किया था वही सब बनाओ" ॥१०॥

श्रीयशुमतिजी का इस प्रकार आदेश सुन, राममाता श्री-रोहिणीजी पाकशाला में गईं, जहाँ दासियों ने सब प्रकार की रन्धन-सामिग्री पहिले से ही इकट्ठी कर ली थी ॥११॥

इधर गोकुलेश्वरी श्रीयशोदा श्रीकृष्ण की रुचि के अनुसार मिष्टान्न पकवान आदिक बनवाने के लिये श्रीराधिकाजी को बुलवाने में अत्यन्त अधीर हो गईं ॥१२॥

इस अवसर पर अपनी इच्छा से आई हुई उपनन्द के पुत्र सुभद्र की भार्य्या कुन्दलता को प्रणाम करते देख, श्रीयशोदाजी कहने लगीः- ॥१३॥

हे कुन्दलते! "मैंने सुना है कि राधिका ने श्रीदुर्वासा ऋषि से ऐसा वरदान प्राप्त किया है कि वह जो कुछ भोजन बनाती है वह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट होता है, और जो व्यक्ति वह भोजन करता है उसकी आयु बढ़ जाती है। इसलिये, मैं उसके हाथ से बना हुआ सुस्वादु अन्न-व्यञ्जन अपने राम-कृष्ण

इति कलितवरां दुर्व्वाससस्तां विदित्वा
स्वसदनमनु राधां रन्धनायाह्वयामि ॥१४॥
मितभुगपि सुतो मे स्वादुवैशिष्ट्य-लाभात्
प्रचुररुचि सतृष्णं तत्कृतान्नं यदत्ति ।
तदिह मम वचोभिः प्रार्थ्य तस्या धवाम्बां
परिजन-सहितां तां राधिकामानयाशु ॥१५॥
मुहुरियमिह राधां सा तयैवानयन्ती
प्रथममिव यदेतां याचते तन्न दोषः ।
व्रजभुवि वसतां यत् कृष्णरागोन्मदानां
नव नवमिव सर्व्वं नानुसन्धानमस्ति ॥१६॥
तद्वचः शिशिरोत्फुल्ला कुन्दवल्ल्यथ राधिकाम् ।
उत्कासीद्भ्रमरीं कर्त्तुं मधुसूदनसङ्गिनीम् ॥१७॥

को खिला कर उनकी अरुचि को दूर और रुचि-वृद्धि करने की कामना से उसको अपने घर बुलवाना चाहती हूँ" ॥१४॥

"इस लिये हे पुत्रि ! तुम हमारे कहने के अनुसार उनकी सास श्रीजटिलादेवी से हमारी ओर प्रार्थना करके, ललिता-आदि सखी-वृन्द के सहित उसको हमारे घर लिवा लाओ" ॥१५

गोकुल की स्वामिनि होते हुए भी श्रीयशोदा ने जो कुन्दलता द्वारा श्रीराधिका को प्रथम की भाँति अपने घर बुलाने को जटिला से याचना की, इसमें कोई दोष नहीं, क्योंकि समस्त व्रजवासियों का श्रीकृष्ण में गाढ़ अनुराग रहने से उनके समस्त काम नये नये ही होते हैं उनको यह स्मरण नहीं रहता कि प्रथम दिन हमने क्या कहा था, क्या किया था इत्यादि ॥१६॥

वह कुन्दलता श्रीयशोदा के वाक्य रूप शीतल अमृत द्वारा प्रफुल्ल हो श्रीराधिका रूप भ्रमरी को श्रीकृष्ण रूप भ्रमर की

ततः सासाद्य जटिलां स्नुषायां कुटिलामपि ।
श्रावयामास सन्देशं व्रजेश्वर्य्या विचक्षणा ॥१८॥
आकर्ण्य साज्ञां व्रजराजराज्ञ्याः कृष्णात् स्नुषायामपि शङ्कमाना ।
विचिन्त्य शिक्षामथ पौर्णमास्यास्तां कुन्दवल्लीं प्रणयादवादीत् ॥१९
स्नुषेयं मे साध्वी गुणगरिममाध्वीक-मधुरा
जनश्छिद्रान्वेषी स खलु चपलो नन्दतनयः ।
न चाज्ञावज्ञेया व्रजपतिगृहिण्या भगवती-
बचः पाल्यं वत्से नटति हृदयं किन्नु करवै ॥२०॥
मातः सत्यं बदति भवती किन्तु गोपेन्द्रसूनु-
र्नायं ज्ञेयं खलसमुदयैर्यादृशः श्रावितोऽस्ति ।

संगिनी बनाने के निमित्त उत्सुका हो गई ॥१७॥

इसके बाद कुन्दलता ने, कुटिल स्वभावा जटिला को उसकी पुत्रबधू के विषय में, श्रीयशोदाजी का सन्देश सुना दिया ॥१८॥

जटिला, कुन्दलता द्वारा श्रीयशोदा के आदेश को सुन मनमें अत्यन्त सन्देह करने लगी, किन्तु श्रीपौर्णमासी-देवी के उपदेश का स्मरण कर उससे प्रेम सहित वार्तालाप करने लगी ॥१९॥

हे वत्से कुन्दलते ! मेरी यह पुत्रबधू साध्वी अर्थात् पति-व्रता और गुणगौरव मधु से मधुरमूर्त्ति रूपा है, परन्तु नन्द-महाराज का पुत्र कृष्ण बहुत ही चञ्चल है । चाहे उसमें सैकड़ों गुण हो क्यों न हों जन समूह कोई न कोई दोष का ही अनु-सन्धान करता है । इसलिये पुत्रबधू को उनके घर भेजने में मुझे कोई भलाई नहीं दीखती है । किन्तु क्या करूँ भगवती पौर्ण-मासी के यह वाक्य-कि "कभी श्रीयशोदाजी की आज्ञा की अवहेलना न करना"-पालन करने ही होगें । इन दो सङ्कटों में फँसे मेरा हृदय उथल पुथल हो रहा है ॥२०॥

तब कुन्दलता जटिला को सम्बोधन कर कहने लगी-"हे

किन्तु प्रोद्यद्दय मणिरिव सद्रमं पद्मे खलाली-
घूके चायं वृजिनतिमिरे घोषसन्तोषकोके ॥२१॥
माधुर्यं तून्मदयति जगद्यौवतं तस्य तस्मा-
द्भीतिर्नीतिस्तव नववधूपालनं चापि युक्तम् ।
मा शङ्किष्टास्तदयति यथा दृक्पथं नास्य साध्व्या-
श्छायाप्यस्याः स्वयमहमिमां द्राक् तथा तेऽर्पयामि ॥२२॥
त्वं पुत्रि साध्वी प्रथितासि गोष्ठे त्वय्यर्पितेयं सरला वधूस्तत् ।
स लोलदृष्टिः किल नन्दसूनुर्नैनां यथा पश्यति तद्विधेयम् ॥२३॥

माता ! आप जो कहती हैं वह तो ठीक है किन्तु दुष्ट-प्रकृति वाले व्यक्तियों ने महाराज नन्द के पुत्र के विषय में आप से जैसा कहा है वह वैसे नहीं हैं। सूर्य कमलों को विकसित करता है तथा चकवा चकवी को आनन्द प्रदान करता है किन्तु उलूकगण को अन्धा करता है। अतः वह जिस प्रकार सब के प्रिय नहीं हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी धर्म्मात्माओं के तो प्रिय हैं तथा व्रज-वासियों के आनन्द को बढ़ाते हैं परन्तु दुष्टों के अप्रिय हैं, वे उनका दलन करते हैं" ॥२१॥

कुन्दलता जटिला से फिर कहने लगी-"हे माता ! श्रीकृष्ण के सौन्दर्य की माधुरी को देखकर कौन ऐसी रमणी है जो मोहित न हो। इस लिये आपका श्रीकृष्ण से भय करना और श्रीराधिकाजी की सदाँ उनसे रक्षा करना उचित ही है, किन्तु जटिले ? आप इस प्रकार की आशंका न करें। मैं आपकी पुत्र-बधू को इस प्रकार ले जाऊँगी और लिवा लाऊँगी कि उनकी परिछाँई तक भी श्रीकृष्ण देख न सकेगें ॥२२॥

तब जटिला ने कुन्दलता से कहा-"हे पुत्रि ! तुम गोकुल नगरी की एक विख्यात पतिव्रता रमणी हो। तुम्हारे हाथ में

वधूमथाहूय जगाद वत्से ब्रजालयान्नन्दबधूसमीपम् ।
निष्पाद्य तस्याः प्रियमेहि तूर्णं सहानयैवाद्य रविस्त्वयार्च्यः ।।२४।।
राधेति दिष्ट्या हृदि साभिनन्दिताप्यनिच्छुवद्गन्तुमुवाच तां सखीं।
अस्तीह कृत्यं न च मे यियासुता गृहं गृहं नेङ्गति यत् कुलाङ्गना ।।
कृताग्रहोच्चैः पुनरार्य्ययासौ कौन्द्या बभाषे कृतहस्तकर्षम् ।
भीतासि किं साध्व्यहमस्म्यऽवित्रीत्युच्चालिता फुल्लतनुः प्रतस्थे ।।२६
कृष्णस्य प्रातराशाय संस्कृतं लड्डुकादिकम् ।
आदाय ललिता-मुख्याः सख्योप्यनूययुः सखीम् ।।२७।।

सरला राधा को सौंपती हूँ। ऐसा करना जिससे वह चञ्चल कृष्ण हमारी बधू की ओर दृष्टिपात न कर पाये ।।२३।।

तब जटिला ने राधिका को बुलाकर कहा-"हे वत्से ! कुन्द-लता के साथ श्रीयशोदाजी के घर चली जाओ, वह जो कुछ तुमसे करने को कहें वह सब कार्य्य समाप्त करके शीघ्र इनके साथ घर लौट आना, क्योंकि आज तुमको सूर्यदेव की पूजा करनी है" ।।२४।।

श्रीराधिका जटिला का इस प्रकार आदेश पाकर मनमें तो अत्यन्त प्रसन्न हुईं किन्तु दिखावटी अनिच्छा प्रकट करती हुईं कहने लगीं-'घर का सारा काम तो अभी पूरा हो नहीं पाया है इसलिये हमारी तो जाने की इच्छा नहीं है , क्यों कि कुलीन-बधु घर घर नहीं घूमती हैं' ।।२५।।

तब जटिला श्रीराधा से अनुरोध करने लगीं और कुन्दलता श्रीराधिकाजी का हाथ पकड़ उनसे कहने लगी-"हे पतिव्रते ! हे राधे ! तुम डरती क्यों हो, मैं तो तुम्हारी रक्षा के लिये वहाँ रहुँगी ही ऐसे वचन सुन प्रेम पुलकायमाना श्रीराधा चलने लगीं" ।।

तब ललिता आदि सब सखियाँ, श्रीकृष्ण के प्रातःकालोचित

वीक्ष्याध्वनि परानन्दचलद्वक्षः पटाञ्चलाम् ।
सवयस्यां कुन्दवल्ली प्रेम्णा परिजहास ताम् ॥२८॥
मूल्यानीतोपसर्ग्यास्त्रिचतुरदिवसान् प्रोष्य सन्ध्यागतस्ते
भर्त्ता गोभिः स्वगोष्ठे घटयितुमखिलां रात्रिमेव न्यवात्सीत् ।
वक्षः प्रोद्यन्नखाङ्कावलिचितमधरः स्पष्टदन्तक्षतो यत्
तत् साध्व्यास्ते सतीत्वं समुचितमधुना व्यक्तमुल्लालसीति ॥२६॥
अन्तर्गूढ़-मितोरकुल्ल-किञ्चित्कुञ्चितलोचनाम् ।
स्वसखीं ललितालोक्य कुन्दवल्लीमथाब्रवीत् ॥३०॥

भोजन के लिये लड्डू आदि लेकर श्रीराधाजी के पीछे पीछे चलने लगीं ॥२७॥

मार्ग में सब सखियों सहित चलते हुए श्रीराधिका प्रेमानन्द में इतनी विभोर हो गई थीं कि उनको यह भी ध्यान नहीं रहा कि उनके वक्षःस्थल का वस्त्र स्थान-च्युत हो गया है। उनकी यह अवस्था देख श्रीकुन्दलता प्रेमयुक्त-वाणी द्वारा उनका उपहास करने लगी। २८॥

कुन्दलता कहने लगी-"हे राधे! तुम्हारे पति तीन चार दिन बाहर रह कर कुछ गायें मोल लाये हैं और उनके प्रथम-गर्भ धारण कराने के हेतु उनको साँढ़ो के साथ संगम के निमित्त छोड़ आज ही साँयकाल से ले कर समस्त-रात्रि अपनी गोष्ठी ही में रहे, अर्थात् तुमसे मिले तक नहीं, किन्तु देखती हूँ कि तुम्हारी छाती पर नाखूनों के चिह्न लगे हुए हैं और कपोलों अधरों पर दाँतों के चिह्न बने हैं। इससे जैसी तुम पतिव्रता हो उसका स्पष्ट प्रमाण आज ज्ञात हो गया है" ॥२६॥

इस पर ललितादेवी अपनी सखी श्रीराधिकाजी के कुछ कुछ मिचे हुए नेत्र और मुसकराते हुए मुख को देख श्रीकुन्दलता से

करकफलधियास्याः कानने धृष्टकीरः
स्तनमनु विनिविष्टः पक्वबिम्बभ्रमेण ।
अदशदधरमुच्चैस्तन्नखाचोटितं त-
द्द्वयमिदममुष्याः किं वृथा शङ्कसे त्वम् ॥३१॥
सखीवचः स्मारित-कृष्णसङ्ग-लीलोच्छलत्कम्प-तरङ्गिताङ्गीम् ।
तां वीक्ष्य पद्माकरमीक्षमाणा जगौ पुनः कुन्दलता सहासम् ॥३२
आनन्दकम्पोत्तरलासि मुग्धे किं भो वृथा पद्मिनि कुन्दवल्याः ।
किं देवरस्त्वां मधुसूदनोऽसौ भ्राम्यन् पुनः पास्यति भुक्तमुक्ताम् ॥३३

कहने लगीं ॥३०॥

"कल एक दुष्ट शुक (तोता) सहसा वन से आकर हमारी सखि राधिका के दोनों स्तनों को दाड़िम्ब फल के धोखे से नखाघात कर गया था और अधरों को पका हुआ बिम्बफल जान अपनी चञ्चु द्वारा क्षत विक्षत कर गया था। अतएव हे कुन्दलते! हमारी सखी श्रीराधिकाजी के वक्षःस्थल और अधरों को देख क्यों अन्य प्रकार के चिह्नों की आशंका करती हो" ॥३१॥

तब श्रीराधिका ललिता सखि के यह बचन सुन, श्रीकृष्ण के साथ पूर्वदिन जो विलासक्रीड़ा हुई थी, उसका स्मरण कर, सर्वाङ्ग से पुलकायमान हो उठीं। श्रीकुन्दलता उनका यह मनोभाव देख सरोवर की ओर दृष्टिपात कर पद्मिनी को सम्बोधन कर कहने लगी ॥३२॥

"हे पद्मिनी! हे मुग्धे! तुम क्यों वृथा आनन्द में मग्न हो रही हो। रसिक भ्रमर कुन्दलता के सहबास का सुख त्याग कर अब तुम्हारा मधुपान करने नहीं आयेगा"। दूसरे पक्ष में इसका यह अर्थ है–"हे राधे! तुम मिथ्या आनन्द में पुलकायमाना हो रही हो। हमारा देवर मधुसूदन अर्थात् कृष्ण तुम्हारा

कर्णशर्म्मद-सन्नर्म्मभर्म्मकुण्डलनिर्मितौ ।
कर्म्मठां कुन्दवल्लीं तां विशाखाह विचक्षणा ॥३४॥
स्वेनेऽनुरागं परमुद्वहन्ती फुल्लापि मृद्वी भ्रमरात् सुलोलात् ।
सत्पद्मिनीयं सखि कुन्दवल्ली भृङ्गानुजाद्भीतरला चकम्पे ॥३५॥
इत्युद्दाम-ललाम नर्म्मरचनाभङ्गीसुतुङ्गीभवत्
प्रेमोल्लासविलासमन्थरगतिस्ताभिः समं राधिका ।
भावोद्भावविभावितोद्भट-महागाढ़ानुरागोदया
कृष्णालोकन-लालसोच्चारलिता प्राप्ता व्रजेन्द्रालयम् ॥३६॥
तत्रागतां चरणयोः प्रणतां स्वदोर्भ्या-
मुत्थाप्य तां हृदि निधाय मुकुन्दमाता ।
आघ्राय मूर्द्धि्न मुदिता जननीपरार्द्धात्
स्निग्धा चुचुम्ब मुखमश्रुमुखी ततोऽस्याः ॥३७॥

आस्वादन कर चुका है अव वह तुम्हारा आदर नहीं करेगा, यह निश्चय जानो" ॥३३॥

तब तीव्रबुद्धिमती श्रीविशाखा, कानों को सुख देने वाली और परिहास पूर्ण शब्दो में सुवर्ण–कुण्डल बनाने में निपुणा कुन्दलता को कहने लगीं ॥३४॥

हे सखि ! हे कुन्दवल्ली ! सूर्योदय के समय खिली हुई कोमल कमलिनी जिस प्रकार चञ्चल भ्रमर से कम्पित हो जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे पति भ्रमर अर्थात् सुभद्र के छोटे भाई श्रीकृष्ण के भय से हमारी सखी श्रीराधिका कम्पायमाना हो रही हैं ॥३५॥

तत्पश्चात् श्रीराधिका मनोहर, मधुर और परिहास–पूर्ण कथोपकथन करती हुई अत्यन्त अनुराग और उल्लास–पूर्ण मन्द-मन्द गति से सखियों के साथ महाराज-नन्दजी के घर जाकर

प्रत्येकमालिङ्गय च तद्वयस्याः पप्रच्छ साऽव्याहतभव्यमस्याः ।
व्यग्रा सुतस्याऽशनसाधने द्राक् सस्नेहमेताः पुनराबभाषे ॥३८॥

विविध-मधुर-भक्ष्योत्पादने लब्धवर्णा
व्रजभुवि किल यूयं विश्रुता मिष्टहस्ताः ।
तदिह कुरुत पुत्र्यः साधु भक्ष्याणि यत्ना-
द्गुरुचिरपि वत्सः सम्पुहं मे यथात्ति ॥३९॥

उपलावणिकं त्वेकाः काश्चित्कुरुत दाधिकम ।
मार्पिष्कमपरा युयं वत्साः शार्करिकं पराः ॥४०॥

पहुँची और आपने श्रीयशोदा-मैय्या को प्रणाम किया । श्री-गोविन्दमाता यशोदाजी ने उनको अपने चरणों में पड़ी देख दोनों भुजायें फैला कर छाती से लगा लिया । उनका मस्तक सूँघा और नेत्रों में जल भरकर गद्गद् कण्ठ से उनके मुख का बार बार चुम्बन किया ॥३६-३७॥

तब सब सखियों को आलिङ्गन कर, उनकी कुशल वार्ता पूछकर श्रीकृष्ण के लिये भोजन का प्रबन्ध कराने के हेतु व्यग्रता पूर्वक स्नेहभरी वाणी में ललिता आदि सखियों को कहने लगीं ॥

हे पुत्रियो ! "तुम लोग, इस व्रजमण्डल की समस्त रमणियों में नाना प्रकार के पकवान बनाने में कुशल-पाचिका रूप में विख्याता हो । तुम्हारे हाथ का बना अन्न-भोजन अत्यन्त मधुर और स्वादिष्ट होता है । तुम लोग इस प्रकार के उत्तम उत्तम भोजन प्रस्तुत करो जिससे हमारे पुत्र की भोजन में रुचि वृद्धि हो और इच्छा पूर्वक भोजन कर सके ॥३८-३९॥

तुम में से कोई तो नमक से, कोई दही से, कोई घी से और कोई चीनी से बना भोजन प्रस्तुत करो ॥४०॥

सरस-रसवती-सत्प्रक्रिया-पण्डितासि
त्वमिह रसवतीं मे याहि राधे प्रयत्नात् ।
जननि बलजनन्याधिष्ठितां मिष्टमन्नं
रचय सह तयैव व्यञ्जनान्युत्तमानि ॥४१॥
वटकममृतकेलिं साधयातिप्रयत्नात्
सरसमसृणमन्यं पुत्रि कर्पूरकेलिम ।
मधुरममृतकोटेर्यत्र कृष्णः सतृष्ण-
स्त्रिजगति नहि कश्चित् त्वामृते यस्य वेत्ता ॥४२॥
यस्यामुच्चैर्लालसाढ्यः सुतो मे, तां पीयूषग्रन्थिपालीं च कृत्वा।
कर्पूरैलाद्यन्वित-पानके त्वं यत्नात् वत्से धेहि पञ्चामृताख्ये ॥४३॥

हे मा ! हे राधे ! तुम संसार की पाचिकाओं में शिरोमणि हो। इस लिये तुम पाकशाला में जाओ। वहाँ बलदेव-माता रोहिणी प्रथम ही पहुँच गई हैं। उनके साथ मिलकर मिष्ट भोजन और शाक-भाजी आदि सामिग्री प्रस्तुत करो ॥४१॥

हे पुत्रि राधे ! तुम अत्यन्त परिश्रम करके अमृत से भी अधिक मधुर और रसयुक्त कोमल "अमृतकेलि" और "कर्पूरकेलि" नाम के बड़े प्रस्तुत करो, कि जिनके पाने से कृष्ण की रुचि बढ़ती ही रहे अर्थात् पाने का लोभ कम न हो, क्यों कि इस प्रकार के बड़े तुम्हारे अतिरिक्त त्रिलोकी में और कोई बनाना नहीं जानता है अर्थात् तुम ही बना सकती हो ॥४२॥

हे वत्से राधे ! जिस अमृत तुल्य 'ग्रन्थिपाली' (एक प्रकार का भक्ष्य) से हमारे पुत्र कृष्ण को अत्यधिक प्रेम है वही बनाना और उसको 'पञ्चामृत' में जो कपूर, इलायची आदि के मिश्रण से बनता है उसमें छोड़ देना। इसकी उसको बड़ी लालसा रहती है ॥४३॥

३)

त्वं विधेहि ललितेऽम्ब रसालां त्वञ्च षाड़वमिहाशु विशाखे ।
त्वञ्च भोः शिखरिणीं शशिलेखे पुत्रि चंपकलते मथितं त्वम् ॥४४॥
आमिक्षां त्वं पुत्रि संसाध्य तस्या-स्तत्राद्द्रव्यैर्योगपाक-प्रभेदैः ।
तत्राद्भेदान् तुंगविद्ये विधेहि त्वं मत्स्यण्डीपानकान्यम्ब चित्रे ॥
त्वं खण्डमण्डानि च रङ्गदेवि, त्वं क्षीरसारान् विविधान् सुदेवि ।
वासन्ति शुभ्रा मृदु फेणिकास्त्वं त्वं मङ्गले कुण्डलिकां विधेहि ॥४६
कादम्बरि त्वं कुरु चन्द्रकान्तीस्त्वं लासिके तंडुल-चूर्ण पिंडीः ।
त्वं शष्कुलीः कौमुदि भूरिभेदा-स्त्वमिन्दुपिण्डानि मदालसेऽम्ब ॥४७
शशिमुखि वटकानि त्वं विधेहि प्रयत्ना-
द्दधिवटकमुखानि प्राज्य-माधुर्य्य भाञ्जि ।

हे ललिते ! तुम रसाला निर्माण करना, हे विशाखे ! तुम षाड़व बनाना, हे शशिलेखे ! तुम शिखरिणी बनाना, और हे चम्पकलते ! तुम मठा प्रस्तुत करना ॥४४॥

हे तुङ्गविद्ये ! तुम अमीक्षा (छेना) बनाओ और उससे जो जो पकवान बन सकें वह भी प्रस्तुत करो। हे चित्रे ! तुम मिश्री-खण्ड बनाओ ॥४५॥

हे रंगदेवी ! तुम खण्डमाँढ़ (पीठाविशेष) बनाओ ! हे सुदेवि ! तुम क्षीरसार (क्षीरसा) बनाओ। हे वासन्ती ! तुम सफेद मुलायम फेनिका बनाओ और हे मंगले ! तुम कुण्डलिका (जलेबी) बनाओ ॥४६॥

हे कादम्बरी ! तुम चन्द्रकान्ति बनाओ। हे लासिके ! तुम चावल के चूर्ण के लड्डू बनाओ। हे कौमुदी ! तुम शष्कुली (गुंजिया) बनाओ और हे मदालसे ! तुम भिन्न भिन्न प्रकार के चन्द्राकार और शुभ्रवर्ण इन्दु पिष्टक प्रस्तुत करो ॥४७॥

हे शशिमुखि ! तुम परिश्रम करके अनेक अनेक भाँति के

प्रणाय सुमुखि रम्या: शर्करा-पट्टिकास्त्वं
मणिमति बहुभेदास्त्वं च मिष्टान्नपूपान् ॥४८॥
विधत्स्व भोः काञ्चनवल्लि वत्से गोधुम-चूर्णोद्भव-लड्डुकानि।
मनोहराख्यानि मनोरमे त्वं त्वं मौक्तिकाख्यानि च रत्नमाले ॥४९॥
सुभृष्ट-निस्तुष-तिलैर्मोदकान् कुरु माधवि ? !
तथा तिलकदम्बाख्यान् सतिलाः खण्डपट्टिकाः ॥५०॥
लाजान् धानांश्च संभृष्टान् पृथुकान् घृतभर्जितान्।
कृत्वा विन्ध्ये सिताखण्डैः समुद्गान कुरु मोदकान ॥५१॥
रम्भे करम्भं कुरु शातकुम्भ-कुण्ड्यां सुरम्भाफलशर्कराद्यैः।
निष्पीड्य पक्वाम्र-रसं मनोज्ञे सिताघनक्षीरयुतं विधेहि ॥५२॥

दही बड़े प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत करो। हे सुमुखि ! तुम उत्तम शर्करा-पट्टिका प्रस्तुत करो और हे मणिमति ! तुम आटे के नाना-विध पिष्टक प्रस्तुत करो ॥४८॥

हे काञ्चनवल्ली ! तुम मगद (मैदा और घी इत्यादि मेवा) के लड्डू बनाओ। हे मनोरमे ! तुम 'मनोहरा' (बेसन के) लड्डू बनाओ। और हे रत्नमाले ! तुम मोतिचूर (बेसन की बूँदि) के लड्डू बनाओ ॥४९॥

हे माधवि ! तुम धुले और भुंजे तिलों के 'तिलकदम्ब' लड्डू और तिलों की पापड़ी (पँजेरी) प्रस्तुत करो। हे विन्ध्ये ! तुम मूँग के लड्डू (मूँग की पीठि को घी में भून कर शक्कर मिलाकर) बनाओ ॥५०-५१॥

हे रम्भे ! तुम स्वर्ण के पात्र में पके केले आदि के मेल से 'करम्भ' (केला, चीनी, दधि और सत्तू इत्यादि का मिश्रण) प्रस्तुत करो और हे मनोज्ञे ! तुम अमरस और अधिक औटाया हुआ दूध प्रस्तुत रक्खो ॥५२॥

उत्थापितं यत्तु मया मथित्वा प्रातः सुगन्धपयसो दधीनि ।
तदिष्टगन्धं नवनीत-पिण्डं हैयङ्गवीनं कुरु भोः किलिंबे ॥५३॥
स्वयं दुग्ध्वा व्रजेन्द्रेण प्रहितं धवलापयः ।
पानार्थमम्बिके मन्दं त्वं शृतं कुरु वत्सयोः ॥५४॥
ऋज्वीष-दर्वीनिवहैः परीतां मृद्दारु-कुण्ड्यादिक-भाजनैश्च ।
चुल्लीचयाढ्यां मम सिक्तलिप्तां तद् ग्धशालां व्रजताशु बालाः ॥५५
नानोपकरणानि त्वं तानि तानि धनिष्ठिके ।
निष्कास्य तत्ताद्भाण्डेभ्यः पात्रेष्वाधाय दापय ॥५६॥
तत्तत्पदार्थास्त्वरितं तुलस्या सहानया रङ्गणमालिके त्वम् ।
आनीय कोषालयतोऽस्मदीयाद्दासीगणैर्दापय तत्र तत्र ॥ ५७॥

हे किलिम्बे! सुगन्धा नाम की गाय के दूध की दही विलोकर जो हमने मक्खन निकाला है तुम उनमें से घी निकालो ॥५३॥

हे अम्बिके! ब्रजराज ने जो धवला गाय का दूध स्वयं निकाल कर भेजा है उसको थोड़ा औंटा कर रक्खो। राम-कृष्ण गोशाला से आकर उसको पियेंगे ॥५४॥

हे पुत्रियो! तुम सब हमारी दुग्धशाला (भण्डार) में चली जाओ। वहाँ हरप्रकार की चलनिया (झाझरियां) मिट्टी और लकड़ी के पात्र (कुंठी) प्रचुर-मात्रा में भली प्रकार साफ किये हुए रक्खे हैं। एक ओर गोबर से लिपे बहुत से चूल्हे बने हुए हैं। ५५॥

हे धनिष्ठिके! हमारे कथनानुसार जो जो पाकद्रव्य जिस जिस पात्र में बनाकर प्रस्तुत किया गया है उसमें से निकाल निकाल कर अन्य अन्य पात्रों में सजाकर रक्खो ॥५६॥

हे रंगणमालिके! तुम तुलसी को साथ लेकर शीघ्र भण्डार घर से वह सब पात्र दासियों द्वारा उचित उचित स्थान पर ले

आम्रातकाम्रफलपूर-करीर-धात्री-
लिम्पाक-कोलि-रुचकादि-फलानि कामम् ।
तैले चिरं सलवणे किल सन्धितानि
मूलान्यथार्द्रकमुखानि च रोचकानि ॥५८॥

मत्स्यण्डिका-रस-चिरोषित-पक्वचिञ्चा
धात्री-रसाल-वदरी-सकलानि तद्वत् ।
निष्कास्य भोस्त्वमिह मन्थनिकाकुलेभ्यः
कृत्वानयेन्दुमुखि काञ्चनभाजनेषु ॥५९॥युग्मकम् ॥

शन्दे शुभे भरणि पीवरि मिष्टहस्ते
चुल्लीचयोपरि घृतातुल-मन्थनीषु ।
दुग्धानि भारिक-गणोपहृतानि गोष्ठा-
द्रत्साः शनैः श्रपयताशु निधाय यूयम् ॥६०॥

जाकर रख दो ॥५७॥

हे चन्द्रमुखि ! तुम आम्रातक (आमड़े) आम्र, फलपूर, (दाड़िम) करीर, (टेंटी) धात्री (आमला) लिम्पाक (नीबू) वदरी (वेर) रुचक इत्यादि फलों और अदरक आदि का अचार जो बहुत दिन पहिले से तेल और नमक में रक्खा है पात्रों में से निकाल निकाल कर सुवर्ण के पात्रों में लेकर रक्खो । और मिश्री रस द्वारा प्रस्तुत किये गये, तैंतुल, आमला, आम, वदरी (वेर) इत्यादि के मुरब्बे भी स्वर्ण पात्रों में ले आओ ॥५८-५९॥

हे शन्दे ! हे शुभे ! हे भरणि ! हे पीवरि ! हे मिष्टहस्ते ! तुम सब भारवाहियों द्वारा समस्त दूध गोशाला से लिवा लाकर चूल्हों पर बड़े बड़े दूध गरम करने के पात्रों में चढ़ादो और धीरे धीरे औटाओ ॥६०॥

मुद्रिकावापकादीनि भूषणान्युत्तरीयकम् ।
यथार्हमङ्गादुत्तार्य्य निधाय तुलसीकरे ॥६१॥
प्रक्षाल्य पाणिचरणं सलिलैर्धनिष्ठा-
दत्तैर्बलस्य जननीमभिवन्द्य मूर्द्ध्ना ।
प्रेम्णा तया नववधूरिव लाल्यमाना
गान्धर्व्विका रसवतीमथ सा विवेश ॥६२॥युग्मकम् ॥
तत्तत्कर्मणि लग्नासु हर्षोत्फुल्लासु तास्वथ ।
तत्तत्कार्य्ये स्वतो व्यग्रान् दासानाह व्रजेश्वरी ॥६३॥
सायं कलिन्ददुहितुर्जलभारवाहै-
रानीय वद्धवदनासु नवासु चेलैः ।
मन्दानिलेन्दुकरशीतल-वेदिमध्ये
स्यन्दालिकाधृत-घटालिषु संभृतं यत् ॥६४॥
कुंकुमागुरु-हिमांशु-पटीरैस्तत्पयोद सुपथः परिवास्य ।
सिक्त-मृष्ट-शशिकान्त-शिलोच्च-स्नानवेदिमभितो नय वत्स ॥६५॥

इसके बाद श्रीराधिका ने उतारने योग्य वस्त्र और आभूषण (अगूँठी, बाला इत्यादि) अपने अंग से अलग कर तुलसी को सौंप दिये। धनिष्ठा प्रदत्त जल से हाथ पैर धो रोहिणीजी को प्रणाम किया। उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर नववधू की भाँति रसोई घर में यथा बिधि कार्य करने लगीं ॥६१-६२॥

तब श्री राधिका आदि व्रजरमणी और अन्यान्य दासियाँ प्रसन्न हो अपने अपने कार्य्य में लग गईं। व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजी, अपनी अपनी सेवा में व्यग्र, समस्त दासों को कहने लगी ॥६३॥

हे पयोद ! कल शाम कहारों ने जो यमुना जल लाकर शीतल वेदिका (चबूतरा) के पास घड़ों में भर, तिपाईयों के ऊपर भली प्रकार वस्त्र से ढक कर रक्खा है, उसमें केसर,

घटकुलेऽगुरुधूप-सुधूपितं त्वमपि पानकृते सुतयोर्मम ।
विचकिलेन्दु-लवङ्गपाटलै, प्रनय वारिद वारि सुवासितम् ॥६६॥
हे नापितात्मज सुगन्ध मदीयगेहात
कल्याणदाख्यभिषजा चिरमाधितं यत् ।
नारायणाख्य-वरतैलमशेषदोष-
शोषं सुपुष्टिकरमानय मद् नार्थम ॥६७॥
सुगन्ध-कर्पूरक-नापितौ द्राग् वत्सौ युवामानयतं सुशीतम् ।
आङ्गीनमुद्वर्त्तन-मिष्टगन्धं कैश्यञ्च पिष्टामलकीय-कल्कम् ॥६८॥
स्नानीय-चीनेन्दुनिभांशुकद्वयं गाङ्गेय-कान्त्युद्गमनीयकं तथा ।
कौषेय-युग्मं पटवास-वासितं सारङ्ग भोः संकुचितं कुरु द्रुतम ॥६९

अगर, कपूर और चन्दन मिलाकर उसे सुवासित कर दो और उस जल को मन्दवायु से स्वच्छ एवं चन्द्रकिरण से सिक्त चन्द्रकान्तमणि निर्मित स्नान-चौकी के चारों ओर रख दो ॥६४-६५

हे वारिद ! तुम हमारे दोनों पुत्र रामकृष्ण के पीने योग्य जल को अगर के धुँए से सुगन्धित कलसों में रख उसको मल्लिका, कपूर, लवंग और पाटल पुष्पों की सुगन्ध से आमोदित कर प्रस्तुत करो ॥६६॥

हे नापित-नन्दन सुगन्ध ! कल्याणद नाम के कविराज का बनाया हुआ अशेष दोष नाशक और बलवर्धक नारायणतेल जो घर में मौजूद है हमारे पुत्र राम-कृष्ण के अंग में मलने के लिये ले आओ ॥६७॥

हे सुगन्ध ! हे कर्पूरक ! तुम दोनों हमारे राम कृष्ण के केश और अंग साफ करने के हेतु सुशीतल आमलक (आमले का उबटना) बनाकर प्रस्तुत रक्खो ॥६८॥

हे सारंग ! हमारे दोनों पुत्र राम और कृष्ण के स्नान योग्य

३)

उष्णीषकं कञ्चुकमन्तरीयं सतुन्दबन्धं द्वितयन्नवीनम् ।
बालार्क-हेमारुण-चित्रवर्णं वासश्चतुष्कं व्रजवेशयोग्यम ॥७०॥
विखण्डिताखण्डित-भूरिवर्णं स्यूतञ्च यद्रोचिक-सौचिकेन ।
भूयिष्ठमन्यन्नटवेश-योग्यं संकोच्य तत्तद्वकुलानय त्वम् ॥७१॥
कस्तूरीकेन्द्वगुरु-चन्दन-कुङ्कमाद्यै-
र्यत्नाच्चतुःसममुखानि विलेपनानि ।
सम्पाद्य पूरय सुवास विलासगन्धिन्
रत्नालीखचित-मौक्तिक-सम्पुटेषु ॥७२॥
पिण्ढि गोरोचनां कर्त्तुं तिलकं तालिकालिके ।
सुचित्र कुरु चित्राय गिरीन्द्र-धातुवर्णिका ॥७३॥

दो शुभ्र धुले वस्त्र (धोती) और स्नान के उपरान्त पहिनने के लिये दो स्वर्णवर्ण पट्टवस्त्र (रेशमी धोती) कौंच कर रक्खो ॥६९

हे वकुल ! हमारे कृष्ण और वलदेव की वेशभूषा योग्य लाल पाग, (पगड़ी या साफा) सुवर्ण के रंग का जामा, सिन्दूरी रंग का अन्तरीयक (अधोवसन) और बेल बूटों वाला उदर बन्द (फेटा) शीघ्र यहाँ ले आओ । यही चार वसन तो व्रज की योग्य वेशभूषा है । इनके अतिरिक्त रौचिक दर्जी द्वारा निर्माण किये, जरी के काम किये हुए समस्त वस्त्र और नृत्यादि अभिनय के समय जो-जो वस्त्र पहिने जाते है वह भी ठीक कर ले आओ ॥७०-७१॥

हे सुवास ! हे विलास ! हे गन्धिन् ! तुम लोग 'चतुःसम' (कस्तूरी, कपूर, अगर, केसर और चन्दन का) विलेपन यत्न सहित, रत्न जटित मोतियों की डिवियों में घिस घिस कर रक्खो ॥७२॥

हे तालिक ! मस्तक पर तिलक लगाने के लिये गोरोचना

हे पुष्पहास सुमनो मधुकन्द यूयं
चाम्पेय-पुण्डकसुकाञ्चनयूथिकाद्यैः।
पुष्पैर्विधाय विविधाः कुरुताशु मालाः
कालगुरुद्रव-हिमांशु-सुवासितास्ताः ॥७४॥
रत्नावली-खचित-हाटकभूषणानि
स्नेहान्मदाग्रहभरेण चिरेण यत्नात्।
निष्पाद्य सायमिह काञ्चनकारमुख्यै-
र्दत्तानि यानि मम रङ्गण-टङ्कनाद्यैः ॥७५॥
सैरिन्ध्र मालिन् मकरन्द भृङ्गिन् निष्कास्य कोषालयतो भवद्भिः।
पुष्येण भानोरमृतेऽद्य वारे तैरेव वत्सौ मम भूषणीयौ ॥७६॥युग्मम्॥
वत्स शालिक विधेह्यवतंसं नीलकण्ठ-नवपिच्छ-समूहैः।
त्वञ्च मालिक सितारुण-गुञ्जा-पुञ्जकैर्विविध-हार-सुगुच्छान ॥७७

(रोली) प्रस्तुत करो और हे सुचित्र ! तुम चित्र कार्य्य के लिये गेरू आदि का रंग प्रस्तुत करो ॥७३॥

हे पुष्पहास ! हे सुमन ! हे मकरन्द ! तुम लोग शीघ्र नाग-केसर, वासन्ति और स्वर्ण यूथिका आदि फूलों की मालायें बनाओ और उनको काली-अगर और कपूर के रस में भिगोदो॥

हे सैरिन्ध ! हे मालिन् ! हे मकरन्द ! हे भृङ्गिन् ! कल सन्ध्या के समय, रङ्गण और टँगनादि सुनार (सुवर्णकार) ने हमारे अत्यन्त आग्रह करने पर, वहुत दिनों के वाद मणियों द्वारा खचित, जो स्वर्ण के विविध अलङ्कार बनाकर हमको दिये थे, उन सबको तुम लोग हमारे कोषागार से निकाल कर, आज शुभ मुहूर्त्त में, जो रविवार पुष्या नक्षत्र के योग से अमृत योग को प्राप्त हुआ है, हमारे दोनों पुत्र राम और कृष्ण को उनसे विभूषित करो ॥७५-७६॥

हे शालिक ! तुम मयूर की नवीन नवीन पुच्छ द्वारा हमारे

३)

जम्बूल जाम्बूनदकान्तिमिष्ट-ताम्बूलवल्लीदल-सञ्चयं त्वम् ।
सुकर्त्तरी-खण्डित-हेयभागं विधेहि चीनांशुक-मार्ज्जितं द्राक् ।।७८।।
धात्री-दलाभ-खरयन्त्र-निकृत्तनव्य-
क्षीरार्द्र-पूगफल-सूक्ष्मदलानि कामम् ।
निर्म्माय तानि घनसार-सुवासितानि
स्निग्धानि वत्स सुविलास विधेहि तूर्णम् ।।७९।।
वस्त्रशोधित-चूर्णैला-लवङ्ग-खदिरादिभिः ।
भो रसाल विशालाख्य कुरुतं वीटिकां युवाम् ।।८०।।
तत्कर्मसक्तेष्वथ तेषु माता सुतागमाध्वार्पित-नेत्रयुग्मा ।
इत्याह गोष्ठागत-भारवाहान् कृष्णः किमायाति कथं विलम्बः ।।८१

कृष्ण का मुकुट प्रस्तुत करो और हे मालिक ! तुम शुभ्र और लालरंग की गुञ्जाओं के गुच्छे से युक्त विविध प्रकार के हार प्रस्तुत करो ।।७७।।

हे जम्बूल ! तुम सुवर्ण रंग के सदृश पके पके स्वादिष्ट पान को कैंची से उनका गला सड़ा भाग अलग कर, सूक्ष्म स्वच्छ वस्त्र द्वारा साफ करो ।।७८ ।

हे सुविलास ! तुम दूध में भिगोकर मुलायम की हुई सुपारियों को सरौते से धात्री-पत्र के आकार में छोटे छोटे टुकड़े करके उनको शीघ्र यथोचित कर्पूर द्वारा सुवासित करो ।।७९।।

हे रसाल ! हे विशाल ! तुम लोग इलायची, लौंग और कत्था के चूर्ण को कपड़छन कर उसकी गोलियाँ प्रस्तुत करो ।।८०

श्रीमति यशोदाजी का इस प्रकार आदेश पाकर सब सेवक अपने अपने कार्य्य में लग गये। नन्दरानी कृष्ण-बलराम के आगमन की प्रतीक्षा में गोशाला की ओर दृष्टिपात करने लगीं। उस ओर से आते हुए भार वाहकों से पूछने लगी, 'क्या कृष्ण

तामाहुरेके मृदुशादपल्लवान्नवीन-वत्सान् किल चारयत्यसौ।
अन्ये तदोचुः मह गोवृषैर्वृषान् संयोधयन् क्रीड़ति बालकैर्वृतः॥८२
अथाह पुत्रानयोत्सुकोत्सुकं सा रक्तकं शक्तममुष्य सेवने।
त्वं वत्स ! गत्वा मधुमङ्गलं बलं तं चञ्चलं चानय मत्सुतं द्रुतम्॥८३
प्रहित्य तं साथ महानसं गता किं किं त्वया साधितमेतया सह।
सर्वं तदेतन्मम तेमनादिकं संदर्शयेत्याह बलस्य मातरम्॥८४॥
तामाह सम्मार्जित-वेदिकान्तरे नवीन-मृद्भाजन-पंक्ति-संभृतम्।
सा दर्शयन्ती कृत-तेमनादिकं राधां प्रशंसन्त्यथ ताञ्च रोहिणी॥८५

आ रहा है ? भार वाहक बोले-'अभी नहीं'। तब यशोदाजी बोलीं 'इतनी देर क्यों हो रही है' ॥८१॥

यह सुन कोई कोई भार वाहक कहने लगा-'श्रीकृष्णजी तो गोवत्सों को कोमल कोमल घास खिला रहे हैं। कोई कोई कहने लगा-कि उनको तो बच्चे चारों ओर से घेरे खड़े हैं और वह तो गो वृषों की युद्धक्रीड़ा का आनन्द ले रहे हैं ॥८२॥

भारवाहक गण के मुख से यह बात सुन श्रीयशोदाजी रक्तक नाम के सेवक से कहने लगीं कि हे रक्तक ! तुम तो कृष्ण की सेवा में ही रहते हो, इसलिये हे वत्स ! तुम शीघ्र गोशाला चले जाओ। मधुमंगल, बलदेव और हमारे चञ्चल पुत्र कृष्ण को बुला लाओ ॥८३॥

रक्तक को इस प्रकार आदेश दे श्रीयशोदाजी पाकशाला में जाकर श्रीरोहिणीजी को कहने लगीं-'तुमने श्रीराधिका के साथ मिलकर जो जो अन्न-व्यञ्जन बनाए हैं वह हमको दिखलाओ'॥

रोहिणीजी ने कहा, 'हे सुमुखी, देखो, श्रीराधिका ने नाना भाँति के अन्न-पकवान और व्यञ्जनादि नये नये मिट्टी के पात्रों में भरकर वेदी के समीप स्थान स्वच्छ कर रख दिये हैं' इतना कह

सुमधुरं शशितोऽपि सुसंस्कृतं निपुणया पचने मृदु राधया ।
प्रवर-मन्थनिकासु सुसंभृतं सुमुखि पश्य पुरः सखि पायसम् ॥८६॥
वलपुष्टिकरं हृद्यं मधुरं मृदुलं सति ! ।
मन्थनी-संभृतं पश्य संयावञ्च मया कृतम् ॥८७॥
रम्भा-सीरी-क्षीरसारैः शष्कुलीर्विविधाः सति ! ।
पश्य पिष्टविकारांश्च नानाभेदान् सुसंस्कृतान् ॥८८॥
पीयूषग्रन्थि-कर्पूरकेलिकामृतकेलिकाः ।
अनया संस्कृताः पश्य यद्विधिर्मे न गोचरः ॥८९॥
केवलो मथितक्लिन्नो मौद्गोऽयं वटको द्विधा ।
सितालवण-संयोगान्माषस्यापि चतुर्विधः ॥९०॥

कर वह श्रीराधिकाजी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगीं ॥८५॥

रोहिणीजी फिर कहने लगीं–'हे सुमुखि, सखि यशोदा ! रंधन-कार्य्य में कुशला श्रीराधिका का बनाया हुआ 'पायस' जो सामने वाले बड़े मिट्टी के पात्र में भरा है, जो चन्द्रमा से भी सुशीतल और सुमधुर है चन्द्र के समान धवल (शुक्लवर्ण) और अमृत से भी अधिक सुशीतल और सुस्वादु है। और यह जो सामने मिट्टी के पात्र में, 'सञ्जाव' (दग्धपक्वगोधूम चूर्ण) है, जिसको मैंने बनाया है यह बलवर्धक, पुष्टिकर, मधुर और कोमल है ॥८६–८७॥

और देखो–केला, नारियल और खोये द्वारा बनाई गई यह शष्कुली (पिष्टक) नाना प्रकार की प्रस्तुत हो गई हैं ॥८८॥

पीयूषग्रन्थि, कर्पूरकेली और अमृतकेलि श्रीराधा ने बनाई हैं। इनका बनाना तो मैं भी नहीं जानती हूँ ॥८९॥

मूँग की दाल के बड़े भी दो प्रकार के बनाये हैं। नमकीन और मीठे। उर्द की दाल के भी दो प्रकार के बड़े प्रस्तुत किये

चिञ्चाम्रातक-चुक्राम्रैस्तत्तद् द्रव्यादि-योगतः ।
ईषन्मधुर-गाढादि-भेदादम्लो द्विषड् विधः ॥६१॥
वद्धरम्भा-नव्यगर्भ-तन्नव्य-मुकुलांशयोः ।
मान-कन्दाम्बु-कच्वीनां मुखांशस्यालुकस्य च ॥६२॥
कुष्माण्ड-डिण्डिशानाञ्च चक्राभ-खण्डजालकम् ।
चणकक्षोदपङ्काक्तं घृतभृष्टं पृथक् पृथक् ॥६३॥युग्मकम्॥
चणकक्षोद-वटकादथाज्यभृष्टानि केवलम् ।
अपराण्यम्ल-सत्तक्र-क्वाथ-क्लिन्नानि लोकय ॥६४।
चणकक्षोद-पिण्डानां स्विन्नानां क्वथिताम्भसि ।
खण्डानि द्रव्यपाकादि-भेदान्नानाविधानि च ॥६५॥युग्मकम् ।

है । नमकीन और मीठे अलग अलग । इस प्रकार चार प्रकार के बड़े बन गये हैं ॥६०॥

यह देखो-चार प्रकार के खट्टे फल 'तैंतुल, आमड़ा, आमरूल और आम्र' द्वारा १२ बारह प्रकार के रस (सोंठ खटाई) प्रस्तुत किये है । इनमें चार प्रकार के तो खट्टे, चार प्रकार के कुछ कुछ मधुर और चार प्रकार के अधिक मधुर हैं । इनके संयोग से बड़े (दालकी) पकौड़ा आदि का स्वाद विशेष हो जाता है ॥६१॥

और यह देखो:-गर्भमोचा, (थोड़) मोचा, मानकचु, सकरकन्द, पानिकचु, आलू और कुष्माण्ड को चने के चूर्ण घोल में अलग अलग मिलाकर घी में तलकर वटक पकौड़ी बनाकर मठा में भिगोदी हैं । अन्यान्य प्रकार के और भी वटक बनवाए हैं । जिनको सौंठ इत्यादि से खाते हैं ॥६२-६४॥

श्रीरोहिणीजी आगे कहने लगीं कि राधिका ने वेसन के आटे द्वारा अनेक प्रकार के सेव (लोहे के पोने द्वारा) मोटे, वारीक और माध्यम उत्तम उत्तम स्वादिष्ट, प्रस्तुत किये हैं ।

वटिका-फलमूलानां पृथक् संयोग-भेदतः।
त्रिजात-मरिचाद्यै स्तु प्रकारान् वहुधाकृतान् ॥९६॥
कर्कारुज्योत्स्निकाऽलावु-फलान्यालि पृथक् पृथक्।
राजिका-दधियोगेन संस्कृतान्यनया शुभे ॥९७॥
वत्सेप्सित-प्रसूनानि घृतभृष्टानि केवलम्।
घृतभृष्टा दधि-क्लिन्नाः कलिकाः कोविदारजाः ॥९८॥
घृतभृष्टा दधि-क्लिन्नाः प्रसून-वटिका द्विधा।
पटोलस्य फलान्यज्या-भृष्टानि रुचिदान्यालम् ॥९९॥
वृद्धकुष्माण्ड-वटिकां कच्वीमानालुकन्दकैः।
तिक्त-नालीत-चूर्णाढ्याश्चविकाढ्याः पराः कृताः ॥१००॥
सितैला-मरिचैर्योगाद् ग्धतुम्वी-कृतानया।
तद्योगादपरं मिष्टं क्षीरकुष्माण्ड-नामकम् ॥१०१॥

एवम् लवंग, जायफल, दालचीनि, जावित्री (तेजपत्ते) और हरि-मिर्च द्वारा भिन्न भिन्न पदार्थ के संयोग से भिन्न भिन्न प्रकार की वटिका (वड़ी) फल और मूल भी बनाए हैं—दर्शन करो ॥९५-९६

कोला, तोरई, और घीया को राई के जल और दही में मिश्रित कर पृथक् पृथक् रायते प्रस्तुत किये हैं ॥९७॥

श्रीकृष्ण को प्रिय वक और काञ्चन आदि फूलों की कलियाँ भी घी में तलकर दही में मिलाकर प्रस्तुत की हैं ॥९८॥

घी और दूध के द्वारा दो प्रकार की फूल—वड़ी और सुस्वादु परवल भी घी में भून कर बनाये हैं ॥९९॥

अरवी, मानकचु, आलु और सकरकन्द के साथ पेठा वड़ी, वनाई है इनमें से कोई कोई तिक्तलालतापत्र के चूर्ण से कोई कोई (चविका) चाई संयोग से प्रस्तुत किये गये हैं ॥१००॥

श्रीराधिकाजी ने चीनी, इलायची और कालीमिर्च के सह-

दधिशूरणकं मिष्टं धात्रीशूरणकं परम् ।
दध्नैकं भर्जितं चान्यं कारविल्वफलं द्विधा ॥१०२॥

मृदुरम्भा-गर्भखण्ड-वृद्ध-कुष्माण्डखण्डयोः ।
सिता-दधियुतः पाको मधुराम्लः सुशीतलः ॥१०३॥

नालीत-मेथी-शतपुष्पिका-मिशी-पटोल-वास्तूक वितुन्न-मारिषाः।
प्रकार-संयोग-विभेदतोऽनया शाकाः सुधागर्व्वहृतः सुसंस्कृताः॥१०४

कलम्वी-पक्वचिञ्चाया रसपक्वा रुचिप्रदा ।
कृष्णनालीतृशाकोऽयमामाम्रफलयुक् शुभः ॥१०५॥

योग से 'दुग्धतुम्बी' अर्थात् दूध के साथ लाऊ और उसी प्रकार चीनी, इलायची और मिर्च के योग से क्षार–कुष्माण्ड प्रस्तुत किये हैं। दही और चीनी आदि के साथ एवम् आँवला के सहयोग से घी में भुना 'शूरणक (ओल) प्रस्तुत हो गया है। दधि के योग से और चीनी के योग से अलग अलग दो प्रकार के 'कद्वेल' भी प्रस्तुत किये हैं ॥१०१–१०२॥

केले के फूल और पके (कोला) के टुकड़ों का चीनी और दही का पाक भी बन गया है । यह बहुत शीतल और मधुर होता है ॥१०३॥

लालतापत्र, मेथी, शतपुष्पी, (शलुफा) मिषी (महरी) पटोल (परवल) वथुआ, वितुन्न (शुशनी) और मारिष (नटिया) इन सब का शाक राधाजी ने विविध प्रकार से बनाया है जो अमृत के भी गर्व को चूर करता है अर्थात् बहुत स्वादिष्ट है ॥१०४

पकी हुई इमली के रस में सिद्ध किया हुआ कलमी शाक और कच्चे आम के योग से काले लालूता पत्र की चटनी दोनों राधिकाजी ने प्रस्तुत की हैं ॥१०५॥

युकुष्टकस्य मुद्गस्य माषस्याप्यधुना मया ।
त्रिविधोऽयं सुधाकूपनिभः सूपो विपाच्यते ॥१०६॥
पङ्कैः सुमन-चूर्णानां दासीभिर्मृ शमर्दितैः ।
पूर्णेन्दुमण्डलाकाराः क्रियन्ते रोटिका मया ॥१०७॥
क्षालिताश्चीनचेलेषु निबद्धास्तण्डुला इमे ।
आगते गोव्रतः कृष्णे पाच्या मे क्वथिताम्भसि ॥१०८॥
कृतानि क्रियमाणानि कर्त्तव्यानि तु कानिचित् ।
इत्यन्नव्यञ्जनानि त्वं संसिद्धानि प्रतीहि नौ ॥१०९॥
सौरभ्य-मद्वर्ण-मनोहरं तत् सा वीक्ष्य सर्व्वं मुदिता बभूव ।
जिज्ञासमानामथ तद्विधानं तां रोहिणी विस्मयपूर्व्वमाह ॥११०॥

और हे सखि देखो-मैंने तीन प्रकार की दालें बना रक्खी है, मूँग, उर्द और बन मूँग (मौठ) । यह अमृत जैसी सुस्वादु हैं ॥१०६॥

और दासियों द्वारा मथी हुई मैदा की चन्द्राकार गोल गोल रोटियाँ (फुलकिया) मैंने बनादी हैं ॥१०७॥

यह देखो धुले धुलाये चावलों की पोटली बनी रक्खी है । चूल्हों पर पात्रों में भरा पानी प्रस्तुत है । ज्योंही कृष्ण गोशाला से लौटेंगे ठीक उसी समय रन्धन कर दूँगी ॥१०८॥

हे सखि यशोदे ! हम सबने जो पदार्थ अबतक बनाये है अथवा बना रहे हैं, और जो जो आगे बनाने को है, उन सब को यही समझो कि प्रस्तुत ही हो चुके हैं अर्थात् श्रीकृष्ण के गोशाला से आने पर सब कुछ प्रस्तुत ही मिलेगा ॥१०९॥

तब श्रीयशोदाजी सुन्दर, सुगन्धित और मनोहर समस्त अन्न व्यञ्जनादि का निरीक्षण कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुई । वे श्रीरोहिणीजी से पूछने लगीं कि यह सब पदार्थ कैसे इतने

सामग्री सैव सामान्या पाकस्य प्रक्रियाप्यसौ ।
किन्त्वपूर्व्वगुणे हेतुर्गान्धर्व्वा हस्त-सौष्ठवम् ॥१११॥
सा तां राधामग्रसंस्कारसक्तां प्रस्विद्यन्तीं लज्जया नम्रवक्त्राम्।
दृष्ट्वा राज्ञी स्नेह-विक्लिन्नचित्ता दासीमस्या वीजनायादिदेश । ११२
ततो गता दुग्धगृहं व्रजेश्वरी तत्रापि ताभिः परिसंस्कृतान्यसौ ।
सर्व्वाणि भक्ष्याणि विलोक्य नन्दिता सुतागमोत्का लघु गोपुरं ययौ॥
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।

सुन्दर, सुवासित, सुश्री और मनोहर बन गये । श्रीयशुमतिजी के ऐसे बचन सुन श्रीरोहिणीजी आश्चर्य युक्त उनसे कहने लगीं ॥११०॥

हे यशोदे ! यह समस्त पाक—सामिग्री और इनके बनाने की विधि एक साधारण सी बात है किन्तु इनमें जो सुन्दरता, सौरभता आदि गुण दिखाई दे रहे है वह सब श्रीराधिकाजी की हस्तकला की ही सुन्दरता हैं । अर्थात् उनके हाथ से बनाये जाने के कारण ही यह इतने विचित्र बने हैं ॥१११॥

तब श्रीयशोदाजी यह देखकर कि श्रीराधिका अपनी प्रशंसा को सुन लजागई है और काम में लगे रहने के कारण पसीने में डूबी हुई है अतः स्नेह से व्यथित हो एक दासी को पँखा डुलाने की आज्ञा करने लगीं ॥११२॥

इसके बाद व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजी दुग्धशाला में चली गईं और वहाँ की कार्य्यकर्त्ताओं द्वारा बनाई गई सब सामिग्री को प्रस्तुत देख अत्यन्त प्रसन्न हुईं, किन्तु कृष्णजी को गोशाला से अभी तक आया न देख उत्कण्ठिता हो शीघ्र नगर के द्वार की ओर को चलदीं ॥११३॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभूजी के चरणकमलों के मधुपान में भ्रमर

काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः कल्यविलास-वर्णनमयः सोऽयं तृतीयो गतः ॥३॥

❁ अथ चतुर्थः सर्गः ❁

अथ व्रजेन्द्रेण कृताग्रहोत्करैः कृष्णः स्वगोष्ठात् प्रहितो निजोन्मुखीम् ।
स्तन्यास्रविक्लिन्न-पयोधराम्बरामम्बां मिलन्तीं पुरतो ददर्श सः ॥१

एह्येहि वत्स क्षुधितोऽपि शीघ्रं नायासि गेहं किमु मां दुनोषि ।
राद्धं यदन्नादिकमप्यतीव यत्नेन तच्छीतलतां प्रयाति ॥२॥

स्वरूप श्रीरूपगोस्वामीजी की सेवा के फलस्वरूप, श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामी द्वारा प्रकाशित और श्रीजीवगोस्वामीजी के संसर्ग में उत्पन्न एवं श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वरदान प्रभाव द्वारा प्रादुर्भूत श्रीगोविन्दलीलामृतकाव्य का 'प्रातःकाल विलासमय' नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ॥३॥

इसके उपरान्त व्रजराज श्रीनन्द-महराज ने अत्यन्त आग्रह करके श्रीकृष्ण को गोशाला से घर भेज दिया। श्रीकृष्णभी गोशाला से आकर देखते हैं-कि माता यशोदाजी पहिले ही से द्वार पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही हैं और पुत्रस्नेह से द्रवीभूता उनका वक्षःस्थल स्तन-दुग्ध और नेत्र-जल से भीगा हुआ है ॥१॥

स्नेहार्द्र जननी श्रीकृष्ण को सामने आता देख आग्रह पूर्वक कहने लगीः-'हे पुत्र! शीघ्र आओ, भूख लग रही होगी, तब

इतीरयित्वा तनयं तदङ्गं संमार्जयन्ती करपल्लवेन ।
सा तद्वयस्यान स्वगृहायनोत्कानाभाषत स्नेह-विपाक-दिग्धा ॥३॥
विना भवद्भिः प्रचुरं न भुङ्क्ते द्राक् सङ्गमार्थं भवतां समुत्सुकः ।
यच्चञ्चलोऽयं तदनेन वत्साः सग्धिः संदृष्टा मम मन्दिरे वः ॥४॥
तस्मात् स्वगृहान् पुत्राः स्नात्वा भूषणभूषिताः ।
क्षुधार्त्ताः स्थ द्रुतं भोक्तुमागच्छत ममालयम ॥५॥
गतेषु तेषु हृष्टेषु सराम-मधुमङ्गलम ।
सुतमादाय स्वगृहं ययौ व्रजकुलेश्वरी ॥६॥

भी घर आने का नाम नहीं लेते हो। इस प्रकार क्यों हमको दुःख दे रहे हो। बड़े परिश्रम से जो अन्न-व्यञ्जनादि तुम्हारे लिये बनाये है ठण्डे हो रहे हैं' ॥२॥

माता यशोदाजी पुत्र से इस प्रकार कह हथेली से उनके अंग को साफ करने लगी और अपने अपने घर जाने के इच्छुक सब बच्चों से कहने लगीः— ॥३॥

हे बच्चो ! तुम से अलग होने पर अर्थात तुम्हारी अनुपस्थिति में हमारा पुत्र कृष्ण तुम सबसे मिलने के कारण उत्कण्ठित होकर भली प्रकार भोजन नहीं कर पाता है, इसलिये हम चाहती हैं कि तुम सब हमारे घर ही रहकर कृष्ण के साथ ही भोजन ग्रहण करो ॥४॥

फिर कहने लगीः—'हे सब बच्चो ! तुम सब को भूख लग रही होगी। कुछ समय के लिये घर जाकर स्नान के बाद भूषणादि से सुसज्जित हो हमारे घर आना तब सब एक साथ मिलकर भोजन करना' ॥५॥

श्रीकृष्णजी के समान आयु वाले सब बच्चे यशोदा-मैया की यह बात सुन प्रसन्न-चित्त बलदाऊ मधुमङ्गल सहित वहाँ

तृषितदृगतिशुष्यच्चातकीवल्लवीनां
निज-मधुरिम-धारासार-वर्षैर्निषिञ्चन् ।
निज-नयन-चकोरौ पाययंस्तन्मुखेन्दु-
द्युति-मधुरसुधां स्वं गेहमायान्मुकुन्दः ॥७॥

तमागतं स्नानव-वेदिकान्तरं भृत्यः समुत्तार्य्य विभूषणं तनोः ।
सुकुञ्चितं चीननवीनमंशुकं सारङ्गनामा लघु पर्य्यधापयत् ॥८॥
तत्रोपविष्टस्य सुखं वरासने प्रक्षाल्य पत्री चरणाम्बुजं प्रभोः ।
गन्धाम्भसा पत्रक-पाणिविस्फुरद्भृङ्गारमुक्तेन ममार्ज वाससा ॥९॥
अभ्यज्य नारायणतैल-पूरैः प्रत्यङ्ग नानामृदुबन्ध-पूर्व्वम् ।
सुबन्धनामा क्षुरि-सूनुरस्य प्रेम्णा सम्मर्द्दनमाततान ॥१०॥

से चले गये । तब यशुमतिजी कृष्ण को घर के भीतर ले गई ॥६॥

श्रीकृष्णजी अपने अंग की मधुरिमा सुधा का वर्षण करते करते समस्त गोपियों के निरस नयन-रूपी चकोरी को तृप्त करते हुए अपने दोनों नेत्र रूप चकोरों को गोपियों के मुखचन्द्र के सुधा-पान से परिपूर्ण करते हुए घरके भीतर जाने लगे ॥७॥

तत्पश्चात् जब श्रीकृष्ण स्नान-मण्डप के पास चले गये तब सारङ्ग सेवक ने उनके अंग से सब आभूषण उतार दिये और एक छोटा नवीन वस्त्र पहिना दिया ॥८॥

तब वे स्नान-चौकी पर आराम से बैठ गये । पत्री नामक सेवक उनके दोनों चरणों को सुगन्धित जलधारा से जो कि पत्रक नामक सेवक के हस्तस्थित स्वर्ण-कलस से उड़ेल रहा था साफ करने लगा तथा भली प्रकार धोकर फिर अँगोछे से साफ कर दिया ॥९॥

इसके बाद सुगन्ध नामक नाऊ का पुत्र प्रेम से नारायणतैल द्वारा धीरे धीरे कोमलता के साथ उनके अंग को मलने लगा ॥१०

उद्वर्त्तनेनास्य मुदा सुगन्धः शीतेन पीतेन निसर्ग-शीतम् ।
स्निग्धेन मुग्धो नवनीतपिण्डा-दुद्वर्त्तयामास शनैस्तदङ्गम् ॥११॥
धात्रीफलाद्र कल्केन केशान् शीतसुगन्धिना ।
स्निग्धः स्नग्धेन सुस्निग्धान् कर्पूरोऽपि समस्करोत ॥१२॥
प्रक्षालयन् शीतलवारिधारया शनैस्तदङ्गानि पयोद-रक्तया ।
स्वभाव-शीतोज्वल-कोमलान्यलं चीनांशुकेनात्र ममार्ज रक्तकः॥१३
मन्दपक्क-परिवासित-कुम्भ-श्रेणि-संभृत-जलैरथ दासाः ।
शातकुम्भ-घटिकात्त-विमुक्तैः स्वेश्वरं प्रमुदिताः स्नपयन्ति ॥१४॥
तच्छ्रीमदङ्गं मृदुचीन-वाससा सम्मार्ज्य केशानपतोय-बिन्दुकान् ।
कृत्वा च प्रत्युद्गमनीयमंशुकं पत्री हिरण्यद्युति पर्यधापयत् ॥१५

अत्यन्त सुन्दर सुबन्ध नामक एक अन्य सेवक ने मक्खन से भी अधिक कोमल, स्वच्छ, सुशीतल पीले उबटन द्वारा उनके प्रत्येक अंग पर विलेपन कर दिया ॥११॥

स्निग्ध और कर्पूर दो सेवकों ने आमले की कचरी से, जो स्वच्छ और शीतल थी, उनके बालों की लटाओं को साफ कर दिया ॥१२॥

फिर रक्तक और पयोद दो सेवकों ने शीतल–जल की धारा डालते हुए सूक्ष्म–वस्त्र से उनके समस्त–अंग को जो स्वाभाविक शीतल और स्वच्छ है साफ कर दिया ॥१३॥

इसके बाद अन्यान्य सेवकों ने कुछ कुछ गर्म और सुगन्धित जल से जो स्वर्ण के कलसों में भरा हुआ था, छोटे स्वर्ण के पात्रों में भरभर कर उनको स्नान करा दिया ॥१४॥

तब पत्री नाम के सेवक ने अँगोछे से उनके अंग को और बालों को खूब अच्छी तरह से साफ कर सोने के समान दो सुन्दर वस्त्र उनको पहिना दिये ॥१५॥

तत्रोपविष्टस्य सुमृष्ट-वेदिका-विन्यस्तपीठेऽगुरुधुप-वासितैः ।
जूटं कचैः कङ्कतिका-बिशोधितै-र्विधाय दाम्ना कुमुदोप्यवेष्टयत् ॥१६
विधाय गोरोचनयास्य भाले तमाल-पत्रं मृगनाभि-मध्यम ।
शृङ्गारकारी मकरन्दनामा लिलेप गात्राणि चतुःसमेन ॥१७॥
तस्य श्रीमद्भुजयुगलयोः कङ्कणे चङ्कणाख्ये
हैमे राजन्मकरवदने कर्णयोः कुण्डले द्वे ।
मञ्जीरौ श्रीचरण-युगले हंसहारि-प्रणादौ
हारं तारामणिमथ हृदि प्रेमकन्दो युयोज । १८॥
तत्र तत्र सुतं माता पश्यन्ती कृत-विक्रवा ।
त्वरयन्ती कृतौ दासान स्वयञ्च विदधे क्रियाम् ॥१९॥

तब वे स्नान-गृह के एक ओर पड़ी हुई सुन्दर और स्वच्छ चौकी पर बैठ गये। मुकुन्द नाम के सेवक ने आकर बालों की लड़ियों को कङ्घी द्वारा साफ कर उनको डोरी से लपेट जूड़ा बाँध दिया ॥१६॥

वेशभूषा सँवारने वाले मकरन्द नाम के सेवक ने श्रीकृष्णजी के ललाट में 'तमालपत्र' (तिलक) की रचना करदी और उसके बीच कस्तूरी भरदी। उनका समस्त अंग भी कस्तूरी, कपूर, अगर और केसर की लेप से लेपन कर दिया ॥१७॥

प्रेमकन्द नाम वाले सेवक ने उनके दोनों हाथों में सुवर्ण के बने 'चकण' नाम से प्रसिद्ध कड़े (कङ्कण) पहिना दिये, कानों के छिद्र में मछली की आकृति के कुण्डल और युगल चरणों में हंस की नाद को भी तिरस्कार करने वाले नूपुर एवम गले में नक्षत्रों के समान चमकने वाला हार पहिना दिया ॥१८॥

सेवकगण जिस जिस स्थान पर श्रीकृष्ण की वेश-भूषा और तेल मलने का कार्य्य करते थे उसी उसी स्थान पर श्रीयशोदाजी

स्नातानुलिप्ताहृत-भूषिताभ्यां श्रीमद्बल-श्रीमधुमङ्गलाभ्याम् ।
तथाविधैस्तत्र तदैव लब्धैः समं वयस्यैर्विरराज कृष्णः ॥२०॥
तोयार्द्र-कञ्चुकसुवेष्टित-तोयपूर्ण-
भृङ्गारपालि-विमलासन-पंक्तियुक्ताम् ।
संसिक्त-मृष्ट-वरधूप-विधूपितां तान्
वेदीं निनाय किल भोजयितुं तदाम्बा ॥२१॥
श्रीदाम-सुबलौ वामे पुरोऽस्य मधुमङ्गलः ।
दक्षिणे श्रीबलश्चान्ये परितः समुपाविशन् ॥२२॥
तेषूपविष्टेष्वथ पानकानि स्वर्णेषु पात्रेषु सुसंभृतानि ।
पानाय चित्रोपहृतानि माता पुत्राय तेभ्यश्च ददौ क्रमेण ॥२३॥

पहुँचकर उनसे जल्दी जल्दी कार्य्य समाप्त करने का आदेश दे रही थीं और स्नेह के वशीभूता स्वयं भी तेल-मर्दन आदि कार्य्य करने लग जाती थीं ॥१९॥

इसके बाद स्नान, अनुलेपन और विविध-प्रकार के आभूषणों द्वारा सुसज्जित, श्रीबलदेवजी, मधुमङ्गल और अन्यान्य सखागण आय उपस्थित हुए, श्रीकृष्ण उन सबको आते देख उनके समीप बैठ गये ॥२०॥

तब श्रीयशोदा ने उन सब बच्चों को भोजन जिमाने के कमरे (वेदिका) में, जो जल द्वारा शीतल किया हुआ था, चारों ओर वस्त्र द्वारा आच्छादित था, सोने के गाडू और मूल्यवान आसनों द्वारा शोभा को प्राप्त हो रहा था, ले जा बिठाया ॥२१॥

जब श्रीकृष्ण उस मनोहर वेदी में बैठ गये, तब उनके बायें ओर श्रीदाम और सुबल, दाँई ओर श्रीबलदेव और सामने मधुमङ्गल एवं अन्यान्य सखा-गण इधर उधर बैठ गये ॥२२॥

श्रीयशोदा ने स्वर्ण के गिलासों में नारियल और गन्ने आदि

स्वस्व-संस्कृत-मिष्टान्नं प्रातराशापयोगि यत् ।
उपजह्रुस्तयाहूता मात्रे गोप्यो मुदान्विताः ॥२४॥
श्रीराधया यत्नत एव गेहादानीत-खण्डोद्भव-लड्डुकानि ।
गङ्गाजलाख्यान्यथ रङ्गदेवी तदिङ्गितेनोपजहार मात्रे ॥२५॥
तानि माता बलादिभ्यो विभज्य स्नेहतो ददौ ।
प्रकीर्ण-स्वर्णपात्रेषु विनिधाय पृथक पृथक् ॥२६॥
आस्वादयन्तं घृतपक्वमन्नं सुनर्म्मभिस्तानपि हासयन्तम् ।
आलोकयन्तं नयनाञ्चलेन राधाननं तं ददृशुर्मुदाल्यः ॥२७॥
अदो भद्रमिदं मिष्टमेतत्त स्निग्धं सुचारु तत् ।
तर्ज्जन्या दर्शयन्त्यम्बा भुङ्क्ष्वेव वत्सेत्यभाषत ॥२८॥

का रस अपनी सखी चित्रा द्वारा लिवा ला कर कृष्ण, बलदेव और उनके सब सखाओं को पीने के लिये दे दिया ॥२३॥

जिन गोपियों को श्रीयशोदा ने आमन्त्रित किया था उन सबने अपने साथ लाया हुआ प्रातःकालीन उपयोगी सब सामान श्रीयशोमतिजी के हाथों में अर्पण कर दिया ॥२४॥

श्रीराधिका जो 'गङ्गाजल' नाम से विख्यात खाँड के लड्डू अपने घर से बनाकर लाई थी, रंगदेवी द्वारा श्रीयशोदा के पास भिजवा दिये ॥२५॥

श्रीयशोदा ने वह सब लड्डू रङ्गदेवी से ले स्वर्ण के थाल में अलग अलग रख कर बलदेव आदि सब बालकों में बाँट दिये ॥

श्रीकृष्ण सखाओं के साथ हास्य परिहास करते करते घी में सिद्ध हुई सब खाद्य वस्तुओं को खाने लगे, आप कभी कभी श्रीराधिका के मुखारविन्द की ओर दृष्टि-पात करते थे। उनकी यह भङ्गीमा देख सब सखियाँ आनन्द-मग्ना हो गईं ॥२७॥

श्रीयशोदा तर्जनी-अँगुली द्वारा बता बता कर कहने लगीं,

यद्यद्दिष्टं भवेद्यस्य ज्ञात्वा ज्ञात्वा हसन् हरिः ।
तस्मै तस्मै ददौ तत्तत्स्वपात्रात् प्रक्षिपन् मुहुः ॥२९॥
वीक्ष्य यत्नान्वितामम्बां मन्दमश्नन्तमच्युतम् ।
परिहास-पटुस्तस्मिन् व्रजेशामवदद्वटुः ॥३०॥
अयञ्च द्वूरि नात्त्यम्ब देहि मे सर्व्वमद्म्यसौ ।
मयैवालिङ्गितः पुष्टो भविता भूरिभोजिना ॥३१॥
नास्य मन्दरुचेः शक्तिर्घृतपक्वान्न-भोजने ।
तदस्मै लघुराद्धान्नं व्यञ्जनान्यम्ब दापय ॥३२॥
अथ कृष्णः स्वपात्रस्थ-पक्वान्नाञ्जलिभिर्हसन् ।
पञ्चषैः पूरयामास भुङ्क्ष्वेति वटु-भाजनम् ॥३३॥

'हे वत्स ! यह द्रव्य अति उत्तम है, यह अति सुमिष्ठ है और यह अति मनोहर है इनको तुम भोजन करो ॥२८॥

तब श्रीकृष्ण अपने सब सखाओं को जो जो खाद्य-वस्तु जिस जिस को प्रीतिकर थी उसी उसी को पात्र में से उठा उठा कर हँसते हँसते बार बार सबको देने लगे ॥२९॥

हास्य-विनोद मे चतुर, मधुमङ्गल, श्रीकृष्ण को भोजन करने में शिथिल और श्रीयशोदाजी को परोसने में विशेष आतुर देख, श्रीव्रजेश्वरीजी से उपहास पूर्ण वाक्यों में कहने लगाः-॥३०॥

हे मैय्या ! कृष्ण तो कुछ भी नही खा रहा है, इस लिये जो भी खाद्य वस्तु आपके पास मौजूद है मुझे क्यों नहीं दे देती। मैं तो अधिक भोजन करने वालों में से हूँ। भोजन करने के बाद आपके कृष्ण को आलिंगन कर लूँगा तब वह खूब मोटा हो जायेगा ॥३१॥

हे माता इसकी जठराग्नि मन्द है। घी में सिद्ध भोजन यह पचा नही सकता, इसलिये इसको, चावल और शाकभाजी ही दो॥

मधुमङ्गल के यह वाक्य सुन श्रीकृष्ण ने अपनी थाली में

ततो बामकफोणिं स्वं वादयन् वामपार्श्वके ।
सम्यग् भोक्तुं कृतारम्भः प्रहृष्टो वटुराह तम् ॥३४॥
वयस्य पश्य भक्ष्येऽहमित्यश्नन् कवलद्वयम् ।
मातर्मे दधि देहीति प्राहिणोत्तां तदाहृतौ ॥३५॥
गोपाः पश्यत नृत्यतीह चपलः पक्वान्न-लब्धाशया
कीशेशो दधिलम्पटोऽयमिति तान् कृत्वोन्मुखांस्तद्दिशि ।
तेषां भोजनभाजनेषु शनकैर्निक्षिप्य भक्ष्यं निजं
सर्व्वं भुक्तमिदं मयेति स पुनर्गर्व्वायमानोऽवदत् ॥३६॥
अथागतां तां दधिपात्रहस्तामुवाच पश्याम्ब विनैव दध्ना ।
मयोपभुक्तं द्रुतमेव सर्व्वं तत् पायसं दापय भूरि मह्यम् ॥३७॥

से पाँच छय अञ्जलि पक्वान्न, यह कहते हुए कि 'ले खा' उसकी थाली में हँसते हँसते डाल दिया ॥३३॥

मधुमङ्गल ने जो कृष्णजी के बायें बैठा था, उनके द्वारा दिये गये पक्वान्न को अपनी बाँई कुनूई बजाते हुए, खाना आरम्भ कर दिया और कहने लगाः—॥३४॥

सखे ! अब तुम देखो—'मैं खाताहूँ,' ऐसा कह, एक ही बार, दो ग्रास मुखमें रख लिये बीच बीच में यह भी कहता जाता था कि हे माता ! 'दधि लाओ—दधि लाओ' ॥३५॥

हे बालको ! हे सखाओ ! देखो ना, दधि खाने का लोभी यह बन्दर पक्वान्न भोजन के दर्शन कर, नाच रहा है । उसके इतना कहने पर ज्यों ही सब बच्चे उस ओर देखने लगे तब मधुमङ्गल ने अवसर पा अपने पात्र का सब अन्न उनके पात्र में डाल दिया और सगर्व कहने लगाः—'मैं तो अपना सब भोजन पा चुका' ॥३६॥

इस बीच श्रीयशोदा मैया को हाथ में दधिपात्र लाता देख

हैमेषु पात्रेषु निधाय राधया नवीन-रम्भादल-मन्दमारुतैः।
शीतीकृतं स्वे परिवेशितं करे तेभ्यो ददौ पायसमाशु रोहिणी ॥३८

स्यन्दानिकोपरि धृतेषु पुरः सुवर्ण-
स्थालीचयेष्वनुचरैर्विमलादि-मुख्यैः।
राधार्पितं निजकरं वरमोदनं सा
तेभ्यस्ततः परिविवेश शनैर्वलाम्बा ॥३९॥

आनीयानीय गान्धर्वा-दत्तानि व्यञ्जनानि सा।
शाकादीन्यम्लशेषानि तेभ्योऽदात् क्रमशः शनैः ॥४०॥

रम्भोदरस्थ-च्छदवर्ण-लाघवाः संमृष्ट-गोधूम-सुचूर्ण-रोटिकाः।
घृताभिषिक्ताः परिवेशितास्तया तेभ्योऽन्यपात्रेषु निधाय सा ददौ ॥

कहने लगा:-हे माता ! 'तुम दधि ला भी नहीं पाई' कि इतने में मैंने अपनी थाली का सब भोजन खा लिया है। अब तुम मेरे लिये शीघ्र पायस प्रदान करो ॥३७॥

रोहिणीजी ने तब सुवर्ण के पात्र में रक्खा हुआ पायस, जिसको श्रीराधिका नवीन केले के पत्र द्वारा हवा करके ठण्डा कर रही थी, सब के सामने परोस दिया ॥३८॥

अन्य अन्य उत्तम भोजन जो कमला आदि दासियों ने पहिले से ही वहां लाकर तिपाई पर रख दिये थे, धीरे धीरे श्रीराधा से ले ले कर अपने हाथ से सबके आगे परोसने लगीं ॥३९

तब श्रीरोहिणी ने भिन्न भिन्न भाँति के शाकव्यञ्जन और खटाई (सोंठ खटाई) एक ओर लेकर दूसरी ओर तक सबको परोसने लगीं। श्रीराधिका सब वस्तु उठा उठा कर उनको देती रहीं ॥४०॥

तदुपरान्त उन्होंने, केले के भीतरी पत्र के समान धवल (सफैद) और कोमल, भली प्रकार गुन्दे हुए आटे की घी चुपड़ी

धनिष्ठया यल्ललितादि-संस्कृतं तत्तद्रसालादिकमाहृतं पुरः ।
कृत्वा पृथक् पात्रचये व्रजेश्वरी सस्नेहमेभ्यो ददती मुमोद सा ।।४२
हृदयदयितमुख-वीक्षणाहृष्टास्तदतिमधुर-मृदु-कान्ति-विकृष्टाः ।
मुमुदुरुदित-पृथु-भावविहस्ता रमण-भवनमधि ताः पुरुशस्ताः ।।४३
अन्नान्यथो तानि चतुर्विधानि ते पीयूषसारोद्भव विक्रिया इव ।
आस्वादयन्तो मधुराणि संस्पृहं तं हासयन्तो जहसुश्च नर्म्मभिः ।।४४
चर्वन्ति चर्व्याणि मृदूनि केचिल्लेह्यानि चान्ये चटुलं लिहन्ति ।
पिबन्ति पेयानि परे प्रहृष्टाश्चूष्यन्ति चूष्याण्यपरे वितृप्ताः ।।४५।।

रोटियाँ (फुलकिया) किसी अन्य-पात्र में लेकर, उन सबको परोस दी ।।४१।।

प्रसन्न वदना व्रजेश्वरी श्रीयशोदा, ललिता आदि सखियों द्वारा बनाये गये भिन्न भिन्न प्रकार के रस (रसाल) जो धनिष्ठा ने पहिले ही से पृथक् पृथक् पात्रों में सँजो दिये थे, सब को प्रदान करने लगीं ।।४२।।

आज श्रीकृष्ण–भवन में अपार–मङ्गल–स्वरूपा श्रीराधिका आदि सखियाँ अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का दर्शन कर एवं हर्षोन्मत्ता उनकी मनोहर मधुर–कान्ति का दर्शन कर बिविध भाव से आक्रान्त होकर हास्य करने लगीं ।।४३।।

इधर मधुमङ्गल आदि सखायें, बिलोये हुए अमृत के समान स्वादिष्ट चार प्रकार अन्न-व्यञ्जन इच्छानुसार भोजन पान करते परिहास–पूर्ण बाक्यों द्वारा श्रीकृष्ण को खूब हँसाने लगे और स्वयं भी हँसने लगे ।।४४।।

सह भोज में (गोष्ठीभोज) बैठे सखागणों में से कोई कोई तो चर्वित खाने की बस्तु को चर्वण कर, कोई कोई तरल पदार्थ को चाट चाट कर, कोई चूसने योग्य द्रव्य को चूस चूस कर

स्वादुङ्कारं कमलनयनः सम्पृहं तत्तदन्नं
हस्तस्पर्शादमृतमधुरं मन्दमन्दं प्रियायाः।
तद्वक्त्राब्जप्रहित-नयनप्रान्तभृङ्गो निगूढं
प्राश्नन्नम्बा-मनसि निविडं स प्रमोदं व्यतानीत् ॥४६॥
प्रहित-चकित-नेत्रप्राप्त दृष्टिप्रणाली-
मिलित-तदति-लावण्यामृतस्वादपुष्टा ।
प्रसरदखिल-भावोल्लाससमाच्छादयन्ती
दयित-हृदयमुच्चै राधिकाप्याजहार ॥४७॥
अथ बलजननीं तामन्तरा कृत्यनृत्य-
न्मदकल-मदिराक्षीमर्पयन्तीं करेऽस्याः।
मृदु मृदु मधुरान्नं प्रेयसीं प्रेक्ष्य कृष्णः
श्लथरुचिरशनेऽभूदुन्मना नागरेशः ॥४८॥

और कोई कोई पीने योग्य वस्तु को घूँट भर भर कर तृप्ति लाभ कर रहे थे ॥४५॥

श्रीराधिका के मुख-रूपी कमल के लिये भ्रमर-रूप कमल-लोचन श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा के प्रति नयनपात करते करते तथा उनके हाथ से बनाये अमृत से भी सुस्वाद समस्त अन्न भोजनादि तृप्ति सहित भोजन कर श्रीयशोदा मैय्या के आनन्द को बढ़ाने लगे ॥४६॥

श्रीराधिका श्रीकृष्ण के अंग की सुन्दरता का आस्वादन कर परितृप्त हो अपने मानसिक प्रगाढ़ भाव को छिपाती हुई नेत्रपात द्वारा श्रीकृष्ण के मन को खींचने लगीं ॥४७॥

जिस समय श्रीराधिका अन्न-व्यञ्जनादि उठा उठा कर श्री-रोहिणीजी को परोसने के लिये दे रही थीं उस समय उनके चञ्चल नेत्रों की भङ्गी के दर्शन कर रसिकराज श्रीकृष्णजी की

सामिभूक्तं कियत्तेन किञ्च व्यंशावशेषितम् ।
भक्ष्यं वीक्ष्याशने मन्दं तञ्चासीद् व्याकुला प्रसूः ॥४९॥
यत्नात् संस्कृतमन्नादि सर्व्वं त्यक्तं कथं सुत ।
क्षुधितोऽसि कियद्भुङ्क्ष्व शपथः शिरसो मम ॥५०॥
आनाय्य यत्नाद् वृषभानु-कन्यकां संस्कारितं सर्व्वमिदं सुताऽनया ।
अन्नादिमिष्टञ्च सुधा-पराद्ध त-स्तथापि नाश्नासि करोमि किं हता ॥५१
अथ सा रोहिणीमाह पश्य रोहिणि चञ्चलः ।
दुर्व्वलः क्षुधितोऽप्येष किमत्त्यत्ति न मन्दभुक् ॥५२॥

भोजन से रुचि हट गई थी और उनका ध्यान उनके नेत्रों की ओर खिंच गया था ॥४८॥

श्रीयशोदा मैय्या यह देख, कि कृष्ण ने कोई कोई भोजन तो आधा ही खाया है और कोई कोई आधे से भी कम खाया है, चिन्ता से व्याकुल हो गई और कहने लगीं, हे पुत्र, भूख होते हुए भी सुस्वादु अन्न–व्यञ्जनादि क्यों नहीं खा रहे हो ? तुमको हमारे सर की सौगन्ध, थोड़ा और खाओ । यह बहुत ही उत्तम प्रकार से बनाया है ॥४९–५०॥

वह फिर कहने लगीं:–'हे पुत्र ! मैंने बहुत आग्रह करके श्रीवृषभानुदुलारी श्रीराधिका को अपने घर बुलवाया और उनसे अमृत से भी अधिक सुस्वादु अन्न व्यञ्जनादि बनवाये, किन्तु तुमने रुचि पूर्वक वह भी नहीं खाये हाय ! अब क्या करू, मैं तो मरी'–॥५१॥

उन्होंने रोहिणी को बुलाकर कहा, 'देखो हमारा कृष्ण भूखा होते हुए भी मन्दाग्नि के कारण कुछ खा नहीं पाता है । यह चञ्चल बालक कितना दुर्बल हो गया है' ॥५२॥

ततः स्नेह-परीताङ्गी लालयन्त्यघमर्द्दनम् ।
प्रलम्वहन्तुरम्वेयं वभाषे दं पुरः स्थिता ॥५३॥
यत्नादन्नं साधितं वत्स मिष्टं मल्लीमृद्व्या राधयेदं मया च ।
क्षुत्क्षामोऽसि त्वञ्च नाश्नासि तत्तामम्वामेतां माञ्च किम्वा दुनोमि ५४
जननी तव पस्य खिद्यते सुत निर्म्मञ्छनमत्र यामि ते ।
भ्रमतो भविता वने श्रमः कियदश्नीहि विधेहि मद्वचः ॥५५॥
भुक्तं मया भूरि गता वुभुक्षेत्युक्त्वा नियम्योच्छलितं विकारम् ।
तं वीक्ष्य मन्दं पुनरप्यदन्तं ननन्दतुर्नन्दसुतं जनन्यौ ॥५६॥

सामने खड़ी हुईं बलदेवजी की माता रोहिणीजी श्रीयशुमति की यह बात सुन स्नेह के कारण आकुल हुई श्रीकृष्ण को प्यार करते कहने लगीं ॥५३॥

हे वत्स ! कृष्ण ! मल्लिका-पुष्प के समान कोमलाङ्गी श्रीराधिका और मेरे हाथ से प्रस्तुत मिष्टान्न में क्षुधार्त्त होते हुए भी, तुम अरुचि प्रकाश करके क्यों हम लोगों को दुःख दे रहे हो ॥५४॥

बन में घूमने फिरने से तुमको बहुत परिश्रम करना पड़ता है, यही विवेचना करके तुम्हारी माता को कितना दुःख होता है। मैं तुम्हारी वलैयाँ लेती हूँ, हमारे कहने से थोड़ा भोजन और करो ॥५५॥

श्रीकृष्ण माता-यशोदा और रोहिणी के ऐसे वचन सुन कहने लगे 'मुझे भूख नहीं है, मैं तो पेट भर भोजन कर चुका हूँ'। इतना कह कर श्रीकृष्ण अपने मनमें श्रीराधिका के दर्शनों की लालसा से एक प्रकार का जो भाव उदय हो गया था, उसको दबाते हुए, भोजन करने लगे। यह देख दोनों माताओं के आनन्द की सीमा न रही ॥५६॥

इदमिदमतिमिष्टं वत्स भुङ्क्ष्वेति माता
सशपथमथ यत्तद्दर्शयन्त्यङ्गुलीभिः ।
सकलमभिलषन्ती कृत्स्नमश्रु स्रुताक्षी
तदुदरगतमन्नं सात्मजं वावदीति ॥५७॥
रसाला-पक्वाम्रद्रव-शिखरिणी-षाड़वपयः-
करम्भामिक्षा-व्यञ्जन-दधि-कलापूप-वटकान् ।
कृताम्रेड़ा नेत्रस्तनज-पयसा क्लिन्नसिचया-
ऽप्यतृप्ता तं तृप्तं मुहुरथ सुतं प्राशयदियम् ॥५८॥
भक्ष्यं भोज्यं वहुतरमिष्टं लेह्यं पेयं मृदु मधुरं ते ।
भुक्त्वा पीत्वा रसभरतृप्ताः सर्व्वेऽभवन् वनगमनोत्काः ॥५९॥
सर्व्वे सुवासितमृदा मुखपाणिपद्मा-
न्यामृज्य साधु मृदुलेषिकया च दन्तान् ।

यशोदा मैय्या उस समस्त मिष्टान्न-भोजन को जो श्रीकृष्ण के सामने परोसा गया था खिलाने के अभिप्राय से अपनी सौगन्ध देती हुई साश्रु पूर्ण अँगुली द्वारा इंगित करती हुई कहने लगी, 'जो कुछ परोसा गया है, वह सब भक्षण करो' ॥५७॥

अश्रु जल और स्तनदुग्ध से आर्द्र वस्त्र वाली यशोदा श्रीकृष्ण से बार बार रसाला, अमरस, शिखरणी, षाड़व, दूध, दहि-मिला सत्तू, छेना मिश्रित व्यञ्जन, दधि, फल, पीठा और बटक इत्यादि जितने अपूर्व खाद्य पदार्थ थे, खिलाने का आग्रह करने लगी, इस अभिप्राय से कि कृष्ण की तृप्ति से अपनी भी तृप्ति हो जायेगी ॥५८॥

राम-कृष्ण आदि समस्त गोप बालक, चबाने चूसने चाटने एवम् पीने वाले मधुर द्रव्यों का भोजन पान कर रस से परिपूर्ण हो बन गमन के हेतु उत्सुक हो उठे ॥५९॥

तब सबने सुगन्धित माटी (मञ्जन) से हाथ मुह धोकर साफ

दासैः प्रणीत-कनकादिक कुण्डिकासु
तैर्दत्त-वारिभिरथाचमनं व्यधुस्ते ॥६०॥

एला-लवङ्ग-घनसार-विमिश्रिताभि-
र्जम्बूलदत्त-वरखादिर-गोलिकाभिः ।
शीतोज्ज्वलाभिरधिवास्य मुखं मुदाम्ते
सव्येन पूर्णमुदरं ममृजुः करेण ॥६१॥

रसाल-करसंस्कृतोपहृत-नागवल्ली-स्फुरत्
सुपक्वदल-वीटिकाः सुखमदन्त एवोत्सुकाः ।
ततः शतपदान्तरालय-विशाल-पल्यङ्किका-
कुलेष्वथ विशश्रमुः परिजनैरमी वीजिताः ॥६२॥

तमिह विश्रमितं परिचारकाः शिखिदल-व्यजनैः समवीजयन् ।
अवदलय्य दलं मृदुवीटिकाः प्रभुमथादयति स्म विलासकः ॥६३॥

किये और कोमल ईषिका (खड़िका) द्वारा दाँतों को परिष्कार कर सेवकों द्वारा स्वर्ण-पात्र से जल लेकर सबने आचमन किया ॥६०

जम्बुल नामक सेवक ने अपने हाथ से बनाया इलायची, लौंग और कपूर का चूर्ण मुखशुद्धि के लिये सब को दिया। तव सब बच्चे भोजन पचाने के हेतु अपना अपना वाँय हाथ अपने अपने पेट पर फिराने लगे ॥६१॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण रसाल नामक सेवक से पान लेकर एकशत पद चलने के उपरान्त पलङ्ग के ऊपर विश्राम करने के लिये लेट गये एवं सेवकगण पँखा डुलाने लगे ॥६२॥

परिचारकगण मयूर के पङ्खों द्वारा बनाई गई चामर से श्रीकृष्ण को हवा करने लगे और विलासक नाम का सेवक पान की बीड़ी बना कर प्रदान करने लगा ॥६३॥

निष्क्रम्य धौताङ्घ्रि करां महानसाद्दासीगणैस्तां व्यजनैरुपासिताम् ।
राधां प्रकोष्ठान्तरगां सखीजनैर्विलोकयन्तीं रमणं गवाक्षतः ॥६४॥
आनन्दज-स्वेदजलैर्व्रजेशया प्रतीयमानां श्रमकर्षितेत्यलम् ।
भोक्तुं प्रयत्नादुपवेश्य सा मुदा बलाम्बयान्नानि गृहाददापयत् ॥६५
तया निदिष्टा घृतसंस्कृतान्नं दातुं धनिष्ठा हरिभुक्तशेषैः ।
संमिश्रय गूढं घृतसंस्कृतान्नै-र्गृहात्तदानीय ददावमुभ्यः ॥६६॥
अनश्नन्तीं ह्रिया वीक्ष्य वस्त्रावृत-नताननाम् ।
राधिकामबदत् कृष्ण-माता वात्सल्य-विक्लवा ॥६७॥
जननि मयि जनन्यां किं नु लज्जे दृशीयं
सुत इव मम चेतः स्निह्यति त्वय्यतीव ।
अयि तदपनयैनां यामि निर्मञ्छनं ते
शिशिरय मम नेत्रे भुङ्क्ष्व पश्यामि साक्षात् ॥६८॥

अनन्तर श्रीराधा रसोई घर से बाहिर आकर, हाथ पैर धो एक दूसरे कोठे में प्रवेश कर खिड़की द्वारा श्रीकृष्ण की मोहिनी-मूर्त्ति का दर्शन करने लगी। उस समय उनके अंग से आनन्द जल-धारा बहने लगी। श्रीयशोदा यह जान कर कि पाकशाला के परिश्रम के कारण उनके पसीना निकल रहा है, दासियों को ताल-वृन्त (पङ्खा) डुलाने की आज्ञा दे रोहिणीजी से अन्न व्यञ्ज-नादि लाने के लिये, आदेश करने लगी और राधिका को भोजन पाने के निमित्त बिठलाने लगीं ६४-६५॥

दासी धनिष्ठा, रोहिणीजी के दिये हुए घी द्वारा प्रस्तुत सब अन्न व्यञ्जनों में श्रीकृष्ण का भुक्तावशेष मिला कर, श्रीराधिका आदि सब के सम्मुख परोसने लगी ॥६६॥

श्रीराधिका लज्जा के कारण नीचा-मुख किये बैठी रहीं और कुछ भी नहीं खाया। यह देख श्रीयशोदाजी प्रेम पूर्वक कहने लगीं:-'हे मा! हे पुत्री! मैं तो तुमको पुत्रतुल्य भेद रहित प्रेम

यूयञ्च मे स्थ तनयास्त्वनया ह्रिया किं
पुत्र्यः कुरुध्वमशनं ललितादयस्तत् ।
इत्याग्रहच्छपथदान-शतैश्च माता
मिष्टान्न-मिष्टवचनैः सम भोजयत्ताः ॥६६॥

हृद्युद्गतैः सुत करग्रहणाभिलाषै-
स्तद्भूषणैः सुवहुशः सह यानि यत्नान् ।
निष्पाद्य तन्नववधु-प्रतिरूपकाणि
स्नेहाद्धृतानि सदने वरसंपुटेषु ॥७०॥

तैर्भूषणैरथ धनिष्ठिकयोपनीतै-
स्ताम्बूल-चन्दन-वराम्बर-नागजैश्च ।
आलीवृतां नववधूमिव तां व्रजेशा
सम्मान्य-हार्द वलिता मुदिता वभूव ॥७१॥

करती हूँ। इसलिये हमारे सामने इस प्रकार लज्जा करने की क्या आवश्यकता है। तुम्हारे ऊपर बलिहारी जाऊँ, यह छोड़ो, कुछ खाओ। तुमको भोजन करते देख मेरे दोनों नेत्र शीतल होंगे ॥६७-६८॥

श्रीयशोदा, ललिता आदि सबको सम्बोधन कर कहने लगीं: 'हे पुत्रियों ! तुम लोग सब हमारी सन्तान हो। हमारे सामने लज्जा क्यों कर रही हो, भोजन करो'। इसी प्रकार कहती कहती और सौ सौ बार शपथ देते हुए श्रीयशोदाजी यत्न सहित उनको भोजन कराने लगीं ॥६९॥

श्रीकृष्ण को विवाह देने के अभिप्राय से उन्होंने पहिले से ही जो विवाह के योग्य अनेक प्रकार के आभरण प्रस्तुत करा कर एक सुन्दर पिटारी में रख दिये थे, धनिष्ठा-दासी के द्वारा उन सब आभूषणों एवं पान, चन्दन, कर्पूर, सेंदुर और नवीन

राधाहृतं यन्निशि तद्विशाखा धनिष्ठयादात् सुवलाय गूढ़म् ।
पीतोत्तरीयं सुवलोऽपि तस्यै नीलाम्बरं कृष्णहृतं तथैव ॥७२॥
तावत् स्वसेवा-कृतिलब्धवर्णाः स्नेहेन दासाः परिफुल्लगात्राः ।
तैर्गन्ध-माल्याम्बर-भूषणैस्ते विभूषयामासुरधीश्वरं स्वम् ॥७३॥
भक्तिच्छेदाढय-चर्च्चा मलयज-घुसृणैर्धातुचित्राणि बिभ्र-
द्भ्रूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे ।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं
केयूरे कङ्कणे श्रीयुतपदकटकौ नूपुरौ शृङ्खलाञ्च ॥७४॥

नबीन वस्त्र मँगवा कर प्रसन्नता पूर्वक श्रीराधिका को, नववधु विवेचना करके, समर्पण कर दिये और परमानन्द को प्राप्त हो गईं ॥७०-७१॥

प्रातःकाल घबराहट के कारण (सम्भ्रम वशतः) श्रीराधिका ने जो पीताम्बर श्रीकृष्णजी का अपहरण कर लिया था, वह विशाखा ने सबेरे ही चुपके से धनिष्ठा-द्वारा सुवल सखा के पास भिजवा दिया था और उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने श्रीराधिका का जो नीलाम्बर ले लिया था वह उन्होंने सुवल को देकर धनिष्ठा द्वारा श्रीविशाखा के पास पहुँचा दिया था ॥७२॥

उस समय अपने अपने सेवा- कार्य्य में कुशल दास-गण श्रीकृष्ण को गन्ध, माल्य बसन और भूषण द्वारा सुसज्जित करने लगे ॥७३॥

इसके बाद श्रीकृष्ण ललाट पर 'भक्तिच्छेद' तिलक लगाये, तथा गन्ध, माल्य, कुँकुम और गेरू द्वारा अंगराग किये, मस्तक पर मयूर चूड़ा बाँधे, अँगुली में अपने नाम की अँगूठी पहिने, कानों में कुण्डल डाले, गले में गुञ्जाहार, रत्नमाला, वैजयन्ति-माला और कौस्तुभ मणि-धारण किये, हाथों में बाजु, कंकण और चरणों में दो नूपुर जिनमें छोटे छोटे घूँघरू लगे है पहिले

आत्मैकदृश्य-गान्धर्व्वा-प्रतिविम्ब-करम्वितैः ।
दधद्वक्षस्ययं हारं गुम्फितं स्थूलमौक्तिकैः ॥७५॥

शृङ्गं वामोदर-परिसरे तुन्दवन्धान्तरस्थं
दक्षे तद्वन्निहित-मुरलीं रत्न-चित्रं दधानः ।
वामेनासौ सरल-लगुडीं पाणिना पीतवर्णां
लीलाम्भोजं कमलनयनः कम्पयन् दक्षिणेन ॥७६॥

बंशी-विषाण-दलयष्टिधरैर्वयस्यैः
संवेष्टितः सदृशहास-विलास-वेशैः ।
गन्तुं वनाय भवनाद्वनजेक्षणोऽयं
मुष्णन् मनो मृगदृशामथ निर्जगाम ॥७७॥कलापकं

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।

हुए और वक्षःस्थल पर केवल एक ही मुक्ताहार जिस पर श्री-राधिका की प्रतिमूर्त्ती का प्रतिविम्ब था पहिने हुए, पेट के वाम-भाग में तुन्दवन्ध में शृङ्ग लटकाये, दाँई कुक्षि में रत्नों से जड़ी मुरली खोपें हुए और बाँये हाथ में पीतवर्ण लकुट धारण किये, दायें हाथ में क्रीड़ा-कमल को घुमाते घुमाते, अपने ही समान हँसमुख, विलासयुक्त, समान वेषधारी एवं वंशी, शृङ्ग, लकुट आदि धारण किये समान आयु वाला सखागण सहित मिल-कर जाते हुए और मृगनयनी स्त्रियों के मन को मथन करते करते, घर से निकल बन की ओर जाने लगे ॥७४-७७॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरणकमलों के मधुपान में भ्रमर-स्वरूप श्रीरूपगोस्वामिजी की सेवा के फल स्वरुप, श्रीरघुनाथदास-गोस्वामि द्वारा प्रकाशित, और श्रीजीवगोस्वामिजीके संसर्ग से उत्पन्न और श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामि के वरदान प्रभाव द्वारा

काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
प्रातर्भोजनकेलिवर्णनमयः सर्गश्चतुर्थो गतः ॥४॥

❀ अथ पञ्चमः सर्गः ❀

पूर्वाह्णे धेनुमित्रैर्विपिनमनुसृतं गोष्ठलोकानुजातं
कृष्णं राधाप्तिलोलं तदभिसृति-कृते प्राप्त-तत्कुण्डतीरम् ।
राधाञ्चालोक्य कृष्णं कृतगृहगमनामार्य्ययार्कार्च्चनायै
दिष्टां कृष्णप्रवृत्त्यै प्रहित-निजसखीवर्त्म नेत्रां स्मरामि ॥१॥
समन्द्र-घोषाभिध-शृङ्गघोषैः संस्तोषयन् घोषमपास्तदोषैः ।
सम्मोहयन् हृद्‌व्रजसुन्दरीणां संपोषयन् प्रेम बहिर्जगाम ॥२॥

लिखित श्रीगोविन्दलीलामृत-काव्य का चतुर्थ-सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

पूर्वान्हकाल में, जिनके, गौ और सखागण सहित बन जानेपर श्रीनन्दयशोदा आदि व्रजबासीगण, पीछे पीछे जाते हैं, और जो श्रीराधिका से मिलने में उत्सुक होकर राधाकुण्ड के किनारे अभिसार कर संकेत-स्थान पर पहुँच जाते हैं, मैं उन श्रीकृष्ण को स्मरण करता हूँ। जो आर्य्या-जटिला के आदेश का पालन करने के निमित्त सूर्य्य देव की अर्चना के प्रयोजन से श्रीकृष्ण की वार्ता प्राप्त करने के हेतु प्रेरित अपनी सखियों के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं उन श्रीराधिका को मैं चिन्तन करता हूँ ॥१॥

तब श्रीकृष्ण प्रातःकाल गोचारण के समय अपने 'मन्द्रघोष' नामक शृंग-द्वारा शब्द करते करते, समस्त गोकुल-बासियों को

गोमयोत्पलिकाकूटैर्गिरिशृङ्गनिभैर्युतम् ।
वासिता वासमत्तानां षण्डानां सङ्गरोद्धुरम् ॥३॥
कृष्णलीलां प्रगायद्भिर्विहसद्भिः परस्परम् ।
गोमयावचय-व्यग्रैः गोपदासी-शतैर्वृतम् ॥४॥
गोयान-वत्सावरण-व्यग्रगोप-शतान्वितम् ।
गोमयोत्पलिकाकृद्भिर्जरद्गोपीगणैर्युतम् ॥५॥
गवां स्थानीश्रेणीस्फुरितमभितोऽल्पावृतिचयो-
ल्लसद्वत्सावास-स्फुरिततल-वृक्षावलिचितम् ।
करीष-क्षोदस्योच्चय-मृदुल-भूमीतलमसौ
व्रजाभ्यर्णं पूर्णं व्रजधनजनैर्वीक्ष्य मुमुदे ॥६॥कुलकम्

सन्तोष प्रदान करते हुए, व्रजरमणियों के मन को मोहित करते हुए और उनके प्रेम का पोषण करते करते घर से बाहर आये ॥२॥

आप व्रज के समीप की भूमि का दर्शन कर अत्यन्त आनन्द अनुभव करने लगे। किसी किसी स्थान पर तो पर्वत की श्रेणियों के समान गोबर का अम्बार लगा हुआ था और किसी किसी स्थान में गौओं की ऋतु रक्षार्थ पालित साँढ़ों का भयानक युद्ध हो रहा था ॥३॥

किसी किसी जगह गोपदासियाँ गोबर इकट्ठा करते करते श्रीकृष्ण के गुण-गान में तन्मय हो रही थीं। कहीं कहीं गोपगण गौओं के बन जाने के समय इधर उधर चरते हुए उनके बच्चों को पकड़ पकड़ कर बाँध रहे थे। कहीं कहीं गोपनारियाँ गोबर के कण्डे बना रही थीं ॥४-५॥

कहीं अनन्त-गोशाला बनी हुई हैं और उसके एक ओर वृक्षों से सुशोभित गोवत्सों के रहने का स्थान बना है। कहीं सूखे कण्डों (उपले) का ढेर लगा है और उनके चूर्ण से वह

तर्णकारोधनव्यग्र-गोपयादोगणान्विताः ।
उच्छलद्‌गोपयःपूराः दुग्धभाण्डानि कच्छपाः ॥७॥
गोशकृच्चयनासक्त-गोपीवक्त्र-सरोरुहाः ।
सितारुण-चलद्वत्स-हंस-कोक-कुलाकुलाः ॥८॥
निर्गच्छद्धवला-पंक्ति-नदीर्गोपुच्छ-शैवलाः ।
गवालय-सरःश्रेणी पश्यन् स मुमुदे हरिः ॥९॥ सन्दानितक्रम्
अनुव्रजन् स्वोद्ध मुखं व्रजेन्द्र-निष्कासित-गोव्रजं सः ।
व्रजाद्विकर्षन् व्रजवासि-लोकान् वनाय वव्राज मखि-व्रजेन ॥१०॥
रजोऽम्भोभिः शम्भोरपि च विधि-दम्भोलि-करयोः
परां शुद्धिं बुद्धीन्द्रियनिचय-रुद्धिं विदधतो ।

स्थान अति कोमल बन गया है ॥६॥

जो कुछ भी हो उस स्थान पर वनी समस्त गोशालायें सरोवर की भाँति शोभा पा रही थीं, वहाँ से जो धवला गायें पंक्ति रूप में निकलती थीं मानो उस सरोवर का स्रोत था। गायों के स्तनों से जो दुग्ध निकल रहा था मानो उसका जल है। गोवत्स के पकड़ने में चञ्चल समस्त गोप बालक मानो उसमें जल-जन्तु थे। गोबर उठाने वाली व्रजललनाओं के मुख मानो उस सरोवर के खिले हुए कमल है। सफेद और लाल गोबच्चे मानो उसके किनारे पर वास करने वाले हंस और चक्रवाक हैं और सब गायों की पुच्छ मानो शिबाल (एक प्रकार की जल में उत्पन्न घास) के समान शोभा पा रही थी ॥७-६॥

तब ब्रज के पूर्ण चन्द्र श्रीकृष्ण, व्रज की इस प्रकार शोभा का दर्शन करते करते, समस्त सखाओं के संग प्रसन्न-मन उन गौओं के पीछे पीछे, जिनको नन्दमहाराज ने खोला था और ऊपर को मुख की हुई थी, वन की ओर प्रस्थान करने लगे ॥१०॥

तुलाप्यात्या पाल्या रविदुहितृ-काल्याथ मिलिता
गवां श्रेणी श्वेनी द्युसरिदिव वेणीभ्रममधात् ॥११॥
वनाय गच्छन् वनजेक्षणो हरिर्यतो यतः सन्निदधे पदाम्बुजम्।
ततस्ततः सा व्रजभूः समुत्सुका प्रकाशयामास हृदम्बुजं स्वकम् ॥१२
तच्छ्रीपदस्पर्श-भयप्रमोदैः सा फुल्ल-रोमाञ्चित-सर्व्वगात्री।
ननन्द कृत्यानि तृणानि भूयः खुरैः क्षताङ्गानि च रोहयन्ती ॥१३
फुल्लाक्षिपद्मातिजवा-सुसंभ्रमा प्रीत्यम्बुवृष्ट्यैधित-सर्व्वतोमुखा।
वृद्धादि बालान्त-जनावली-सरिद्व्रजाचलात् कृष्णसमुद्रमाययौ ॥१४

जब शुभ्रवर्ण उज्ज्वल ब्रजकी असंख्य गौएं बन जाते समय भैसों की श्रेणी से मिलजाती थी, उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो गङ्गाजी यमुना से मिलकर अत्यन्त वेग से वह रही हैं। ब्रह्मा, महेश और इन्द्र आदि देवगण मन्दाकिनी के जल के समान पवित्र, उस रज का स्पर्श कर, जो गौओं के चलने के बेग से उनके चरण द्वारा उड़ती थी, इन्द्रियों सहित अपनी आत्मा को कृतार्थ बोध करने लगे ॥११॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण बन की शोभा का निरीक्षण करते करते जिस जिस स्थान पर अपने पद्म-रूपी चरण रखते जाते थे, पृथिवी अत्यन्त उत्सुकता से, उसी उसी स्थान पर, अपने कमल-रूपी हृदय को प्रकाश कर देती थी ॥१२॥

श्रीकृष्ण के कमल-स्वरूप चरण-स्पर्श के सुख का अनुभव करती हुई पृथिवी पुलकायमाना होने के छल से उस स्थान पर नवीन नवीन घास उत्पन्न करने लगी, जहाँ गौओं के चरण पड़ने से स्थान समूह क्षत विक्षत और तृण रहित हो जाता था ॥१३

तब समस्त ब्रजबासी बालक, युवा, वृद्ध, और गोपियाँ, नदी जैसे बाढ़ को प्राप्त हुई सवेग सागर की ओर दौड़ती है उसी

क्लिन्नाम्बराक्षि-स्तनजैः पयःश्रवैस्तथाविधैर्यातृ मुखाङ्गनागणैः।
अम्बा किलिम्बानुगया वलाम्बया सहागताम्बा सुतदर्शनोत्सुका ॥
अन्योन्यासङ्ग संस्तब्ध-दृष्टि-हिल्लोलमुल्वणम।
कृष्णं रसार्णवं भेजे राधा सुरतरङ्गिणी ॥१६॥
मङ्गला-श्यामला-भद्रा-पाली-चन्द्रावलीमुखाः।
स्व-स्वयूथाः यूथनाथाः सर्व्वतस्तास्तमन्वयुः ॥१७॥
सह जन-धन-वृन्दैर्निर्गते प्राणनाथे
जनगति-रवहान्या स्पन्दनालापहीना।
पशु-खुरज-रजोभिर्धूसरासौ जडाङ्गी
व्रजबसतिरथासीत् प्रोषित-प्रेयसीव ॥१८॥

प्रकार नेत्रों द्वारा प्रेम-जल बहाते हुए श्रीकृष्ण में आकर मिलने लगे ॥१४॥

उस समय श्रीयशोमति अश्रु जल और स्तन्य-दुग्ध से अपने अंग को गीला करती हुई, धात्री आदि रमणियाँ और श्रीबलदेव-माता रोहिणीजी के साथ कृष्ण-दर्शन की लालसा से आ खड़ी हुईं ॥१५॥

देवनदी-गंगा जिस भाँति सागर की ओर बहती है उसी प्रकार, हास्य परिहास युक्त रति-क्रीड़ाभिलाषी श्रीवृषभानु-नन्दिनी, मिलने की कामना में, प्रेम रूप तरङ्गों से आकुल हो चञ्चल श्रीकृष्ण-रूप रससागर में प्रवेश होने के लिये उसी बन बीच आ गईं ॥१६॥

तत्पश्चात् मंगला, श्यामला, भद्रा, पाली और चन्द्रावली आदि सखियाँ अपने अपने यूथ के साथ श्रीकृष्ण का दर्शन करने के हेतु बन में आकर उपस्थित हो गईं ॥१७॥

जब श्रीकृष्ण गोचारण के लिये सखाओं के साथ बन को चले

अन्वयात्पितरौ वीक्ष्य सव्रजौ वनसीमनि ।
स्थितेऽस्मिन् वलितग्रीवं तस्तम्भे गो-कदम्बकैः ॥१६॥

अनन्तशङ्कौ स्ववन-प्रयाणेऽप्यभद्रभीतेरनिवारयन्तौ ।
अस्राकुलाक्षावपि दर्शनोत्कौ स दुःस्थितोऽभूत् पितरौ समीक्ष्य ॥२०

सौरभ्य-लुब्धातृषितोच्चलन्ती ह्री-वात्यया वंभ्रमिताभितोऽपि ।
नेत्रालि-पंक्तिर्व्रजसुन्दरीणां हरेः पपातैव मुखारविन्दे ॥२१॥

गये तब उनकी अनुपस्थिति में व्रजवसती प्रोषितनायिका दशा को प्राप्त होगई थी । गौओं के खुर से उठी हुई धूल से चारों ओर अन्धकार छा गया था । सब व्रजबासी आनन्द विहीन हो गये थे-किसी का मन स्थिर नहीं था । कोई चहल पहल नहीं थी। सब जगह नीरवता छाई हुई थी । किसी को उत्साह नहीं था। सब जड़ की भाँति समय बिता रहे थे ॥१८॥

श्रीकृष्ण जाते जाते वन के एक तरफ वक्रग्रीवा कर अपने पीछे व्रजबासियों के साथ माता पिता आदि को आते देख गौ और बच्चों सहित निस्तब्ध हो खड़े हो गये ॥१६॥

श्रीकृष्ण, यह जानकर कि हमारे माता पिता हमारे बन जाने के विषय में अनेक प्रकार के अमङ्गल के भय से सशङ्कित हैं और हमको बन जाने से रोकने में अपने को असमर्थ बोध कर, नेत्रों में अश्रु जल भर हमारी ओर टकटकी बाँधे देख रहे हैं एवं बहुत दुःखी हो रहे हैं ॥२०॥

इधर गोपियों के नेत्र रूप भ्रमरी समूह सौरभ से लुब्ध तथा तृषित हो श्रीकृष्ण-दर्शन की लालसा से लज्जा-रूप वायुवेग से निक्षिप्त होते हुए भी, बार बार उनके मुख-कमल पर गिरने लगा ॥२१॥

समीक्ष्य राधा-वदनारविन्दे श्रीनेत्रनृत्यन्मद-खञ्जरीटौ ।
सुमङ्गलां स्वां मनुते स्म यात्रां तदीय-सन्दर्शन-सत्फलां सः ॥२२॥

स्व-स्वबालमपहाय मातरः कृष्ण-वक्त्र-धृतसाश्रु लोचनाः ।
स्तन्यसिक्त-बसनाः सुवत्सलाः सर्व्वतोऽथ परिवव्रु रच्युतम् ॥२३॥

विमनस्कापि मनसा भावयन्त्युत तच्छुभम् ।
विहस्ताऽपि सहस्ताभ्यां जननी तमलालयत् ॥२४॥

शतशः सन्ति मे गोपाः निपुणाः पालने गवाम् ।
पालयामि स्वयमिति वत्स कोऽयं दुराग्रहः ॥२५॥

श्रीकृष्ण श्रीराधिका के मुखरूपी कमल में खञ्जन पक्षि रूप दो नेत्रों के दर्शन कर, अपने मन में विचार करने लगे कि पहिले ही से हमारी यात्रा का शुभ फल प्राप्त हो गया है ॥२२॥

उधर रमणी-गण अपने बच्चों को स्तन-पान कराना भी भूल गईं और स्नेह के वशीभूत हो जलयुक्त नेत्रों द्वारा उनकी ओर दृष्टिपात करती हुई उनके चारों ओर आ खड़ी हुईं ॥२३॥

माता यशोदा व्याकुल होते हुए भी श्रीकृष्ण की कुशल कामना कर रही थीं और उनके अंग पर हाथ फेरती हुई उनका लालन पालन कर रहीं थीं ॥२४॥

यशोदा खेद-सूचक वाक्यों में उनसे कहने लगीं:-'हे पुत्र! हमारे यहाँ गोपालन कार्य्य में दक्ष अनेक दास मौजूद हैं। किन्तु तुम क्यों यह दुराग्रह करते हो कि मैं ही गोचारण कराने जाऊँगा'। फिर कहने लगी! 'हे पुत्र! तुम बहुत ही सुकुमार बच्चे हो, छाता और जूते (पादुका) परित्याग कर सारे दिन दुर्गम पथों पर फिरते रहते हो। हाय, हम माता पिता होकर यह कैसे देख सकेंगे' ॥२५-२६॥

बालोऽपि मृदुलस्तत्र विमुक्तच्छत्र-पादुकः ।
दिनं भ्रमसि कान्तारे जीवेतां पितरौ कथम् ॥२६॥

क्रियमाणाग्रहौ स्वस्य च्छत्रोपानद्विधारणे ।
वात्सल्य-व्याकुलौ वीक्ष्य पितरौ प्राह केशवः ।।२७॥

गोपालनं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र-पादुकाः ।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः ॥२८॥

धर्म्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः ।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषु धर्म्मोऽस्ति रक्षिता ॥२९॥

सुतस्य साद्गुण्यमवेक्ष्य साक्षान्ननन्दतुस्तौ हृदि यद्यपारम् ।
अनिष्टशङ्काकुलिता तथापि गोपान समाहूय जगाद माता ॥३०॥

तब श्रीकृष्णजी, पुत्र स्नेह से उद्विग्न, अपने पिता माता को छाता और जूता पहिनने के विषय में आग्रह करते देख, उनसे कहने लगेः—॥२७॥

हे माता ! हे पिता ! शास्त्र का सिद्धान्त यह है कि गोपालन ही हम लोगों का जातिधर्म्म हैं। गौएँ जिस प्रकार छाता और जूते धारण नहीं करती है, उसी प्रकार हम गोपों को भी इन बस्तुओं का परित्याग करना उचित है। ऐसा ही करने पर तो हमारा धर्म्म निर्मल होगा। धर्म्म से ही आयु और यश की वृद्धि होती है। जो मनुष्य धर्म्म की रक्षा करता है, धर्म्म उसकी रक्षा करता है। इस कारण हे माता ! भय से रक्षा पाने का केवल धर्म्म ही एक उपाय है। तब हम सब लोग धर्म्म को क्यों छोड़े ॥२८–२९॥

नन्द-महाराज और यशोदा-माता श्रीकृष्ण के इस प्रकार उत्तम विचार जानकर यद्यपि आनन्दित हो गये, किन्तु

सुभद्र मण्डलीभद्र वत्सभो बलभद्रक !
समर्पितोऽयं युष्मासु बालोऽतिमृदुलश्चलः ॥३१॥
यन्त्रणीयः शिक्षणीयः पालनीयश्च वः सदा ।
स्वैरी चेच्चलतां याति कथनीयं तदा मयि ॥३२॥
धृत-खड्ग-धनुर्बाणैर्भो वत्सा विजयादयः ।
रक्षणीयोऽप्रमत्तैर्व सदायमभितः स्थितैः ॥३३॥
अङ्गे सुतस्याथ करेण माता स्निग्धा स्पृशन्तीश्वरनाममन्त्रैः ।
नृसिंह-बीजैश्च विधाय रक्षां बबन्ध रक्षामणिमस्य हस्ते ॥३४॥
आज्ञा मातः पितारिति सुतं सम्पतन्तं पदान्ते
दोर्भ्यां धृत्वा हृदि निदधतो स्तन्य-बाष्पाम्बुसिक्तम् ।

यशोदाजी उस पर भी अनिष्ट की आशङ्का से आकुल हो गोप-गण को बुला बुला कर कहने लगीः—'हे सुभद्र ! हे मण्डली-भद्र ! हे बलभद्र ! और हे पुत्रो ! मैं अपने इस चञ्चल सुकुमार बालक कृष्ण को तुम लोगों के हाथ सौंप रही हूँ । तुम लोग हर समय इसके साथ रह कर इसकी रक्षा करना और उपदेश देते रहना । यदि यह अपनी इच्छानुसार कार्य्य करने का हठ करे तो हमको बतलाना ॥३०-३१-३२॥

हे बिजय आदि बच्चा ! 'तुम लोग सावधानी से धनुष,बाण और खड्ग आदि धारण करके हर समय कृष्ण के पास ही रहना और उसकी रक्षा करना ॥३३॥

तब स्नेह से द्रविभूता, श्रीयशोदाजी ईश्वर का स्मरण करती हुई श्रीकृष्ण के समस्त अंग पर हाथ फिराने लगी । नृसिंह बीज-मन्त्र द्वारा रक्षा और हाथ में रक्षामणि बाँध दी ॥३४॥

श्रीकृष्ण माता पिता— से अब आज्ञा दीजिये, यह कहते हुए कि उनके चरणों से लिपट गये । यह देख उन्होंने

चुम्बन्तौ तद्वदन-कमलं मार्जयन्तौ कराभ्यां
जिघ्रन्तौ तं शिरसि पितरावूहतुर्बाष्पकण्ठम् ॥३५॥
भूद्यौर्भव्या भवतु भवतो रक्षिता श्रीनृसिंहः
शस्तः पन्था वनमपि शुभं भावुका दिग्विदिक् च ।
स्वागम्याः स्वं पुनरथ गृहं मङ्गलालिङ्गितस्त्वं
दत्तानुज्ञः स इति मुमुदे वत्सलाभ्यां पितृभ्याम् ॥३६॥
यथा पितृभ्यां स तथा बलाम्बया
ध्यम्बा किलिम्बाद्युपमातृ-युक्तया ।
गोपैश्च गोपी-निवहैश्च लालितो
यथा हरिस्तैः स बलोऽप्यभूत्तथा ॥३७॥
व्रजाङ्गनानां तृषिताङ्गिचातकान् सिञ्चन् कटाक्षामृत-वृष्टिधारया ।
न्यवेदयत् कानन-यानमात्मनस्ताभिः स्वदृष्ट्यैव स चानुमोदितः ॥

उनको उठा कर दोनों हाथों से छाती से लगा लिया। नेत्रों द्वारा अश्रुजल और स्तन दुग्ध से उनको भिगोते हुए समस्त अंग पर हाथ फेरने लगे, मस्तक सूँघा और गद्गद् हो कहने लगे:- ॥

हे वत्स ! 'भगवान् नृसिंह तुम्हारी रक्षा करें, पृथिवी, आकाश, पथ, बन, दिशायें और विदिशायें तुम्हारा मंगल साधन करें। तुम निर्विघ्न घर लौट आओ। इस प्रकार आशीर्वाद देकर प्रेम पूर्वक उनको छाती से लगा लिया और बनयात्रा की आज्ञा प्रदान कर दी ॥३६॥

नन्द, यशोदा, रोहिणी, तथा अम्बा, किलिम्बा आदि धात्री गण और गोप-गोपियों ने जिस प्रकार श्रीकृष्ण का लालन किया था उसी प्रकार श्रीबलदेव का भी लालन किया ॥३७॥

श्रीकृष्ण अपनी बक्रदृष्टि रूप अमृत-बर्षा से गोपियों के नयन रूप चकोर को स्नान कराते हुये अर्थात् उनकी ओर

मध्ये नभः संमिलनेऽप्यलुनैर्जवात् प्रविष्टै हृदये मिथस्तौ ।
कटाक्षबाणैरपि मोदमानौ प्रेम्णो विचित्रा हि गतिर्दुरूहा ॥४२॥
राधा-मनोमीनमयं स्वसङ्गे स्वकान्ति-जालेन निबध्य निन्ये ।
रुरोध तच्चित्त-मरालमुत्कं सापि स्वहृक्कूणन-पञ्जरान्तः ॥४३॥
प्रेरयन्नग्रतो धेनुराकर्षन् पृष्ठतो व्रजम् ।
स्वमित्रैरावृतोऽरण्यं प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥४४॥
तीर्य्यग्ग्रीवं पुनः प्रेक्ष्य सव्रजौ स्नेहकर्षितौ ।
अन्वायान्तौ पुरस्तिष्ठन्नब्रवीत् पितरौ हरिः ॥४५॥
मातर्नातःपरमिह पुरो गन्तुमर्ह्याटवीं वो
व्यावर्त्तध्वं त्वरितमिह मे प्रापणीया रसाला ।

यह जो कुछ भी हो । श्रीकृष्ण के वक्रनेत्र रूप बाण ने ऊपर से गिर कर जब श्रीराधिका के हृदय को विद्ध कर दिया और भाँति श्रीराधिका के नेत्ररूप शर ने ऊपर से गिरकरउसी श्रीकृष्णजी के हृदय को छेदन कर दिया तब दोनों ही अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हो गये । प्रेम की गति (अवस्था) जैसी विचित्र और दुर्बोध होती है, यह कौन समझ सकता है ? ॥४२॥

श्रीकृष्ण ने, गोचारण जाते समय श्रीराधिका के चित्त-रूप मछली को, अपने अंग की कान्ति रूप जाल में फँसाकर, साथ में ले लिया। उसी प्रकार श्रीराधिका ने भी श्रीकृष्ण के चित्त-रूप उत्सुक हंस को अपने नेत्र-रूप पिंजरे में बन्द कर लिया ॥४३

श्रीकृष्ण सब गौओं को आगे कर एवं समस्त व्रजवासियों के मन अपनी ओर खींचते हुए, सखाओं के साथ बन जाने का उपक्रम करने लगे । गर्दन घुमा कर क्या देखते हैं कि, स्नेह के वशीभूत माता, पिता एवं समस्त व्रजवासी फिर पीछे पीछे आ रहे हैं । तब उनको सम्बोधन कर वह कहने लगे:-

तासां मनोदीन-कुरङ्ग-संघान् विलोक्य लोलान् रुचिपल्लवान् स्वान्।
निन्ये स्फुटं चारयितुं स्वसङ्के सन्दान्य दृक्शृङ्खलयास्त्वयासौ॥३६

छित्राः चेप्याः सुमुखि घटिकाश्चक्षुषी मुद्रयित्वा
मागाः खेदं सदपि भविता सङ्गमो नौ वनान्ते ।
आगन्तव्यं मयि करुणया छद्मनासु स्वकुण्डं
कृष्णश्चक्रे स्फुटमनुनयं राधिकायां दृशेत्थम् ॥४०॥

ययाचे राधिकामाज्ञां सदृशा दैन्य-पूर्णया ।
कातर्य्यं वमताभूत्तात्कटाक्षेणानुमोदितः ॥४१॥

आड़े नेत्रों से देखते हुते अपने बन जाने का संकेत देने लगे और उनकी कटाक्ष दृष्टि का आनन्द उठाने लगे ॥३८॥

श्रीकृष्ण जब गोचारण के निमित्त वन-भ्रमण के लिये यात्रा करने लगे तब ऐसा प्रतीत होने लगा मानो गोपियों के मन रूप समस्त हरिणों को अपने अङ्ग की कान्ति स्वरूपा स्वादिष्ट पल्लवों का आस्वादन कराने के हेतु अपने नेत्र रूप शृङ्खला में बाँध कर साथ ले जाना चाहते हैं ॥३६॥

और अपने नेत्रों की भङ्गी द्वारा उनसे कहने लगेः-'हे सुमुखियों ! दोनों नेत्र वन्द कर दो, तीन घड़ी समय बिताओ और किसी प्रकार दुखः न करो, कुछ देर वाद वन के बीच हमारा तुम्हारा फिर मिलन होगा। कृपा करके तुम लोग कोई वहाना बना कर एक वार राधाकुण्ड पर आ जाना। इतना कह कर श्रीराधिका जी के प्रति स्पष्ट शब्दों में विनय करने लगे ॥४०॥

और विनय के साथ उनसे अनुमति माँगने लगे। श्रीराधिका ने भी अपनी वक्रदृष्टि द्वारा उनको वन जाने की सम्मति प्रदान की ॥४१॥

तातैषाद्य त्रुटित-शिखरा कन्दुक-क्षेपणी मे
गत्वा घोषं झटिति सुदृढाः पञ्चषाः कारणीयाः ॥४६॥
वलितग्रीवमूर्द्ध्वास्यं क्षुधितास्तृषिता अपि ।
तस्तम्भिरे पुरो गावः पश्याम्ब मदपेक्षया ॥४७॥
प्रेषयिष्यामि सद्भोज्यं भुक्त्वा मध्याह्न एव तत् ।
आगच्छेरपराह्णे त्वं तूर्णमित्याह तं प्रसूः ॥४८॥
सोऽप्यब्रवीत्तां कृतभोजनौ चेत् श्रोस्यामि गेहे मुदितौ भवन्तौ ।
भोक्ष्यामि भोज्यं प्रहितं तदा ते गृहं समेष्यामि न चान्यथाम्ब ॥४६

'हे पिता ! हे माता ! अब इसके आगे आप लोग बन में न जायें । घर को लौट जाइये और जाकर हमारे लिये रसाला भिजवा देना और हे पिता ! हमारा गेंद खेलने का दण्ड टूट गया है आप व्रज में जाकर पाँच छय डण्डे मजबूत मजबूत वनबा कर रख लेना । माता से फिर कहने लगे,' हे माता ! वह देखो । समस्त गौएँ भूख-प्यास से व्याकुल हो मुह मुँड़ कर हमारी आर पीछे को देख हमारी अपेक्षा में मुँह उठाये हुए हैं ॥४४-४७॥

यह सुन यशोदा माता कहने लगीः–' हे पुत्र ! तुम्हारे लिये सुन्दर सुन्दर खाद्य बस्तु भेजूँगी, दोपर का भोजन कर तुम शीघ्र दिन छिपने के पूर्व ही घर लौट आना ॥४८॥

तब श्रीकृष्ण बोलेः– 'हे माता ! जब मुझे यह विश्वास हो जायेगा कि आपने इच्छा पूर्वक भोजन कर लिया है और घर पर ही आराम कर रहे हैं तब मैं आपका भेजा हुआ भोजन ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं ॥४६॥

कृतावनः कायमनोवचोभिः संसिक्तदेहः स्तन-दृक्पयोभिः ।
स चुम्बितालिङ्गित आकुलाभ्यां मुहुर्मुहुर्हृष्टमुखः पितृभ्याम् ॥५०॥
उद्यद्वियोगोष्णरवि-प्रतापितैः सिक्तैर्निज-प्रेक्षणवीचि-शीकरैः ।
कटाक्ष-धारा-नलनालिकाचयैर्निपीत-लावण्यरसः प्रियागणैः ॥५१॥
ब्रजत्यागारण्ययानोत्पन्नाभ्यां नन्दनन्दनः ।
वैमनस्योन्मनस्याभ्यां व्यग्रोऽसौ प्राविशद्वनम् ॥५२॥ सन्दानितकम्
ब्रजस्य कृष्णे निहितेक्षणस्याखिलेन्द्रियाणां नयनत्वमासीत् ।
तस्मिन् वनेनान्तरिते क्षणेन तेषां समन्तात् सुविलीनताभूत् ॥५३॥

इसके पश्चात् ब्रजराज और यशोदाजी श्रीकृष्ण के इस प्रकार बचन सुन काय, मन और वाक्य द्वारा उनके अंग की रक्षा बन्धन कर स्तन दुग्ध और अश्रु जल द्वारा उनका अभिषेक किया । बार बार उनका आलिंगन और चुम्बन किया ॥५०॥

तब श्रीराधिका आदि सखियाँ वियोगरूप सूर्य्य की प्रखर गर्मी से दग्ध और श्रीकृष्ण के दर्शन-रूप तरङ्ग के कण से भीग कर अपने कटाक्षरूप नल द्वारा श्रीकृष्ण के अंग की सुन्दरता का पान करने लगीं अर्थात् नेत्रों में अश्रु भरे श्री-कृष्ण की अंग -कान्ति को अपलक निहारने लगी ॥५१॥

तब नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ब्रज छोड़ने और बन जाने में व्याकुल चित्त और उत्कठित हो बन की ओर प्रस्थान करने लगे ॥५२॥

जिस समय ब्रजवासी कृष्ण की ओर निहारते थे उस समय उनकी समस्त इन्द्रियाँ नेत्रों को प्राप्त हो जाती थीं अर्थात् वे अपनी सब इन्द्रियों द्वारा उनको देखते थे और जिस समय श्रीकृष्ण बन जाने में उनकी दृष्टि से दूर हो जाते थे उनकी इन्द्रियाँ सब शिथिल हो जाती थीं ॥५३॥

चरत्वतः स्थावरतैव धन्या वनं प्रयात्येष विहाय यन्नः ।
इतीव खिन्नाः स्फुटमादधुस्तां-स्तम्भस्य दम्भात् व्रजवासिनस्ते ॥५४
हरेश्चिल्ली-चिल्ली-गिलित-मति-मिलच्छफरिका
मुखाम्भोजान्म्लानाच्चलित-चलदृष्टि-भ्रमरिकाः ।
वियोगोद्यत्पङ्कावलि-पतित-हंसा न विबभु-
स्तदाभीरी-नद्यो वनशुचि-हृते जीवन-धने ॥५५॥
अभ्यासतोऽथ व्रजवासिनस्ते विमोहितौ तौ व्रजपौ गृहीत्वा ।
कृष्णानुगामि-स्वमनोविहीनै र्देहैः परं गेहमयुर्निरीहाः ॥५६॥

जो कुछ भी हो श्रीकृष्ण के बन को चले जाने पर समस्त व्रजवासी अपने अपने मन में यही सोचते थे कि हमसे तो स्थावर ही अच्छे हैं, हमतो जङ्गम (गमनशील) हैं इसी कारण तो वह हमको छोड़ कर चले गये हैं। ऐसा कहते कहते स्तम्भ के समान साक्षात् जड़ता को प्राप्त हो गये ॥५४॥

श्रीकृष्ण के गोचारण के लिये वन जाने के पश्चात् गोपिकाएँ ग्रीष्म ऋतु की जल विहीन नदियों के समान प्रभा-शून्य हो गईं। नन्दनन्दन की भ्रू रूप चील पक्षि उनकी विवेक बुद्धि रूपा शफरी को ग्रास कर गया। चञ्चल दृष्टिरूपा भ्रमरी उनके मुख-कमल से उड़ गई और उनका जीवन रूप हंस श्रीकृष्ण के विरह रूप कीचड़ में फँस गया ॥५५॥

समस्त व्रजबासी, श्रीकृष्ण के चले जाने पर, निराशा को प्राप्त हो गये थे, वे विचार करने लगे कि चञ्चल मन तो पहिले ही उनके साथ बन को चला गया है अब केवल इस शरीर को लेकर क्या करें। ऐसा विचार कर केवल देह-मात्र साथ में कर श्रीनन्द और यशुमति को जो शोक के

स्वां स्वां सख्योऽपि यूथेशां यत्नादादाय मूर्च्छिताम्।
निन्युर्गृहं यन्त्रचञ्चत्प्रतिमाः प्रतिमामिव ॥५७॥
कुन्दवल्ल्यथ तां राधां स्वयं व्यग्राप्यचेतनाम्।
आदायायाद्व्रजं यत्नाद्विचित्तैस्तत्सखीजनैः ॥५८॥
यद्यप्यस्मिन् न्यस्तचिता व्रजस्था आतद्दर्शं ज्ञप्तिशून्यास्तथापि।
तत्तात्कर्म्माण्याचरन्ति स्म यद्वज्जीवन्मुक्ता देह-संकारतस्ते ॥५९॥
निर्म्माणोत्कां स्वपथि जटिलां गोशकृत्पिण्डकानां
बध्वा वर्त्मन्यथ धृतदृशं व्याकुलां कुन्दवल्ली।
दृष्ट्वाऽवादीज्जडिम-कलितां राधिकां चेतयन्ती
कृष्णाभ्यर्णं नयनिपुणधीस्तूर्णमेनां निनीषुः ॥६०॥

कारण अत्यन्त ही आकुल थे, पूर्व अभ्यास के कारण अपने साथ घर लिवा लाये ॥५६॥

सब सखियाँ कृष्ण-विरह में मूर्छिता अपनी अपनी यूथेश्वरी को साथ ले घर पर आगईं, जैसे काठ की बनी पुतली यन्त्र द्वारा चालित दूसरी मूर्त्ति को खींच ले जाती ॥५७

कुन्दवल्ली, जो विरह के कारण अति दुखी थी, फिर भी संज्ञा-हीना सखियों सहित मूर्छिता श्रीराधिका को घर लिवा लाई ॥५८॥

यद्यपि समस्त-व्रजवासी श्रीकृष्ण को अपना मन समर्पण कर चुके थे एवं जब तक उनका दर्शन नही पाते थे तब तक वे लोग संज्ञा-हीन रहते थे, तथापि वे देहधारी होने के कारण ब्रह्मज्ञानी के समान देह सम्बन्धि समस्त कार्य्य करते रहते थे॥

इधर जटिला राधिका आदि आत्मीयवर्ग के चले जाने पर गोबर के कण्डे थपवाने की चिन्ता में व्यग्रता से उन लोगों के लोट आने का मार्ग देख रही थी कि इतने में कुन्दवल्ली

नमाम्यार्य्ये स्नुषेयन्ते कल्याणी नीयतां पुरः ।
छायाप्यस्या न कृष्णस्य दृष्टि-गोचरतां गता ॥६१॥
साब्धि-द्वीपा भवति पृथिवी यस्य नैकस्य मूल्यं
तादृग्दिव्यामितमणिमयं पश्य शच्याप्यलभ्यम् ।
सर्व्वाङ्गीनं वसन-सहितं भूषणं दत्तामस्यै
गोष्ठेश्वर्य्या मुदित-मनसा पाक-नैपुण्यतोऽस्याः ॥६२॥
धर्म्मार्थ-लाभान्मुदिता स्नुषायास्तथैव कार्य्यान्तरमुच्चिकीर्षुः ।
स्वाभीष्ट-सम्पादन-लब्धवर्णां मत्वावदत्तां जटिला स्नुवन्तां ॥६३॥

जो मिलन-कार्य्य में निपुण थी, श्रीकृष्ण के समीप से श्री-राधिकाजी को चेतना कराकर और अपने साथ ले जटिला के पास आकर कहने लगी ॥६०॥

'हे आर्य्ये, आपको नमस्कार है', 'आप की पुत्र वधु को लिवा लाई हूँ इनको ग्रहण करो । इन की मैंने इस प्रकार रक्षा करी कि नन्दराजा का पुत्र चञ्चल कृष्ण इनकी परिछाई तक भी नही देख पाया' ॥६१॥

फिर कहने लगी:- 'हे आदरणीये ! व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजी इनके पाक-कार्य्य की कुशलता को देख अत्यन्त सन्तुष्ट हुई हैं और प्रत्येक अंग की शोभा वढ़ाने वाले बहुत से सुन्दर वसन और आभरण, जिनमें से एक की भी तुलना ससागरा इस पृथिवी के सातों द्वीपों में नहीं हो सकती है, प्रदान किये हैं अधिक क्या कहूँ-इन्द्र की स्त्री, शचि भी ऐसे अपरिमित मणिखचित मनोहर दिव्याभरण प्राप्त नहीं कर सकती हैं अर्थात् उनको भी दुष्प्राप्य हैं' ॥३२॥

जटिला, सुभद्र की स्त्री कुन्दवल्ली को इष्ट-साधनों में उपयोगी जान और यह देख कि श्रीकृष्ण से अदृश्य रखते हुए

एह्ये हि वत्से कुशलं भवत्यास्त्वच्छील-निर्म्मञ्छनमाशु यामि।
स्निग्धासि यत्त्वं मयि सस्नुषायां मदाशिषा तत् सुतवस्करा स्याः ॥६४

स्वयं स्वाध्वी प्रगल्भा त्वमन्यासां धर्म्मपालने।
आत्मनीव प्रतीतिर्मे त्वयि त्वां प्रार्थये ततः ॥६५॥

धर्म्मे पत्न्या पालिते तत्पतिः स्याद्
गोमान् पुत्री बित्तावांश्चायुराढ्यः।
इत्याहास्मान पौर्णमासी स्मृतिज्ञा
सेयं तत्त्वय्यर्पिता धर्म्म-गुप्त्यै ॥६६॥

इसके धर्म्म की रक्षा भी हुई और पुत्रवधु राधा श्रीयशोदाजी से धन प्राप्त कर घर लौट आई तब अन्य अन्य साधनों की सिद्धि प्राप्त करने के निमित्त उससे प्रार्थना-युक्त वचनों में कहने लगीं:-॥६३॥

हे पुत्री! हमारे पास बैठो! तुम्हारा कल्याण हो आहा! तुम्हारे स्वभाव पर तो बली जाऊँ। हमारी पुत्रवधु में तो तुम्हारा प्रेम बहुत ही है। ऐसी स्नेहमई स्त्री तो मैंने आज तक देखी नहीं। मैं आशीर्वाद करती हूँ कि तुम सात पुत्रों की माता बनो॥६४॥

फिर कहने लगीः- "हे पुत्री! तुम तो स्वयं ही सती हो और दूसरी सती-स्त्रियों के धर्म्म की रक्षा में लगी रहती हो। इसलिये तुम्हारा स्वभाव भी हमारा जैसा है, तुमसे हमारी एक प्रार्थना है" ॥६५॥

मैंने पहिले से ही, सर्व-गुण खनि, श्रीपौर्णमासी द्वारा सुना है कि जिस की स्त्री धर्म्म के प्रति निष्ठा रखती हो, वही पुरुष गो-रत्न और धन-रत्न को प्राप्त होता है, विद्वान और

धर्म्मादर्थश्च कामश्चेत्यादि सत्यं सतां वचः।
यतोऽस्याः पालिताद्धर्म्मात् भूयानर्थोऽपि साधितः ॥६७॥

एकः सुतो मे कुशली यथासौ कूलेऽमले स्यान्न यथा कलङ्कः।
धर्मं तथाऽस्याः परिपालयन्ती निर्वाह्य सूर्य्यार्च्चनमानयैनाम् ॥६८

राधे त्वं ताम्रकुण्डीमरुण-कपिलिका-क्षीर-दध्याज्यमिज्यां
सार्पिष्कान्नं जवामैक्षवमथ घुसृणं पत्रकं पद्ममालाम्।
साद्धं सख्याऽनयेत्याद्युपकरणचयं पुत्रि! गेहाद् गृहीत्वा
गार्ग्या वा केनचिद्वार्च्चन-पटु बटुना याहि सूर्य्यार्चनाय ॥६९॥

चिरायु होता है, इसलिये धर्म्म की रक्षा के हेतु मैं अपनी पुत्रवधु राधा को तुम्हारे हाथों में समर्पण करती हूँ। साधुजनों का कहना है कि धर्म्म से अर्थ और काम दोनों की प्राप्ति है। यह बात निश्चय है। इसलिये हमारी पुत्रवधु के धर्म्म-पालन से ही हमारे पुत्र को विपुल धन का लाभ होगा ॥६६-६७॥

फिर कहने लगीः—हे पुत्री! इसलिये जिस भाँति हमारा पुत्र कुशल पूर्वक रहे और हमारे इस निष्कलंक वंश में कोई कलंक न लगे, तुम वैसा ही धर्म्मोपदेश देकर हमारी पुत्रवधु को सूर्य्यदेव की पूजा करने के निमित्त प्रवर्त्तित कराओ ॥६८॥

इतना कह उसने श्रीराधिका से कहाः— हे पुत्री! घर में से ताम्र-कुण्डी और कपिला-गाय का दूध, दधि, घी का बना पक्व भोजन, गुड़, जवाफूल, केसर, लालचन्दन और कमल की फूल-माला यह सब सामग्री लेकर कुन्दलता के साथ गर्गमुनि की कन्या अथवा किसी ब्राह्मण-कुमार को साथ ले सूर्य्य-पूजा के लिये जाओ ॥६९॥

चण्डासि साध्वी ललिते त्वयासौ नैकाकिनी क्वापि सखी विधेया।
गन्धोऽपि यस्यां किल नन्दसूनो स्तस्यै दिशे वोऽञ्जलिरेव कार्य्यः॥७०

अत्यारूढ़ं दिनं वत्से! सन्ति गोमय-राशयः।
युवयोर्न्यस्तभारास्यां निश्चिन्तोत्पलिका-कृतौ॥७१॥

तामूचतुस्ते हृदि संप्रहर्षिते निश्चिन्तमार्य्ये क्रियतां क्रिया निजा।
आवामवावः सततं भवद्वधूं तारामिवाक्ष्णः सह पक्ष्मलोचके॥७२

ताः प्रोन्मत्ता अपि जटिलायाः पीत्वाज्ञा वाङ्मधु मधुरांग्यः।
आनन्दोत्फुल्लित-तनु-चित्ता धैर्य्यं धृत्वा गृहमनुजग्मुः॥७३॥

फिर ललिता सखि को बुलाकर कहने लगी:-'हे प्रगल्भे (निडर)! हे सती! तुम कहीं भी राधिका को अकेली मत छोड़ना और जहाँ नन्दसुत कृष्ण की गन्ध भी हो उस दिशा को दोनों हाथ जोड़ प्रणाम कर देना अर्थात् उस ओर भूल कर भी न जाना॥७०॥

फिर कुन्दलता और ललिता से कहने लगी:-'देखो! समय अधिक हो गया है, गोबर भी बहुत जमा हो गया है, राधा को तुम लोगों के हाथों में सौंप कर कण्डे थापने का कार्य्य मैं स्वय एकाग्र मन से कर सकूँगी॥७१॥

तब ललिता और कुन्दलता प्रसन्न हो कहने लगी:-'हे आर्ये! आप निश्चिन्त हो, करने योग्य सब कार्य्य ठीक कर लें। जिस प्रकार पलक नेत्रों की रक्षा करते हैं हम उसी भाँति तुम्हारी पुत्रवधु श्रीराधिका की रक्षा करेंगी॥७२॥

अब अपूर्व रूप-राशि-धारिणी श्रीवृषभानुनन्दिनी की सखियाँ जटिला की इस प्रकार आज्ञा रूप मधुपान में मत्त हो प्रसन्नता पूर्वक श्रीराधिका को घर ले गईं॥७३॥

आगत्य खट्टोपरि सन्निविष्टां श्रीराधिकां क्षालित-मार्ज्जितांघ्रिम् ।
दास्यो मुदा पर्य्यचरन्निजेशां पादाब्ज-सम्वाहन-वीजनाद्यैः ॥७४
मल्ली-रङ्गण-कर्णिकार-वकुलामोघा-लता-सप्तला
जाती-चम्पक-नागकेशर-लवङ्गाजादि-पुष्पोच्चयम् ।
श्रीवृन्दा-प्रहितं वनादलिकुलास्पृष्टं दरोज्जृम्भितं
स्वेश्वर्य्याः पुरतो न्यधाद्वनसखी श्रीनर्म्मदा मालिनी ॥७५॥
कृष्णाङ्ग-कामालय-वैजयन्तिकां तैर्वैजयन्तीं विरचय्य सा व्यधात् ।
राधा स्वनैपुण्यगुणादिसूचिकां कर्पूरकृष्णागुरुसत्वभाविताम् । ७६
एलेन्दुजातीफलखदिरान्विताः स्वपाणिहृत्सौरभरागभाविताः ।
कृष्णाक्षिचित्ताननचन्द्ररञ्जिकाः सा नागवल्ली दलवीटिका व्यधात् ॥

घर आकर श्रीराधिकाजी पलके पर बैठ गईं और दासियाँ उनके चरणों को धोकर साफ करने लगीं तथा उनके चरण चाप कर सेवा करने लगीं ॥७४॥

तब नर्मदा नाम की एक मालिनी जिसको वृन्दादेवी ने भेजा था वह बन में से भाँति भाँति के कोमल-फूल कलियाँ (ईषत मुकुलित मल्लिका) रङ्गण, कर्णिकार, बकुल, पाटली, माधवी-लता, नबमल्लिका, जाति, चम्पक, नागकेसर, लवंग और कमल आदि सब लेकर श्रीराधिका के पास आई ॥७५॥

श्रीबृन्दाजी के भेजे हुए समस्त-फूलों से श्रीराधिका ने अपने हाथ से कपूर आदि काली अगर से सुवासित कर, श्रीकृष्ण के अंग रूप मदनालय (कामनगर) की पताकारूपा एक पञ्चबर्णमयी दिव्यमाला निर्माण की ॥७६॥

श्रीराधिका ने अपने हस्त की सुगन्धि और हृदय के अनुराग से सुवासित, श्रीकृष्ण के नेत्रों और मन को लुभाने बाली तथा उनके मुखचन्द्र की कान्ति को बढ़ाने बाली, इलायची,

मालामेतां तुलसि ! हरये वीटिकाञ्चोपहृत्य
ज्ञात्वा बृन्दा-सुवल-मुखतः केलि-सङ्केत-कुञ्जम् ।
आगच्छाशु त्वमिति ललिता-प्रेरितादाय तां ताः
कस्तूर्य्यालीसहित-तुलसी कृष्णपार्श्वं प्रतस्थे ।।७८।।
श्रीराधिकाप्यथ सखी-सहितातिदक्षा
श्रीकृष्णचन्द्र-सकलेन्द्रिय-तर्पणानि ।
कर्पूरकेल्यमृतकेलि-मुखानि कामं
कर्त्तुं समारभत साद्भुत-लड्डुकानि ।।७६।।
यदपि निजसखी सान्वेषणायास्य याता
स्वयमपि च निमग्ना कृष्ण-सम्बन्धि-कृत्ये ।
तदपि हरिमुखेन्दोर्दर्शनोत्काऽथ मेने
त्रुटिमपि युगलक्षं व्यग्रराधा-चकोरी ।।८०।।

कर्पूर, और जायफल आदि के प्रयोग से पान की एक वीड़ी प्रस्तुत की ।।७७।।

आप तुलसी को बुलाकर कहने लगी:-'हे सखि,! तुम यह माला और पानबीड़ी ले जाकर श्रीकृष्ण को (हमारी ओर-से) उपहार प्रदान करो बृन्दा और सुबल-सखा से केलिकुञ्ज का पता मालुम कर शीघ्र हमारे पास लौट आना । इस प्रकार ललिता द्वारा भेजी गई कस्तूरी सखि के साथ तुलसी वही माला और पान वीड़ी ग्रहण कर श्रीकृष्ण के समीप पहुँच गई ॥

श्रीराधिका सखियों की सहायता से, श्रीकृष्ण की सर्वेन्द्रियों और आत्मा की तृप्ति के लिये, कर्पूरकेली और अमृतकेली लड्डू बनाने के कार्य्य में जुट गईं ।।७६।।

यद्यपि श्रीकृष्ण का पता जानने के हेतु तुलसी पहिले ही से जा चुकी था, तथापि उसके लौटने में विलम्ब देख, उस

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः पञ्चम एष साधु निरगात् पूर्वाह्नलीलामनु ॥५॥

❀ अथ षष्ठः सर्गः ❀

प्रविष्टोऽथ वनं पश्चात् पश्यन् वलित-कन्धरम् ।
उज्जिजृम्भे हरिर्वीक्ष्य निवृत्तान् व्रजवासिनः ॥१॥

अधीरा चकोरी श्रीराधिकाजी को व्रज के पूर्णचन्द्र श्रीकृष्ण के दर्शनों में क्षणमात्र देरी भी, युग के समान लगने लगी ॥८०॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरण-कमलों के मधुपान में भ्रमर स्वरूप श्रीरूपगोस्वामिजी की सेवा के फल स्वरूप, श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामि द्वारा प्रकाशित और श्रीजीवगोस्वामिजी के संसर्ग से उत्पन्न और श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामि के बरदान प्रभाव द्वारा लिखित श्रीगोबिन्दलीलामृत काव्य का पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ ।

श्रीकृष्ण ने गर्दन घुमाकर पीछे की ओर मुड़कर देखा कि समस्त ब्रजबासी बापिस लौट गये हैं, तब वह बन जाने में अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हुए ॥१॥

कृष्ण-मत्तेभ उन्मुक्तो घोषदृग्दृढ़-शृङ्खलात् ।
उच्छ्रसंश्चपलः स्वैरी काननेऽन्य इवाभवत् ॥२॥
श्रीकृष्ण-सच्चित्र-पटे विमोचिते व्रजाक्षिबन्धाद्वन-चित्रकारिणा ।
प्रादुर्बभूवुर्नयनोत्सवानि तद्विहार-चित्राणि शुभान्यनेकधा ॥३॥
नृत्यन्ति गायन्ति हसन्ति गोपाः कूर्दन्ति नन्दन्ति परिस्खलन्ति ।
नर्म्माणि तन्वन्ति लसन्त्यथैते बन्धाद्विमुक्ताः कलभोत्तमा वा ॥४॥
स्थितिं स्थिरां मातृगुरो बकारे रेकेऽङ्गना स्वस्य दृशञ्च लोलाम् ।
सङ्घट्टदृष्टामनु-कुर्व्वतेऽन्ये चेष्टां गिरञ्च स्खलितां जनानाम् ॥५॥

आहा ! उस समय के श्रीकृष्ण की विचित्र-शोभा का क्या बर्णन किया जा सकता है । मत्त हाथी जैसे बन्धन से छूट झपट कर चलता है उसी प्रकार स्वेच्छाचरी श्रीकृष्ण ब्रजबासियों के नेत्ररूप बन्धन (शृङ्खल) से मुक्त हो बनमें दूसरोंके समान दिखाई देने लगे ॥२॥

बन रूप चित्रकार द्वारा निर्माण किया गया श्रीकृष्ण रूप चित्रपट ब्रजवासियों के नेत्ररूप बन्धन से मुक्त होने पर, श्रीकृष्ण के बहुत प्रकार के चित्र-विचित्र, नयनाभिराम बिहार प्रदर्शित होने लगा । अर्थात् बन में पहुँच श्रीकृष्ण अनेक लीलायें करने लगे ॥६॥

बन में पहुँचकर समस्त गोपबालक बन्धन-मुक्त हाथी के बच्चे के समान कोई कोई नाच रहा था, कोई कोई गा रहा था, कोई कोई हँस रहा था, कोई कोई कूद रहा था, कोई कोई आनन्द में मग्न था, कोई कोई, पृथिवी में लोट रहा था, कोई कोई हास्य-विनोद कर रहा था, और कोई आमोद प्रमोद कर रहा था ॥४॥

कोई कोई बालक श्रीकृष्ण के सम्मुख आकर उनकी वैसी

केचिद्वृक्षलतावृताः प्रचपलापाङ्गैः स्मितार्द्रं मना-
गुद्वाट्याम्बर,-सम्वृताननममुं गोपाल-योषायिताः।
पश्यन्तो व्यहसन् परे च धवला लेखायमाना मुदा
व्यालम्ब्याङ्घ्रि-करैर्मही विलुलित-ग्रीवोद्र्ध्वकर्णानना: ॥६॥
वितण्डा-पण्डिताः केचित्ताराच्छब्दार्थ-खण्डनैः।
दण्डादण्डिरणौ रन्ये केचिद्दोर्दण्ड-सङ्गरैः परे ॥७॥
क्षिप्तानेकास्त्र काण्डोघैर्दण्डभ्रमण-कौशलैः।
लास्यैर्हास्यैः परे दास्यैस्तावयामासुरच्युतम् ॥८॥ युग्मकम्

नकल उतारता था जब कि वह अपनी माताओं के सामने स्थिर-दृष्टि से बैठते थे, कोई कोई उस प्रकार जब कि वह अपनी प्रेयसियों की ओर चञ्चल दृष्टि से देखते थे परिहास कर रहा था, और कोई कोई उस प्रकार भाव-भङ्गि दिखला रहा था जैसा कि वह अन्य लोगों की ओर स्थिर और चञ्चल नेत्रों से देखा करते थे ॥५॥

कोई कोई बालक लताओं की आड़ में था, कोई वृक्ष की आड़ में था, कोई कोई व्रजाङ्गना का वेष बनाये मुसकराता हुआ आँचल से मुख ढके घूँघट में से श्रीकृष्ण की ओर वक्रनेत्रों से देख हास्य विनोद कर रहा था और कोई गोपबालक अपने चारों हाथ पैरों द्वारा पृथिवी का अवलम्बन लिये गाय का सा आकार बना टेढ़ी गर्दन कर ऊपर मुख उठाये कान खड़े कर आनन्द कर रहा था ॥६॥

कोई कोई गोप बालक श्रीकृष्ण के कहे वाक्यों का अक्षरशः वितण्डा (धूर्त पण्डित के समान तर्क-द्वारा खण्डन) कर रहा था, कोई दण्डयुद्ध (पटेवाजी), कोई बाहु युद्ध कर रहा था। कोई अस्त्र-चालन और दण्ड घुमाने का कौशल दिखा रहा था।

अथागतं कृष्णमवेद्य वृन्दा वृन्दाटवीं तद्विरहाद् विषण्णाम् ।
वृन्दञ्च साऽबोधयदाकुलानां वृन्दावन-स्थावर-जङ्गमानाम् ॥९॥
अटवि सखि समायान्माधवोऽसौ समन्तात्
विसृज विरह-घूर्णां तूर्णमुल्लालसीहि ।
स्वगुण-गण-विकाशैः स्वेश्वरीं स्मारयामूं
सफलय निजलक्ष्मीश्चानयोः सद्विलासैः ॥१०॥
प्रबुध्यध्वं वल्ल्यो विकसत नगाः कूर्दत मृगाः
पिका भृङ्गैर्गानं कुरुत शिखिनो नृत्यत मुदा ।
अधीध्वं भोः कीरा स्थिरचरगणा नन्दत चिरम्
समायातो युष्मान् सुखयितुमसौ वः प्रियतमः ॥११॥

कोई कोई नृत्य, गान और हास्य विनोद कर रहा था और कोई अपने दास्य-कार्य्य से श्रीकृष्णजी को सन्तुष्ट कर रहा था ॥७-८॥

श्रीवृन्दादेवी यह देख कि श्रीकृष्ण अब बृन्दाबन के बीच आ रहे हैं तब कृष्ण के बिरह से व्याकुल बृन्दाचन-अटवी और समस्त स्थावर-जङ्गम को सजग कर कहने लगीः ॥९॥

हे सखि अटवि (वन) ! माधव सर्व प्रकार से बृन्दाबन आ गये हैं । पक्षान्तर में बसन्त ऋतु का भी आगमन हो गया है । तुम भी विरह-घूर्णा का त्याग कर प्रसन्न चित्त हो जाओ । अपने समस्त-गुणों का प्रकाश करो जिससे श्रीकृष्ण को श्रीराधिकाजी का स्मरण आने लगे । श्रीराधा-कृष्ण के बिलास क्रीड़ा द्वारा अपनी सुन्दरता की सफलता करो ॥१०॥

हे लताओ ! सचेतन हो जाओ, हे बृक्षो ! पुष्पमय हो जाओ, हे मृगो ! अब तुम क्रीड़ा करो, हे कोकिलगण ! तुम सब भ्रमरों के साथ मिलकर गान करो, हे मयूरगण ! तुम सब

६)

ततः स्वविच्छेददावाग्निमूर्च्छितां
समीक्ष्य तां चेतयितुं प्रियाटवीम् ।
कृष्णाम्बुदः स्वागमनञ्च शंसितुं
ववर्ष वंशीनिनदामृतान्यसौ ॥१२॥

वंशीनिनादामृतवृष्टिसिक्ता कृष्णाङ्गसङ्गानिलवीजिताथ ।
श्रीवृन्दयाल्या च सुचेतितोच्चै-र्वृन्दाटवी सा सहसोन्मिमील ॥१३

सत्वधर्म्म-विपर्य्यासैर्वेणुनादामृतोत्थितैः ।
स्व-सात्त्विक-विकारैश्च तदाभूद्व्याकुलाटवी ॥१४॥

सुख से नृत्य करो, हे शुकपक्षियों ! मीठी मीठी कविताओं का पाठ करो, हे स्थावर-जङ्गम सकल ! आनन्दमय हो जाओ, वह देखो-तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण तुम सब को सुख प्रदान करने के निमित्त पधार रहे हैं ॥११॥

इसके पश्चात् कृष्ण-रूप मेघ अपनी प्रेयसी रूप अटवि को बिरह-रूप दावानल से मूर्छित देख उसको चेतना प्रदान करने के निमित्त अपने आगमन की सूचना देने के हेतु, वंशी-बादन रूप अमृत-वर्षा करने लगा ॥१२॥

वही वृन्दा-अटवी वंशी नादरूप-वर्षा से अभिसिक्त, चारि और कृष्ण-अंग से उत्पन्न-वायु द्वारा शीतलता को प्राप्त एवं वृन्दा-सखि द्वारा सचेत हुई सहसा प्रफुल्लित हो गई ॥१३॥

श्रीकृष्ण का मधुर वंशीबादन सुन बन के समस्त स्थावर-जङ्गम अपने अपने धर्म्माचरण के विपरीत कार्य्य करने लगे अर्थात् स्थावर, जंगम का धर्म्म करने लगे और जंगम स्थावर का। यह देख वृन्दा-अटवी विचलित हो गई ॥१४॥

प्रोद्यद्रे पथुरुच्चलत्स्थिरचयैः स्तब्धा जडैर्जङ्गमैः
प्रस्विन्ना स्रवदश्रु जाल-सलिलैः श्वेता प्रसूनोत्करैः।
साश्रुः पुष्पमधु-द्रवैः स्वरभिदायुक्ता खगाली-रवै-
रोमाञ्चालि-युता लताङ्कुर-चयैर्वृन्दाटवी सा बभौ ॥१५॥

अखण्डिता विशतैकेन जाग्रतान्येन साटवी।
माधवेनावभौ द्रष्टुं तं शोभा श्रीरिवागता ॥१६॥

कूजद्भृङ्ग-विहङ्ग-पञ्चम-कलालापोल्लसन्ती हरे-
श्च्योतत्पक्विम-सत्फलोत्कर-रसोल्लासाटवी साभवत।

वनके सब स्थावर-देहरूप वृक्ष-लता-गुल्म काँपने लगे। जंगम देह रूप समस्त पशु, पक्षि, कीट, पतंगादि जड़ता को प्राप्त हो गए। पत्थर पिघलने लगे। वनके सफेद फूलों का रंग विवर्ण हो गया। फूलों में अधिक मधु झरने से अश्रु वर्षा होने लगी। पशु पक्षियों का कण्ठ गद्गद होने से उनका स्वरभंग हो गया। तृण-लताओं में अँकुर की जगह रोमाञ्च हो गया। सब वनके जीव अचैतन्यता (मूर्छा) को प्राप्त हो गये। (वृन्दा-अटवी में यह आठ प्रकार के सात्विक-भाव एक साथ ही उदय हुए। यह श्रीराधिका के बिना और किसी में भी एक साथ उदय नहीं होते हैं वृन्दा-अटवी श्रीराधाजी की ही अंग स्वरूप है, अतः इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं।) ॥१५॥

वन में श्रीकृष्ण का आगमन और बसन्त ऋतु को आया जान वृन्दा-अटवी ने, उनका दर्शन पाने की इच्छा से उनकी प्रिया श्रीलक्ष्मीजी का जैसा सौन्दर्य्य धारण कर लिया ॥१६॥

उसका वह सौन्दर्य्य कैसा है कहते हैं कि वन में भ्रमर गुञ्जार रहे हैं, पक्षी चहचहा रहे हैं जो कर्णेन्द्रियों को अच्छे लगते हैं। वनके

संफुल्लन्नलिनी विलासि-विहमद्वल्ली-मतल्ली-नटी
लास्याचार्य्य-मरुद्गणालि-मुदिता सर्व्वेन्द्रियाह्लादिनी ॥१७॥

पुष्पैर्हास्यं भ्रमरैर्गानं पर्णैर्लास्यं मधुभिः पानम् ।
दधतस्तरवः स्वफलैः खानं कुर्व्वन्त्यभ्यागत-हरि-मानम् ॥१८॥

अलि-गायक-चुम्बित-कुसुमास्यं पल्लवपटवृत-विवृत-सुदास्यम् ।
दधती रहसि विदधती लास्यं व्यवृनुत वल्लीततिरपि दास्यम् ॥१६

स्वरमण-सहितानां वेनुनादाहृतानां
तृण-कवल-मुखानां चञ्चलालोकनानि ।

सब वृक्ष रसयुक्त—फलों से भरपूर हो गये हैं जिनसे रसना की तृप्ति होती है। कमल खिले हुए हैं, लताएं फूल रही हैं, जिनके द्वारा घ्राणेन्द्रियों को सुख होता है। शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु चल रही है जिससे श्रम दूर हो जाता है। अर्थात् वृन्दा अटवी का यह सौन्दर्य्य-प्रकाशक के द्वारा श्रीकृष्ण की सर्वाङ्ग सेवा दिखलाई गई है ॥१७॥

वृन्दा-अटवी के वृक्ष-समूह श्रीकृष्ण को मानो अभ्यागत मानकर फूलों से लद गये अर्थात् उनके आगमन से हँसने लगे हैं, भ्रमर-समूह गान करने लगे, पत्र नाचने लगे, मधु-समूह टपकने लगा—अर्थात् समस्त वृक्ष अपने अपने फलों द्वारा हरि के सम्मानार्थ उनके अन्न-भोजन का विधान करने लगे ॥१८॥

लतायें भी श्रीकृष्ण को अभ्यागत मानकर गायकरूप अलि (भ्रमर) द्वारा चुम्बित कुसुमरूप अपने मुख को पत्र रूप वस्त्र से आच्छादन (ढक) कर, जनशून्य स्थान में नृत्य करते करते दास्य-भाव का विस्तार करने लगीं ॥१६॥

सकल मृगी, मृगों के साथ तृण चरते चरते वंशी की तान

हरिरथ हरिणीनां वीक्ष्य राधा-कटाक्षैः
स्मृतिपथमधिरूढैर्विव्यथे विद्धमर्मा ॥२०॥

प्रेम्णा नृत्यत्फुल्ल-मयूरीतति-युक्तः
कृष्णालोकान्मत्त-मयूर-व्रज आरात् ।
स्निग्धे राधा-केश-कलापे रतिमुक्ते
यत् सत्पिञ्छैराशु मुरारेः स्मृतिरासीत् ॥२१॥

मदकल-कलविङ्की-मत्त-कादम्बिकाना-
मपि सरसि विरावैः सारसानां प्रियायाः ।
वलय-कटक-काञ्ची-नूपुराणां स्वनोर्म्मी-
भ्रम-चुलुकित-चित्तोऽभ्यागतां तां स मेने ॥२२॥

उपरि-चपल-भृङ्गं पद्ममीषत्प्रकाशं
वर-परिमल-पूरं शश्वदालोक्य कृष्णः ।

(ध्वनि) सुन सामने आ खड़ी हुईं और श्रीकृष्ण उनके मनोहारी नेत्रों को देख श्रीराधिका के कमल-लोचनों का स्मरण कर आकुल हो उठे ॥२०॥

उसी समय मयूरगण श्रीकृष्ण का दर्शन पाकर प्रसन्न-चित्त से मयूरियों के साथ मत्त हो नाचने लगे। यह देख श्रीकृष्ण के मन में श्रीरधिका के, रति क्रीड़ा के कारण अस्त-व्यस्त केश-राशि का स्मरण हुआ ॥२१॥

श्रीकृष्ण सरोवर के किनारे रहने वाले मत्त चड़ई पक्षि की ध्वनि को श्रीराधिका जी के बालाओं की झङ्कार, हंस-पक्षि की ध्वनि को उनके कटक (चूड़ियाँ) की और सारसों की कलध्वनि को उनके नूपुर की ध्वनि बोध कर भ्रम में पड़ यह समझने लगे कि श्रीराधिका जी आई हुई हैं ॥२२॥

स्मित-शवल-कटाक्षं पद्मगन्धं प्रियाया
मुखमिदमिति मत्वा तामुपेतां विवेद ॥२३॥
रुचक-करक-विल्वैर्नागरङ्गैः सुपक्वैः
प्रतिदिशमनुदृष्टैर्हर्षतर्षाकुलोऽसौ ।
सपदि लसदुरोज-भ्रान्ति-सम्भ्रान्त-चेता
वपुष इह विभुत्वं राधिकायाः शशङ्के ॥२४॥
ततो यतः पतति विलोचनं हरेस्ततस्ततः स्फुरति तदङ्ग-संहतिः ।
न चाद्भुतं तदिह तु यद् व्रजाटवी मुदे हरेरलभत राधिकात्मताम् ॥२५
तैरुद्दीपित-भावाली वात्ययोच्चालितं मनः ।
शशाक न स्थिरीकर्तुं काशपुष्पनिभं हरिः ॥२६॥

श्रेष्ठतम सुगन्ध को भी तिरस्कार करने वाले कुछ कुछ खिले सुगन्ध युक्त कमल के ऊपर बैठे चञ्चल-भ्रमर को देख श्रीकृष्ण समझने लगे कि यह हमारी प्रियाजी का सुखारविन्द है जो अर्ध खुले नेत्रों और मुसकान एवं पद्मगन्ध से युक्त है ॥

श्रीकृष्ण वन के बीच विचरते अपने चारों ओर पके अनार, दाड़िम, व नारंगी आदि फल-समूह देख हर्ष एवं भ्रमवश शंका करने लगे कि श्रीप्रियाजी अपने समस्त अंग की व्यापकता का प्रदर्शन कर रही है अर्थात् उनको उस समय वृन्दा-अटवी श्रीराधाजी जैसी दिखाई देने लगी ॥२४॥

इसी प्रकार श्रीकृष्णजी की दृष्टि जहाँ जहाँ भी पड़ती थी वहीं श्रीराधिकाजी का समस्त अंग प्रत्यंग उनके नेत्रों के सामने प्रतीयमान होता था। यह जो कुछ भी हो वृन्दा-अटवी, श्रीकृष्णजी को आनन्द देने के निमित्त, यदि श्रीराधिका-मयत्व को प्राप्त हो गई तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ॥२५॥

यह सब देख श्रीकृष्ण में यह भाव उदय हो गया कि यह

बृन्दावन-स्तिरचरान् स्वालोक-प्रेम-विह्वलान् ।
प्रेम्णाकृष्टमनाः कृष्णः प्रेक्ष्य तान् मुमुदे भृशम् ॥२७॥
सख्यः किं कुशलं लताः क्षितिरुहाः क्षेमं सखायः शिवं
मृग्यः किं भविकं मृगाः शकुनिका भव्यं शकुन्ताः शुभम् ।
भृङ्ग्यः शं भ्रमराः सुखं स्थिरचराः स्वश्रेयसं वः सदा
प्रेम्णेत्थं वनसंगतान् सरभसं पप्रच्छ सर्व्वान् हरिः ॥२८॥
प्रचार्य्य गाश्चारयितुं क्षुधार्त्ता गोवर्द्धन-क्ष्माभृदुपत्यकायाम् ।
मनोऽनुधावद्दयितां निवर्त्तयन् समं वयस्यैर्विजहार कृष्णः ॥२९॥

सब श्रीराधिका का ही अंग-प्रत्यंग है । वे इस भाव को, घूर्णा-यमान वायु द्वारा प्रताड़ित कास कुसुम की भाँति स्थिर रखने में असमर्थ हो गये ॥२६॥

श्रीकृष्ण यह देख कि हमारे दर्शन से समस्त स्थावर जङ्गम प्रेम से पुलकायमान हो गये हैं, अत्यन्त आनन्दित हो गये ॥२७॥

तव वे समस्त बृन्दाबन के स्थाबर-जङ्गम से पूछने लगे-'हे सखि लताओ ! तुम कुशल से तो हो, हे बृक्षो ! तुम तो हमारे बन्धु हो, तुम आनन्द से तो हो, मृगिया ! तुमको कोई भय तो नहीं, हे मृगो ! तुम सब तो प्रसन्न चित्त हो, हे पक्षि-णियो ! तुम सब कुशल से तो हो; हे पक्षियो ! तुम्हारा सब प्रकार से मंगल तो है; हे भ्रमरियो ! तुम तो सुख से हो; हे अलि-समूह ! तुम तो आनन्द मंगल से हो; हे समस्त स्थावर-जङ्गम ! तुम तो सर्वदा ही कुशल पूर्वक हो ।२८॥

इस प्रकार स्थावर और जङ्गम से प्रश्न करते करते श्रीगोवर्द्धन की तलैटी में समस्त गोओं को चराने के लिये पहुँच गये और श्रीराधिका के प्रति धावित मन बृत्ति को हटाने का प्रयत्न करते करते सखाओं के साथ बिहार करने लगे ॥२६॥

स्वकल्पितैर्लोकचय प्रसिद्धै र्हरिर्विहारैर्वनशोभया च ।
शशाक राधा-विरहातितप्तं स तां प्रधावन्न मनो निरोद्धुम् ॥३०॥
तान् वीक्ष्य कृष्णः कृपयार्द्र चित्ता-स्तैस्तैर्विहारैश्च मिथो नियुद्धैः ।
श्रान्तान् क्षुधार्त्तानथ भोजनेच्छु-र्नियेत्र संभोजयितुं वयस्यान् ॥३१
तावद्धनिष्ठा घृतपक्कमन्नं प्रातःकृतं यल्ललितादिभिस्तत् ।
दत्तं रसाला-सहितं जनन्या दासीभिरादाय समाजगाम ॥३२॥
तां वीक्ष्य हृष्टः स हरिर्बभाषे किं मे धनिष्ठे पितरौ सुखं स्तः ।
सुस्नातमाभ्यां विहितेश-पूजा प्रतोष्य सर्व्वान् वद किं नु भुक्तम् ॥३३

किन्तु सखाओं के साथ अनेक प्रकार की लोकप्रसिद्ध क्रीड़ा करते हुए भी और बन की शोभा देखते हुए भी श्रीराधिका का ध्यान चित्त से न हटा सके। उनका मन बार बार उसी ओर दौड़ता था और किसी प्रकार नहीं रुकता था ॥३०॥

तब श्रीकृष्ण सखाओं के, जो परस्पर बाहुयुद्ध इत्यादि नकल उतारने के अभिनय से अधिक थक गये थे और भूख प्यास से अति व्याकुल हो रहे थे, भोजन के प्रबन्ध में लग गये ॥३१॥

इसी समय ललिता आदि सखियाँ प्रातःकाल ही से बहुत प्रकार के घी द्वारा सिद्ध किये हुए अन्न व्यञ्जन और श्रीयशोदा-जी का बनाया रसाला एवं अन्य समस्त सामग्री धनिष्ठा आदि दासियों द्वारा वहन कर, साथ में ले श्रीकृष्ण के समीप आ उपस्थित हुईं ॥३२॥

धनिष्ठा को देख श्रीकृष्णजी पूछने लगे:-'हे धनिष्ठे ! हमारे माता पिता तो सकुशल हैं ? क्या उन्होंने स्नानादि सन्ध्या-बन्दन से निवृत्त हो परिजन के सह भोजन ग्रहण किया है' ? ॥३३॥

साप्याह तं तौ तव मङ्गलार्थं स्नातार्च्चितेशौ द्विजसात्कृतार्थौ।
संभोज्य सर्व्वानथ भुक्तवन्तौ भोज्यानि च प्रेषयतः स्म तुभ्यम ॥

राधासङ्ग-द्रुमारोहोत्कण्ठितालम्बनार्थिनी।
तां परालम्बनां मेने चित्तवृत्ति-लता हरेः ॥३५॥

इतस्ततः सञ्चरतीर्गवालीः स्ववेणु-नादैरथ संकलय्य।
जगाम ताः पाययितुं वयस्यैः सञ्चालयन् मानस-जान्हवीसः॥३६

पाययित्वा जलं गास्ताः शीतं स्वादु सुनिर्म्मलम्।
स्वयं गोपाः पपुः सस्नुर्विजह्रुः सलिले चिरम् ॥३७॥

धनिष्ठा ने उत्तर दिया 'हाँ, तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारी कुशलता के आशय से स्नान, ध्यान एवं भिक्षुओं को यथेष्ट धन दान से तृप्त कर समस्त परिवार को भोजन करा कर भोजन पा लिया है और तुम्हारे लिये पकवान भेजा है ॥३४॥

इसमें पहिले श्रीकृष्ण की चित्तवृत्ति (राधिका के दर्शनों की लालसा) रूपा लता अवलम्बन प्राप्ति कामना से (श्रीराधिका के साथ मिलन-रूप वृक्ष पर आरोहण के निमित्त) उतावली हो रही थी, इस समय धनिष्ठा को देख उसी का आश्रय लेने की विवेचना करने लगी ॥३५॥

तब श्रीकृष्ण ने इधर उधर चरती हुई गौओं को वंशी बजाकर एकत्रित किया और उनको जल पिलाने के हेतु, सखाओं को साथ में ले, मानसगंगा पर चले गये ॥३६॥

वहाँ पहुँच पहिले तो सब गौओं को शीतल और सुस्वादु जल पिलाया, फिर स्वयं पान किया और अधिक समय तक जल क्रीड़ा करते रहे ॥३७॥

उपपुलिनमथासौ तांस्तत्र वयस्यान्
दधिमथित-रसाला-सन्धिताभ्रादियुक्तम् ।
स्वयमपि च समश्नन् स्वादयन् हासयंश्च
स्वपरित उपविष्टान् भोजयामास कृष्णः ॥३८॥
ततः सखीनाह हरिः सहार्य्या यूयं क्षणं चारयताग्रतो गाः ।
अहं सखिभ्यां सह माधवीयां वनश्रियं द्रष्टुमिह भ्रमामि ॥३९॥
दासीर्धनिष्ठावददाशु यात यूयं गृहीत्वाखिल-भाजनानि ।
पुष्पाणि नारयणा-सेवनार्थं सञ्चित्य पश्चादहमागतास्मि ॥४०॥
फुल्ल-गन्धफली-द्वन्द्वमवतंसोचितं तदा ।
आदायागत्य कृष्णस्य वृन्दार्पितवती करे ॥४१॥
तदालोकात् प्रियाकान्ति-स्मृत्युत्कण्ठावतो हरेः ।
एजत्करात्तादादाय तच्छ्रुत्योर्निदधे वटुः ॥४२॥

इसके बाद श्रीकृष्ण यमुना-पुलिन में पहुँचे और सब सखाओं को अपने चारों ओर बिठला कर वहीं समस्त भोजन-सामग्री बितरण कर सबको भोजन कराये और स्वयं भी भोजन करने लगे ॥३८॥

और कहने लगेः-हे सखाओ। थोड़ी देर बाद तुम सब लोग बलदाऊजी के साथ गो चारण करो, मैं सुबल और मधुमंगल सखा को साथ ले बसन्त ऋतु की शोभा देखने के लिये यहीं आस पास भ्रमण करूँगा ॥३९॥

तब धनिष्ठा दासियों को बुला कर कहने लगीः-'मैं श्रीनारायणजी की पूजा के निमित्त में फूल ताड़ कर अभी आती हूँ, तुम लोग यह सब पात्र लेकर चली जाओ' ॥४०॥

इसके पहले ही श्रीवृन्दादेवी ने कानों के भूषण में लगाने के योग्य दो खिले हुए चम्पा के फूल तोड़ श्रीकृष्ण के पास आ उनके हाथ पर रख दिये ॥४१॥

बृन्दां धनिष्ठां सुबलं वटुञ्च षाड् गुण्य-विज्ञान सचिवान स कृष्णः।
उपायदक्षानुपलभ्य मेने राधाङ्ग-सङ्गोत्तम-राज्यलब्धिम ॥४३॥
मधुमङ्गल-हस्तं स प्रगृह्य वाम-पाणिना।
बृन्दा-धनिष्ठा-सुबलैः ससार सुमनः सरः ॥४४॥
कुसुमित-तरुवल्ली-वीथि-कुञ्जैर्लसन्तीं
स्थल-जल-विहगालिव्यूह-कोलाहलैश्च।
स कुसुमसरसीं तां वीक्ष्य राधागमोत्क-
स्तदभिसृति-विचारं स्वानुगैराचचार ॥४५॥

श्रीकृष्ण फूलों को देख उत्कण्ठित हृदय से श्रीराधिका की अंगकान्ति का स्मरण करने लगे और उनके दोनों हाथों में कप-कपी उत्पन्न हो गई। यह देख मधुमंगल ने दोनों फूल उनके हाथ में से ले उनके कानों में पहिना दिये ॥४२॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण, सन्धि, विग्रह, यानु, आसन, मतभेद (सन्देह) और आश्रय इन छै प्रकार राजकार्य्य (नीति) में निपुण, उपाय साधन में चतुर बृन्दा, धनिष्ठा, सुबल और मधुमंगल जैसे चार मन्त्रियों को प्राप्त होकर श्रीराधिका के अंग संग रूप राज्य पर अधिकार पाने के निमित्त विवेचना करने लगे। अर्थात् किस प्रकार श्रीराधिका से मिलन हो वही योजना बनाने लगे ॥४३॥

तब श्रीकृष्ण, अपने बाँये हाथ से मधुमंगल का हाथ पकड़ बृन्दा, धनिष्ठा और सुबल को साथ ले कुसुम-सरोबर की ओर चल दी ॥४४॥

वहाँ पर श्रीकृष्ण, फूलों से युक्त लताओं से आवृत (घिरी-हुई) कुञ्ज और थलचर, जलचर एवं नभचर पक्षियों के कलरब से रमणीय उस सरोवर की शोभा देख अभिसार सुख की कामना से उत्कण्ठित हो कर मधुमंगल आदि सखा के साथ

प्रयाति वृन्दा सुबलो बटुर्वा राधान्तिकं चेज्जटिला सशङ्का ।
एभिः समं वा कलहं विदध्या-द्वधुं निरुन्ध्यादथवा गृहान्तः ॥४६॥
आकर्षणीं वा मुरलीं नियुञ्ज्यां सर्व्वाः समेष्यन्ति च गोप-रामाः ।
तदिष्ट-लीलादि-रसो न सिद्धयेत् परस्परेर्ष्या-मद-मान-वाम्यात् ॥
ततो धनिष्ठे व्रज कुन्दवल्लीं प्रतीतिकृत् सा जटिला यदस्याम् ।
तद्वञ्चना-चञ्चुमतिः सदा नो स्निग्धार्थिता सा ध्रुवमानयेत्ताम् ॥४८
अथाह वृन्दा भवता यदुक्तं सत्यं हि तच्चेत् सुमनोऽवचेतुम् ।
राधा-सखी काचिदिहागता स्यात् ज्ञेयस्तदास्यास्तदुदन्त आदौ ॥

आलाप करते करते मन ही मन विवेचना करने लगे ॥४५॥

श्रीराधिका को यहाँ बुलवाने के लिये यदि वृन्दा को या सुबल को अथवा मधुमंगल को भेजा जाये तो यह बात अवश्य हो सकती है कि किञ्चित् मात्र भी सन्देह होने पर जटिला उनसे झगड़ा करेगी और हो सकता है कि राधिका को यहाँ पर आने ही न दे, घरमें बन्द रक्खे ॥४६॥

वे यह भी सोचने लगे कि यदि उनको बुलाने के लिये आकर्षिणी-मुरली को नियुक्त किया जाये तो उनका ध्वनि सुन सभी गोपियाँ आ जायेंगी। ऐसा होने पर उन सबके मन में एक दूसरे के प्रति जो ईर्षा-भाव, घमण्ड, मान और प्रतिकूलता विद्यमान है, उसके कारण वाँछित विलास लीला का आनन्द तो प्राप्त न हो सकेगा ॥४७॥

श्रीकृष्ण ने मनमें एक दूसरा ही उपाय सोचा और धनिष्ठा को बुलाकर कहने लगे:-'तुम शीघ्र कुन्दवल्ली के पास जाओ। वह हमसे बहुत स्नेह करती है, वह जटिला को किसी न किसी बहाने फुसला कर कार्य्यसिद्ध कर लेगी। इसलिये तुम उससे प्रार्थना करो वह अवश्य श्रीराधिका को यहाँ लिवा लायेगी ॥४८॥

श्रीकृष्ण की यह बात सुन वृन्दा कहने लगी:-'तुम जो कह रहे

अथागता सा तुलसी स्वसख्या कृष्णं सखिभ्यां सह तत् सखिभ्याम्।
प्रियागमोपाय-विचारलग्नं पुरः स्फुरन्तं मुमुदे समीक्ष्य ॥५०॥
स्वप्नेऽपि तत्सन्निधिमत्यजन्तीं तां राधया ते जहृषुः समेताम्।
निश्चित्य सर्व्वेऽथ माधवोऽभू-त्तद्दर्शनोत्कोऽध्वनि दत्तदृष्टिः॥५१
ततः सा तुलसी न्यस्य दृष्ट्वा वटुकरे स्रजम्।
उद्घाट्य पुटिकां वीटिं सुबलस्य करे ददौ ॥५२॥
राधा-करामोद-समृद्ध-सौरभं तच्छिल्प-नैपुण्यभरं तथाद्भुतम्।
तामुद्गीरन्तीं भ्रमरालि-कर्षिणीं स्रजं विलोक्याभवदुन्मना हरिः॥

हाँ, वह है तो ठीक, किन्तु मैंने पता लगाया है कि श्रीराधिका की कोई सखि फूल बीनने आयेगी, हम पहिले उससे उनका समाचार तो जान लें ॥४९॥

उसी समय तुलसी नाम की श्रीराधिका की एक सखि अपर कस्तूरी सखि को साथ लेकर वहाँ आ उपस्थित हुई और वृन्दा, धनिष्ठा, सुबल एवं मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण को श्रीराधिका को बुलाने के विषय में परामर्श करते देख, अत्यन्त आनन्दिता हुई ।५०॥

तुलसी तो कभी स्वप्न में भी श्रीराधिकाजी से अलग नहीं होती है अतः वह अवश्य ही उनके साथ आ रही होगी, ऐसी धारणा करते हुए सब लोग और श्रीकृष्णजी श्रीराधिका के दर्शन पाने की उत्कण्ठा से उसके आगमन पथ की ओर, देखने लगे ॥५१॥

निकट आकर तुलसी ने दौने (ठौंगा) में से फूलमाला निकाल मधुमंगल के हाथ में और पान-बीड़ी सुबल हाथ में देदी ॥५२॥

श्रीकृष्ण, उस माला को, जो श्रीराधिका के कर-कमलों द्वारा

कण्ठे स्रजं तामथ वैजयन्तीं हसन्न्यधाच्छ्रीमधुमङ्गलोऽस्य।
राधा-करस्पर्श-सुखादिवासौ तत्स्पर्शतः कण्टकिताङ्ग आसीत् ॥५४
आगत्य कुञ्जे परिहास-लीनां सम्भावयंस्तां दयितां मुकुन्दः।
तदास्य-वीक्षोत्कलिकाकुलात्मा तया हसन्त्या सह संललाप ॥५५॥
सख्यास्ते कुशलं सखीश कुशलं कुत्रेयमात्मालये
किं नायाति वनं कुतो स्वगुरुणा दिष्टाथ किं चेष्टते।
मथ्नात्यम्बुघटं ततः किमभवन्निर्भत्स्य रुद्धा गृहे
युक्त्या चानय बृन्दया न जटिला वञ्च्याह हा धिग्विधिम् ॥५६॥

विचित्र रूप से निर्माणित और स्पर्श से विशेष सुगन्ध को प्राप्त हुई थी और जो भ्रमर-समूह को अपनी ओर आकर्षण करती थी, देख, अतिशय उत्सुक हो उठे ॥५३॥

मधुमंगल ने हँसते हँसते जब श्रीकृष्ण के गले में वह वैजयन्ति-माला पहिनाई, तब उसमें श्रीराधिका के दोनों हाथों के स्पर्श का सम्पर्क होने के कारण उनका समस्त अंग पुलकायमान हो उठा ॥५४॥

तब वे वहाँ उठ कुञ्ज के भीतर प्रवेश कर गये, किन्तु वहाँ पहुँच, परिहास पूर्वक लीना श्रीराधिका की मनोहारी मूर्त्ति की चिन्ता कर, उनके चन्द्रमुख का दर्शन पाने की अभिलाषा से व्याकुल हो, उस हँसमुख तुलसी के साथ पारस्परिक कथा वार्त्ता करने लगे ॥५५॥

श्रीकृष्ण—"कहिये ! तुम्हारी सखि श्रीराधिका सकुशल तो है"?
तुलसी—"हाँ महाराज ! आपकी कृपा से सब कुशल मंगल है"।
श्रीकृष्ण—"वे इस समय कहाँ पर हैं" ?
तुलसी—"अपने घर पर ही हैं"।
श्रीकृष्ण—"क्या बन में नहीं पधारेंगी" ?

सदा राधाति-दौर्लभ्य-स्फूर्त्त्या मत्वा बभूव सः ।
हासोक्तिमपि सत्यं तां विषण्णात्मा स्मराकुलः ॥५७॥
कृष्णं विषण्णमालोक्य व्याकुला तुलसी स्वयम् ।
दृशा वृन्दा-धनिष्ठाभ्यां भर्त्सिताह ससंभ्रमम् ॥५८॥
मा गाः खेदं व्रजानन्द ! यामि निर्म्मञ्छनं तव ।
आगतां बिद्धि दयितां परिहासः कृतो मया ॥५९॥
तामागतामथ निशम्य दिदृक्षुरेना-
मौत्सुक्य-चञ्चलमना व्रजराजसूनुः ।

तुलसी— "गुरुजनों की आज्ञा का पालन कर रही हैं"।
श्रीकृष्ण— "क्या कर रहीं हैं" ?
तुलसी— "दधि के धोखे पानी विलो रही हैं"।
श्रीकृष्ण— "तो इससे क्या हुआ" ?
तुलसी— "जटिला बिगड़ गई और उनको घर पर ही रोक लिया"।
श्रीकृष्ण— "तुम शीघ्र वृन्दा से परमर्श कर जटिला को भुलावा दे उनको यहाँ पर लिवा लाओ"।
तुलसी— "जटिला धोखे में आने वाली नहीं"।
श्रीकृष्ण —(खेद के साथ) "हा विधाता ! तुमको धिक्कार है" ॥५६

काम पीड़ित श्रीकृष्ण तुलसी के उपहास युक्त बचन सुन, सत्य विवेचना कर एवं राधा-मिलन दुर्लभ जान, अत्यन्त दुखी हुए ॥५७॥

श्रीकृष्ण को इस प्रकार दुखी देख तुलसी भी व्याकुल हो उठी किन्तु जब वृन्दा और धनिष्ठा ने नेत्रों द्वारा उसकी भर्त्सना की तब वह श्रीकृष्णजी से कहने लगीः—॥५८॥

तुलसीः—'हे व्रजानन्द ! दुःख न करो, तुम्हारी बलाई ! मैं तो परिहास कर रही थी, अब अपनी प्रियाजी को आया हुआ ही जानो अर्थात् आती ही होगी' ॥५९॥

उत्तार्य्य चम्पक-युगं निज-कर्णयोस्तत्
तस्याः समर्प्य करयोर्मुदितोऽवदत्ताम् ॥६०॥
क्वेयं क्वेयं निह्नुता वा किमर्थं रुष्टा सा चेन्नापराधो ममास्ति।
चेन्नर्म्मैतद्दूनचित्ते न युक्तं हा हा शीघ्रं दर्शयामूं प्रियां मे ॥६१॥
प्रियावलोकनोत्कण्ठं काल-देशार्थ-तत्त्ववित्।
आनिनीषुद्रुतं राधां बभाषे तुलसी हरिम् ॥६२॥
सा ते कान्ता कमलनयन ! त्वन्मुखालोकनोत्का
सूर्य्यार्च्चायै सपदि जटिला-प्रेषिता कुन्दवल्ल्या।
त्वमायान्ती प्रथममिह मां प्राहिणोत् त्वःप्रवृत्त्यै
क्रीड़ाकुञ्जं त्वमुपदिश तं यत्र तामानयामि ॥६३॥

तब श्रीकृष्ण यह सुन कि प्रियाजी आरही हैं, उनके दर्शनों की अभिलाषा से चलायमान हो, अपने दोनों कानों से चम्पक-कलियाँ उतार प्रसन्न चित्त से तुलसी के हाथों में प्रदान कर कहने लगे:- ॥६०॥

'अयि तुलसी ! श्रीराधिकाजी कहाँ हैं ? छिपी हुई क्यों हैं ? क्या हम ने तो कोई अपराध नहीं किया है यदि यह उपहास है तो हम जैसे दुःखित चित्त के साथ उपहास करना उचित नहीं है अतः शीघ्र ही हमारी प्रियतमा को हमसे मिलाओ ॥६१

देश-काल के विचार में कुशला तुलसी श्रीकृष्ण को प्रियतमा के वियोग से व्याकुल देख, शीघ्र उनको लिवा लाने के विषय में आग्रह दिखलाती हुई श्रीहरि को कहने लगी:- ॥६२॥

हे कमलनयन। जटिला की आज्ञानुसार वे सूर्य्य की पूजा के निमित्त कुन्दलता के साथ आ रही हैं। वे तुम्हारे वियोग से दुखी हैं और तुम्हारे मनोभाव जानने के हेत मुझे यहाँ भेजा है। अब कहो ! कौनसी कुञ्ज में उन्हें लिवा लाऊँ ॥६३॥

तच्छ्रुत्वोच्छ्वसित-स्वान्तः प्रीतो गुञ्जावलीं हरिः ।
तुलस्यै दत्तवान् कण्ठादुत्तार्य्य पारितोषिकम् ॥६४॥
लीला-निकुञ्ज-कलनाय तदाथ वृन्दा
कृष्णावलोकितमुखी तुलसीं बभाषे ।
तत्कुण्डतीर-गतमानय राधिकां तां
कन्दर्प-केलि-सुखदाख्य-निकुञ्जमाशु ॥६५॥
अहञ्च केलिसामग्रीं समग्रयितुमुत्सुका ।
राधाकुण्डं त्वया सार्द्धं प्रयातास्मि द्रुतं सखि ॥६६॥
तावत् कृत्वा प्रियसहचरीं स्वस्य चन्द्रावलीं तां
सङ्केतस्थां व्रजपति-सुतं नेतुमागत्य तत्र ।
गुञ्जाहारं हरि-हृदि सखी-दत्तमाधाय शैव्या
दृष्ट्वा वृन्दासहित-तुलसीं विव्यथे क्षुब्धचित्ता ॥६७॥

तुलसी के वाक्य सुन, उत्साह से पूर्णचित्त श्रीकृष्ण अपने गले का गुञ्जाहार निकाल उसके गले में पारितोषिक रूप प्रदान करने लगे ॥६४॥

तब श्रीवृन्दादेवी लीला-निकुञ्ज निर्धारित करने के हेतु श्रीकृष्ण के मुख की ओर दृष्टिपात करती हुई तुलसी को कहने लगी कि श्रीराधिका को राधाकुण्ड के समीप स्थित कन्दर्प-केलि नाम की सुखद-कुञ्ज में लिवा लाना ॥६५॥

हे सखि ! मैं भी आवश्यक विलास सामग्री एकत्र करके तुम्हारे पीछे पीछे ही राधाकुण्ड जा रही हूँ ॥६६॥

इस बीच चन्द्रावली की सखि शैव्या चन्द्रावली को संकेत स्थान पर पहुँचा कर श्रीकृष्ण को वहाँ लिवा ले जाने के अभिप्राय से उनके समीप आई, और अपनी सखि द्वारा दिया हुआ गुञ्जाहार उनके गले में डालने लगी, उस समय वृन्दा

कृष्णस्याग्रे वृन्दया संलपन्त्या आलोकात्तत्प्रेष्ठसख्यास्तुलस्याः ।
राधां मत्वा सागतां दुःखिता तां शैव्या सव्याजं तदा व्याजहार ॥
कुर्वन्त्यद्य तया दुर्गाव्रतोद्याप-महोत्सवम् ।
तां निमन्त्रयितुं राधां प्रेषितास्मि वयस्यया ॥६९॥
साद्य लब्धा मयान्विष्य न गृहे नापि कानने ।
दिष्ट्या लब्धासि तुलसि ! कथ्यतां कुत्र ते सखी ॥७०॥
ततः सा तुलसी ज्ञात्वा शैव्यां कौटिल्यमाश्रिताम् ।
अवदत्तां सकौटिल्यं शठे शाठ्यं हि यन्नयः ॥७१॥

और तुलसी को उनके समीप देख विचलित हो अतिकातर हो गई ॥६७॥

इसके बाद वह (शैव्या) श्रीकृष्ण के समक्ष ही तुलसी को वृन्दा से वार्तालाप करते देख यह धारणा निश्चय कर कि 'राधिका आ रही है' अत्यन्त दुःखी हुई, और छल पूर्वक तुलसी से कहने लगी ॥६८॥

हे सखि ! आज हमारी सखि चन्द्रावलि कात्यायनी व्रत के उद्यापन का उत्सव मना रही है । उन्होंने मुझे राधिका को निमन्त्रण देने के लिये भेजा है ॥६९॥

हे तुलसी ! मैं तो उनको आज घर और बन सब जगह ढूँढ़ फिरी, कहीं भी नहीं मिलीं । क्या तुमको पता है कि वे कहाँ हैं ? ॥७०॥

तुलसी शैव्या की कुटिलता (चालाकी) समझ गई और यह विचार कर कि दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करने से तनिक भी दोष नहीं, उसको धोखा देने के अभिप्राय से मिथ्या कहने लगीः- ॥७१॥

कुर्व्वाणया व्रतमहोत्सवमम्बिकाया:
सा श्यामया स्वसुहृदाद्य निमन्त्र्य नीता ।
वृन्दाटवी-पारिवृढा स्वगृहं तथास्यां
भारोऽप्यधायि बिनयैः ससखीकुलायाम् ॥७२॥
ततो ललितया पुष्प-फल-माल्य-समृद्धये ।
वृन्दां नेतुं प्रेषिता तां गृहीत्वा चलितास्म्यहम् ॥७३॥
इति तां तुलसी भङ्गया प्रतार्य्य कुटिलामपि ।
ययौ बृन्दा-धनिष्ठाभ्यामुदासीनेव माधवे ॥७४॥
पुनर्बिवक्षुं तां शैव्यां कृष्णः कुञ्चित-चक्षुषा ।
निबार्य्याह स्वमौदास्यं तुलस्यां व्यञ्जयन्निव ॥७५॥

आज तो श्यामा-सखि ने अम्बिका के व्रतोद्यापन के उपलक्ष में एक महा-उत्सव का समारोह किया है इस कारण, सखियों और वन्धु-बान्धवों सहित श्रीराधिका को निमन्त्रित कर अपने यहाँ बुलवा लिया है और उसके आयोजन का समस्त भार उन्हीं के ऊपर सौंप दिया है ॥७२॥

फूल, फल और माला आदि के प्रबन्ध के कारण ललिताजी ने बृन्दादेवी को बुलवाने के हेतु मुझे यहाँ भेजा है, सो इन को साथ लिवाकर अब मैं जा रही हूँ ॥७३॥

इसी वाक्-पटुता द्वारा, कुटिल-स्वभावा शैव्या को धोखा दे और श्रीकृष्ण के प्रति उपेक्षा भाव दर्शाती, तुलसी, बृन्दा और धनिष्ठा को साथ ले, वहाँ से चल दी ॥७४॥

इधर श्रीकृष्ण यह देख कि शैव्या फिर कुछ कहने को उद्यत है उन्होंने इङ्गित द्वारा ऐसा करने से रोक दिया और तुलसी के प्रति उदास्य भाव प्रकाश करते हुए, उससे कहने लगे:- ॥७५॥

६)

मा किञ्चिद्वद यात्वेषा स्वसख्याः कुशलं वद ।
क्वेयमास्ते किं कुरुते प्रिया चन्द्रावली मम ॥७६॥
सातिहृष्टाथ तां प्राह निरुद्धापि धवाम्बया ।
दुर्गार्चाच्छद्मनानीता यत्नाच्चन्द्रावली मया ॥७७॥
सखीस्थल्युपशाल्ये तां त्वत्सङ्गोत्कलिकाकुलाम् ।
संरक्ष्य पद्मया तूर्णं त्वामन्वेष्टुमिहागता ॥७८॥
चिन्तितोऽन्तर्बहिर्हृष्यन् प्रत्युत्पन्नमतिर्हरिः ।
अवदद्वञ्चयन् शैव्यां छद्मनानन्दयन्निव ॥७९॥
अहं तद्दर्शनोत्कण्ठो दिष्ट्या नीतेयमाल्यसौ ।
गौरीतीर्थं लम्भयैनां गुरूणां वञ्चनक्षमम् ॥८०॥

'हे शैव्ये! इस समय कोई बात न करना, तुलसी को चले जाने दो। अब कहो हमारी प्यारी चन्द्रावली कुशल से तो है। वे कहाँ और क्या कर रही हैं' ॥७६॥

तब शैव्या हर्ष के साथ श्रीकृष्ण को कहने लगी:—'चन्द्रावली को उनकी सास ने घर में ही रोक रक्खा है, किन्तु, मैं श्रीदुर्गाजी की पूजा का बहाना कर उनको लिवा लाई हूँ ॥७७

तुमसे मिलने के लिये उत्कण्ठिता चन्द्रावली को मैं गोवर्द्धन के निकट वाली सखीस्थली में पद्मा के साथ छोड़ आई हूँ ॥७८॥

यह सुन असाधारण धी शक्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण मनमें तो बहुत चिन्तित हुए किन्तु ऊपर से प्रसन्नता और प्रेम प्रदर्शन करते हुए छल पूर्वक कहने लगे:— ॥७९॥

हे सखि! जिनके मिलन के लिये हम अति उत्सुक हैं, वे यदि स्वयं ही सौभाग्य-वश आ जायें तब तुम उनको

यावत् प्रमदराधाख्ये गाः सञ्चारयतो बने ।
अवधार्य्यागतोऽहं स्यां गवां सम्भालने सखीन ॥८१॥ युग्मकम्
तमाहाथ बटुर्भङ्गया द्रुतं कृष्ण ! धनिष्ठया ।
ब्रजेन्द्रेण यदाज्ञप्तं तत् कुरुष्वेति सोऽब्रवीत् ॥८२॥
आमात्यं बसुदेवेन दूतोऽत्र प्रहितः प्रगे ।
गुप्तं प्रस्थापिताश्चौराः कंसेन कानने गवाम ॥८३॥ युग्मकम्
भवितव्यं सावधानैः सर्वैर्गोपालकैरिति ।
तदादिष्टं तातपादैर्मयोदानीं धनिष्ठया ॥८४॥

सब प्रकार से सुरक्षित, विघ्न (बाधा) रहित, गौरीतीर्थ पर लिवा लाना । फिर कहने लगे:- ॥८०॥

हे सखि ! जिस प्रमोद वन में हमसे मिलकर श्रीराधिका को आनन्द लाभ होता है, उसी प्रमदराधाख्य बन (परमादली) में सखाओं को सावधान कर और गौओं की रक्षा का प्रबन्ध कर जब तक मैं लौट न आऊँ तब तक तुम चन्द्रावली को वहीं रखना ॥८१॥

इस अबसर पर मधुमङ्गल चातुरी-भाव से बातें बनाकर कहने लगा:- हे सखे, कृष्ण ! ब्रजराज नन्द-महाराज ने जो धनिष्ठा द्वारा सन्देश भेजा है पहिले उनकी आज्ञा का प्रतिपालन करो ॥८२॥

श्रीकृष्ण कहने लगे:-'हे ! आर्य्य मधुमंगल हमको स्मरण है, पिता नन्दजी ने बसुदेबजी के भेजे दूत द्वारा सुना है कि कंस राजा के भेजे हुए चोर वृन्दाबन में उपस्थित होकर समस्त गौओं को हरण कर ले जायेंगे ॥८३॥

इसीलिये तो गोपगण को साबधान कराने के हेतु आज प्रातःकाल धनिष्ठा हमारे निकट आयी थी ॥८४॥

तत्प्रत्यूहैर्विलम्बश्चेत कदाचित् सम्भवेन्मम ।
नोद्वेगः सखि ! कार्य्यस्ते आगन्ताहं द्रुतं ध्रुवम् ।।८५।।
इति प्रतार्य्य तां शैव्यां गोदिशं ससखोऽव्रजत् ।
मुरारिस्त्वरया हृष्टा सापि चन्द्रावलीं प्रति ।।८६।।
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः संप्रति षष्ठ एव निरगात् पूर्वान्हलीलामनु ।।६।।

अतः हे सखि शैव्ये ! जो कुछ भी हो, इस उपद्रव को तो दूर करने के लिये मुझे कुछ समय लगेगा ही । तुम वही करना जिससे चन्द्रावली बेचैन न हो पावें । मैं शीघ्र ही उनके पास पहुँचूगा ।।८५।।

श्रीकृष्णजी इस प्रकार शैव्या को प्रतारणा कर सखाओं को साथ ले गौओं के समीप जा पहुँचे। उधर शैव्या भी प्रसन्न मन चन्द्रावली के समीप पहुँच गई ।।८६।।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरण-कमलों के मधुपान में भ्रमर स्वरूप श्रीरूपगोस्वामिजी की सेवा के फल स्वरूप, श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामि द्वारा प्रकाशित और श्रीजीवगोस्वामिजी के संसर्ग से उत्पन्न और श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामि के वरदान प्रभाव द्वारा लिखित श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य का षष्ठ सर्ग समाप्त हुआ

।।पूर्वाह्नलीला

अथ सप्तमः सर्गः

क्रियद्दूरं ततो गत्वा निवृत्योद्धर्त्मना हरिः ।
राधाकुण्डं समायातः प्रिया-सङ्गोत्सुकः प्रियम् ॥१॥
परितो मणिसोपानावलिभिः परिवेष्टितम् ।
चतुर्भिर्मणि-संबद्ध-तीर्थैर्दिक्षु सुशोभितम् ॥२॥
तीर्थोपरि स्फुरद्रत्नमण्डपैः साङ्गनैर्युतम् ।
तत्तीर्थोभय-पार्श्व स्थ-मणिकुट्टिम-मण्डितम् ॥३॥
प्रतिमण्डप-पार्श्व स्थ-तरुशाखावलम्बनैः ।
युतं नानापुष्पवासश्चित्रैर्दोला-चतुष्टयैः ॥४॥

श्रीकृष्ण थोड़ी दूर जाकर वहाँ लौट पड़े और प्रियासंगम में उत्सुक आप अलक्षित-मार्ग से परमप्रिय राधाकुण्ड पहुँच गये ॥१॥

आहा ! राधाकुण्ड की कैसी बिचित्र शोभा है। जो कि मणिमय सोपान समूह से परिवेष्टित तथा मणिमय चारों घाट से सुशोभित था ॥२॥

घाटों में आँगन सहित चमचमाते रत्न खचित सुन्दर मण्डप खड़े हैं उनके दोनों ओर आठ मणिमय वेदिका शोभा को बढ़ा रही हैं ॥३॥

प्रत्येक मण्डप के पास वृक्ष लगे हुए हैं जिनकी डालियों में भिन्न भिन्न जाति के फूल खिले हुए हैं और प्रत्येक मण्डप में रंग विरंगे वस्त्रों द्वारा बने डोले झूल रहे हैं ॥४॥

(७

याम्मे चम्पकयोः पूर्व्वे नीपयोराम्रयोः परे।
सौम्ये बकुलयोर्व्वद्ध-रत्नहिन्दोलिकान्वितम् ॥५॥
पूर्व्वाग्नेय-दिशोर्मध्ये प्रिय-कुण्डेन सङ्गतम्।
तत्रोद्र्ध्वे स्तम्भकालम्बि-चित्रसेतु-समन्वितम् ॥६॥
गल-हृदुदर-नाभि-श्रोणि-जानूरुदघ्नैः
षडुदधि-वसुकोणैर्मण्डलाङ्कैश्च कैश्चित्।
शिशिरमनु समुष्णैः ग्रीष्मकाले सुशीतै-
र्विविध-मणि-निबद्धैर्दिक्षु सोपान-युक्तैः ॥७॥
मणिरुचि-जलवीचि-भ्रान्ति-तृष्णाभिभूता
पतित-विहगवृन्दाच्छालबालान्तरालैः।

दक्षिण-दिशा में दो वृक्षों चम्पा के, पूर्व-दिशा में दो वृक्ष कदम्ब के, उत्तर-में दो वृक्ष आम के और पश्चिम-दिशा में दो वृक्ष बकुल के शोभायमान हो रहे हैं। इनकी दो दो शाखाओं में हिण्डोले झूल रहे हैं ॥५॥

इस कुण्ड के पूर्व और आग्नेय कोण के बीच श्यामकुण्ड विराजमान है। इन दोनों के सङ्गम-स्थल पर दो ऊँचे ऊँचे खम्भों के सहारे एक अपूर्व सेतु परम शोभा पा रहा है। इसके नीचे जल बहता है ॥६॥

अनेकानेक वृक्ष-श्रेणी इन कुण्डों को चारों ओर से आच्छादित किये हुए बिराज रही है। यह एवं लताएं घने पल्लव और पुष्प भार से नीचे को झुके हुए हैं। उन सबकी मूल देश के पास बड़ी बड़ी वेदिकायें और श्रेष्ठ मणिमय कुटीर बनी हुई हैं। रत्नमय सोपानों के पास बनी ये कुटीर ग्रीष्म-काल में शीतल और शीत-काल में उष्ण रहती हैं। इनमें कोई

परिजन-युत-राधाकृष्णयोर्नर्म-गोष्ठी
प्रमदकृदुपवेशानल्पवेदी-सुशोभैः ।८।।
निचित-पृथुतलानां कुट्टिमैश्चित्रवर्णैः
कुसुमित वहुबल्ली-श्लिष्टशाखाभुजानाम् ।
वनदल-फलपुष्प-श्रेणिभारानतानां
विततिभिरभितः संवेष्टितं पादपानाम् ।।९।।सन्दानितकम्
चतुष्कोणेषु वासन्ती-चतुःशालाभिरावृतम् ।
वाणीर-केशराशोक-निकुञ्जैः परितो वृतम् ।।१०।।
तद्वहिर्यत् सखीवृन्द-बृहत्कुञ्जावलेर्वहिः ।
सत्फलैः कदलीषण्डैर्मण्डितं शीतलच्छदैः ।।११।।
तद्वहिर्वाह्योपवनाश्लिष्ट-पुष्पाटवी-वृतम् ।
स्वमध्य-सलिलादाव्यत् ससेतु-रत्नमन्दिरम् ।।१२।।

तो कण्ठ तक ऊँची, कोई छाती तक, कोई नाभी तक, कोई जानू तक और कोई ऊरू तक ऊँची हैं। कोई षट्कोण, कोई सप्त-कोण और कोई गोलाकार बनी है। इनकी ओर अकस्मात् दृष्टि पड़ने से ऐसा भ्रम हो जाता है कि ये जल में उठी तरंग हैं। तृष्णा से पीड़ित पक्षी जल-पान के लिये इनके आस पास उतरते रहते हैं ।।७—९।।

कुण्ड के चारों कोनों में चार माधवीलता की कुञ्ज विद्यमान है। फूलों की बहुत सी कुञ्ज, श्रेणी रूप से इसको चारों ओर घेरे हुए है ।।१०।।

बाहर दिशा में चारों तरफ केले के बृक्ष लगे हुए हैं जिन में असंख्य पके और कच्चे फल और फूल भरे हुए हैं ।।११।।

इसके चारों तरफ फलों के बन हैं जिनके अन्दर फूल-बन हैं। कुण्ड के बीच में जल के ऊपर एक दिव्य रत्नमय

७)

नानापुष्प-फलोच्चायि-बनदेवी-गणान्वितैः ।
सेवोपचार-संसक्त-कुञ्जदासी-शतावृतैः ॥१३॥
फलाराम-पुष्पबाटी-मध्यस्थैर्वृन्दयाचितैः ।
सेवोपकरणागार-निकरैरभितो बृतम् ॥१४॥युग्मकम्
ऋतुराजादि-सर्व्वर्त्तु-गुण-सेवित-काननम् ।
वृन्दा-संमृष्ट-गन्धाम्भः संसिक्ताध्वाङ्गनालयम् ॥१५॥
तथा तोरणकोल्लच-पताकालम्ब-गुच्छकैः ।
पौष्पैश्चित्रित-कुञ्जाध्व-दोला-चत्वर-मण्डपम् ॥१६॥
नवकमलदलाली-पल्लवावृन्तनाना-
कुसुमरचित-शय्योच्छीर्ष-चन्द्रोपधानैः ।

दिव्य-मन्दिर है ॥१२॥

राधाकुण्ड में श्रीकृष्णसेवा-योग्य सब प्रकार की सामग्री और असंख्य घर बने हुए हैं। जो कि फूल-फलों से युक्त बन और उपवनों से शोभा पा रहे हैं। पुष्प-वाटिकाओं के बीच बीच पुष्प चयन करने बाले बन-देवता सकड़ों कुञ्ज-दासियों सहित, जिनको श्रीबृन्दाजी ने सेवा के लिये नियुक्त कर रक्खा है, मिलकर पुष्प-माला आदि बना रहे हैं ॥१३-१४॥

उस बन में बसन्तादि छै ऋतुएं हर समय सेवा में लगी रहती हैं। श्रीबृन्दाजी उसको बुहारी आदि से परिष्कार कराती रहती हैं। पथ, आँगन और समस्त घर बाहर सुगन्धित जल से धुले रहते हैं। पुष्प रचित गुलदस्त, चन्दोये, ड्योढ़ी, पताकादि से कुञ्जमार्ग, चबूतरा, डोली, मण्डप आदि समस्त अपनी अपनी जगह शोभा पा रहे हैं ॥१५-१६॥

राधाकुण्ड में वह कुञ्ज-गृह नवीन नवीन कमल की पँखड़ियों और बिना डण्डी बाले-रंगविरंगे सुगन्धित फूलों से बनो

समधुचषक-ताम्बूलाम्बुपात्रादि-युक्तैः
सुबलित-तललीलागार-कुञ्जप्रपञ्चम् ॥१७॥
कह्लार-रक्तोत्पल-पुण्डरीक-पङ्केरुहेन्दीवर-कैरवाणाम्।
क्षरन्मरन्दैश्च पतत्परागैः सुवासिताम्भःप्रसरं समन्तात् ॥१८॥
हंस-सारस-दात्यूह-मद्गु-कोकादि-पत्रिणाम्।
बरटा-लक्ष्मणादीनां कलालापैः श्रुतिप्रियम् ॥१९॥
शारीशुकानामन्योन्य-पृथगासङ्ग-रङ्गिणाम्।
कृष्णलीला-रसोल्लासि-काव्यालाप-मनोहरम् ॥२०॥
जलदभ्रान्तिकृत्कृष्णकान्तिज-प्रणयोन्मदैः।
नदन्नृत्यच्छिखिव्रातैर्व्याप्तारामं-तटाजिरम् ॥२१॥

शैय्या से सुशोभित है। उसके सरहाने एक चद्राकार मनोहर तकिया लगा हुआ है। आस पास मधु सहित पान-पात्र, ताम्बूल-पात्र, जल-पात्र आदि बस्तुऐ सजा सजा कर स्थान स्थान पर विद्यमान हैं ॥१७॥

उपवन में खिले स्वेत-नील सूँदि, स्वेत-पद्म, नील-पद्म और साधारण पद्म-पुष्प समूह के मधु-विन्दु और पराग से स्वच्छ एवं सुवासित जल कल कल शब्द करता हुआ झरनों के समान प्रणालियों में से चारों ओर बहता है ॥१८॥

इधर कलहंस, हंसी, चक्रबाक, चक्रबाकी, सारस, सारसी, पानि कौड़ी, डाहूक, डाहूकी, पक्षियों के कलरव सुन शुक शारिका आदि पक्षि-गण लीला से विभोर होकर परस्पर राधा-कृष्ण विषयक वार्तालाप करने लगे हैं ॥१९-२०॥

मयूरगण श्रीकृष्ण का दर्शन से बादलों का भ्रम कर मधुर शब्द उच्चारण करते हुए कुञ्ज के आँगन में नृत्य करने लगे ॥२१॥

(७

हारीत-पारावत-चातकादिक-प्रहृष्ट-नानाविध-चित्र-पक्षिणाम् ।
कृष्णेक्षणानन्द-बिफुल्ल-वर्ष्मणां कर्णामृत-ध्वान-मनोज्ञ-काननम् ॥
राकेशार्बुद-निर्म्मञ्छय-राधेशास्येन्दुपायिभिः ।
चकोरैर्न्यक्कृतत्यक्त-चन्द्रैर्वृत-नभस्तलम ॥२३॥

बिपक्क-जालकापक्कफलैः कुसुम-पल्लवैः ।
मुकुलैर्मञ्जरीभिश्च नम्रैर्वल्लीद्रुमैर्वृतम ॥२४॥
अनेक-पद्माकरमध्य-संस्थितं हरेर्बिलासान्वित-तीर-नीरकम् ।
नानाब्ज-कान्त्युच्छलितं निरन्तरं गुणैर्जितक्षीर-समुद्रमद्भुतम् । २५

हारीत, कबूतर और चक्रवाक् आदि अन्य अन्य जाति के पक्षिगण श्रीकृष्ण का दर्शन कर हर्ष भरसे फूल उठे और मधुर-ध्वनि से कलरब गान करने लगे ॥२२॥

असंख्य पूर्णचन्द्र से अधिक सुन्दर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का सुधा-पान करने के निमित्त ही मानो चकोर पूर्णचन्द्र से सुशोभित गगनमण्डल को त्याग उस ओर गिर रही हैं ॥२३॥

श्रीकुण्ड के किनारे और उसका जल श्रीकृष्ण की विलास-क्रीड़ा के लिये अपूर्व शोभा धारण किये हैं जिसका कि वर्णन नहीं किया जा सकता। छोटी छोटी डालियों पर नवीन कोंपल और फल फूल लदे हुए हैं। वृक्ष-फल-फूल कलियाँ, मञ्जरी और लता आदि के भार से नीचे झुके हैं उनकी छाया से सरोवर के कूल-किनारे और जल शोभा पा रहे हैं। मध्यस्थल में उत्पन्न असंख्य कमल-फूलों के कारण सरोबर शुभ्रवर्ण हो गया है और पवन के वेग से उठी लहरों के देखने से हठात् यही अनुमान होता है कि कुण्ड क्षीर-सागर का उपहास कर रहा है।

इन दोनों श्लोकों का भावान्तर यह भी हो सकता है:-पद्मा

स्वसहकृतीरनीरेण कृष्ण-पादाब्जजन्मना।
निज-पार्श्वोपविष्टेनारिष्टकुण्डेन सङ्गतम् ॥२६॥ षड्विंशत्या कुलकम्
तीरे कुञ्जा यस्य भान्त्यष्टदिक्षु प्रेष्ठालीनां स्वस्व-नाम्ना प्रसिद्धाः।
ताभिः प्रेम्णा स्वीय-हस्तेन यत्नात् क्रीड़ातुष्ट्यै प्रेष्ठयोः संस्कृता ये॥
तत्तत्काष्ठा-प्रान्त-विच्छिन्न-सीमा-रामोद्यानावेशनांशान्विताश्च।
तत्तत्सीमाभ्यन्तरोत्पन्न-वृक्ष-श्रेणीयुग्माच्छन्न-वर्त्मालियुक्ताः ॥२८

का अर्थ है लक्ष्मी, लक्ष्मी का स्वरूप है सुन्दरता। कुण्ड का सौन्दर्य्य अपार है, वह, पद्मों की खान है अर्थात् उसमें असंख्य पद्म खिले हैं। सागर-मन्थन से केवल एक लक्ष्मी की उत्पत्ति ही हुई थी और समुद्र के एक ही स्थान-पर श्रीहरि की लीला हुई थी किन्तु श्रीकुण्ड के तो समस्त जल-स्थल पर श्रीकृष्ण की लीलायें निरन्तर होती रहती हैं इसलिये क्षीरसागर, श्री-राधाकुण्ड के आगे अति तुच्छ है ॥२४-२५॥

श्रीकृष्ण के कमल-चरणों से उत्पन्न श्यामकुण्ड से मिले हुए इस राधाकुण्ड उत्तर कोण से लेकर वायु-कोण तक फैली हुई आठ कुञ्ज ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पक-लता, रङ्गदेवी, सुदेवी और तुङ्गविद्या प्रियतम सखियों के अपने अपने के बने हुए हैं। इनमें श्रीराधा-कृष्णलीला विलासादि करते रहते हैं, इसी कारण यह सब सखियाँ स्वयं ही उनको साफ-सुथरा रखती हैं ॥२६-२७॥

सखियों के इन प्रत्येक-कुञ्ज की चारों दिशाओं में मनोहर परकोटा बना हुआ है, बीच पथ पर अनेक वृक्ष उत्पन्न हो जाने के कारण यह पथ उन वृक्षों की छाया से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥२८॥

उपरि तनु-तरङ्गाकार-चित्राच्छिशुद्ध-
स्फटिकमणि-चितान्यस्फार-वर्त्मानि तानि ।
मरकत-मणिवृन्दैराचिताभ्यन्तराणि
प्रतनु-लहरिकुल्या-भ्रान्तिमुत्पादयन्ति ॥२६॥
मणिचय-रचनाभिः स्वेषु भित्तिभ्रमं द्राक्
स्वनिकट-मणिभित्तौ चात्मबुद्धिं दधद्भिः ।
उपवन-युगमध्ये द्वार-वृन्दैर्यु तानि
प्रविशदितर-लोके दर्शनादेव भान्ति ॥३०॥ युग्मकम्
चकास्त्युदीच्यां दिशि तीर्थसन्निधावनङ्गरङ्गाम्बुज-नाम चत्वरम् ।
पद्माभ-कुञ्जाष्ट-दलैर्विराजितं सुहेम-रम्भावलि-केशरान्वितम् ॥३१
सहस्रपत्राम्बुज-सन्निभं स्फुरत् सुवर्ण-सत्कुट्टिम-मञ्जु-कर्णिकम् ।
लीलानुकूल्योचित-सन्ततोल्लस-द्विस्तीर्णता-लाघवमुन्नतप्रभम् ॥३२

कुञ्ज के जिन छोटे मार्गों का पहिले वर्णन किया गया है वह सब निर्मल सफेद पत्थर के बने हैं। अकस्मात् देखने से ऐसा लगता है जैसे नदी में मन्द मन्द तरङ्ग मालायें उठ रही हों ॥२६॥

उन कुञ्ज मार्गों के ऊपर नाना मणियों से जो कारीगरी का काम किया हुआ है देखने से मालूम होता है कि यह कृत्रिम(बनावटी) सरोबर है, जो प्राचीर उन वन और उपवनों को घेरे हुए हैं उनके द्वार तो भित्ति जैसे प्रतीत होते हैं और भित्ति द्वार जैसे दीखते हैं ॥३०॥

श्रीराधाकुण्ड के उत्तर-दिशा के घाट के किनारे अष्टदल पद्म के आकार की आठ कुञ्ज बिराजमान हैं इन सब में 'श्री-ललितानन्दद" कुञ्ज बड़ी है। इस कुञ्ज के ठीक बीचोबीच एक अनंगरंगाम्बुज नाम का चबूतरा है। यह हजार दल वाले

ललिता-शिष्यया नित्यं कलावत्या सुसंस्कृतम् ।
सर्व्वर्त्तु-सुख-सम्पन्नं नानाकेलि-रसाकरम् ॥३३॥
ललितानन्ददं राधाकृष्णयोः सवयस्ययोः ।
निकुञ्ज-राजयोः पट्ट-मन्दिरं स्फुरदिन्दिरम् ॥३४॥ चतुर्भिः कुलकम्
माणिक्य-केशर-श्रेणी-वेष्टितं स्वर्णकर्णिकम् ।
बहिर्बहिः क्रमाद्वर्द्धमानसंख्या-प्रमाणकैः ॥३५॥
एकैकवर्ण-सद्रत्न-कदम्बेनाचितैः पृथक् ।
रचितं बहुभिश्चारु समपत्राणि-मण्डपैः ॥३६॥

पद्म के आकार का है और इसके चारों ओर गोलाकार प्राचीर बनी है, उसके आगे केले के वृक्षों की श्रेणियाँ है। इसके बाहर की ओर अष्टदल कमल के आकार की मनोहर आठ बड़ी कुञ्ज हैं। यह मानो उस मूल कमल (चबूतरे) की पङ्खड़ियाँ है अर्थात् केश-माला है और आठों कुञ्ज मानो इसकी कर्णिका है। यह कुञ्ज, लीलाओं की अनुयायी हैं अर्थात् आवश्यकतानुसार छोटी बड़ी हो जाती हैं। श्रीललिता ने अपनी शिष्या कलावती को इनकी देखभाल के लिये नियुक्त कर रक्खा है। इनमें सब ऋतुऐं निरन्तर विराजमान रहती हैं। यह ललितानन्दद कुञ्ज समस्त लीलाओं की खान स्वरूप है। लीला सम्बन्धी सब द्रव्य और सखियाँ इस कुञ्ज में हर समय विद्यमान रहती हैं। यही श्रीराधाकृष्ण का 'पट्टमन्दिर' नाम से विख्यात, सब कुञ्जों के राजा रूप एवं अत्यन्त शोभायमान है ॥३१-३४॥

ऊपर कहा हुआ 'ललितानन्दद' नाम का कुञ्ज भी पूर्णतया एक कमल जैसे आकार का ही है। उसकी केशर (बीच की चक्राकार स्थल) मणियों की बनी है और केशर के चारों

पञ्चेन्द्रियाह्लादकरैः शैत्याद्यब्ज-गुणैर्युतम् ।
तद्वहिः क्रमशस्स्वर्णैर्वैदुर्य्यैरिन्द्रनीलकैः ॥३७॥
स्फटिकैः पद्मरागैश्च चितैर्मण्डप-पञ्चकैः ।
शोभितं मण्डपेष्वन्तर्नानारत्न-विनिर्म्मितैः ॥३८।
केवलैर्मिथुनीभाव-सङ्गतैर्मृगपक्षिभिः ।
देवैर्नृभिर्युतं चान्यैश्चित्रितैरसदीपनैः ॥३६॥
पञ्चवर्ण-भूरिचित्र-पत्र-पुष्प-विस्फुरत्
केशरादि-शाखि-शाखिकालि-सद्वितानकम् ।
अन्तरस्य भाति जानुदघ्न-रत्न-कुट्टिमा-
गार-मध्य-कर्णिका-सहस्रपत्र-सारसम् ॥४०॥ षड्भिः कुलकम्

तरफ की कर्णिकायें सुवर्ण की बनी हैं। सब पत्तियाँ एक एक प्रकार के रत्नद्वारा बनाई गई है। कर्णिका के बाहर की केशर और केशर के बाहर की पत्तियाँ परिमिति और संख्या में यथा क्रम बढ़ती रहती हैं ॥३५-३६॥

पद्म के समान शीतलता आदि गुणों से युक्त पाँचों इन्द्रियों को सुख देने वाले उस मन्दिर के बाहिर स्वर्ण, नीलकान्त-मणि, पद्मरागमणि, स्फटिकमणि और नीलमणि के पाँच-मण्डप निर्माण किये हुए हैं। वे अपूर्व शोभा को बढ़ा रहे हैं। मण्डपों के बीच नाना भाँति मणियों द्वारा प्रस्तुत चित्रकारी की हुई है। जो मृग, पक्षि, देवता, मनुष्य और अन्य अन्य विचित्र प्राणियों की मिथुनीभावापन्न प्रतिमूर्ति से सुशोभित है। जिनके देखने से वे किसी ऐसे रस का प्रदर्शन करते हैं जो वाणि-द्वारा नहीं बतलाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सफेद, लाल, पीले, हरे और काले रंग के पत्र पुष्प वृक्ष और चन्दोये परम शोभा

आमूल-पुष्पिताशोक-वल्लीमण्डप-सञ्चयैः।
सितारुण-हरित्-पीत-श्याम-पुष्पैः प्रफुल्लितैः ॥४१॥
पद्मपुष्प-दलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतम्।
प्रवीण-तादृशाशोकतरुकुञ्जवराटकम् ॥४२॥
बसन्तसुखदं यस्य भृङ्ग-कोकिल-नादितम्।
वायव्यां दिशि भात्यष्टदल-कुञ्जाम्बुजं दलम् ॥४३॥ सन्दानितकम्
श्रीपद्ममन्दिरं नाम नैर्ऋत्यां राजते दलम्।
चतुर्द्वारं चतुःपार्श्वे वातायन-समन्वितम् ॥४४॥

को बढ़ा रहे हैं। इन मण्डपों के मध्य में हजारदल-कमल के आकार के जानु तक ऊँचे रत्नजटित कुटीर कर्णिका की भाँति शोभा धारण किये हुए हैं ॥३७-४०॥

इस 'अनंगरंगाम्बुज' चबूतरा के जिन आठ दलो (पङ्खड़ियों) का पहिले वर्णन हो चुका है वह इस प्रकार हैः-जड़ से लेकर अग्रभाग तक फूलों से लदे अशोकवृक्ष और लतायें हैं जिनमें सफेद, लाल, हरे, पीले और काले फूल खिले हुए हैं, आठ उपकुञ्ज बनी है जो 'वसन्तसुख' नामक आठ दल कमल के आकार की है। दूसरी-कुञ्ज ललितानन्दद कुञ्ज के वायु कोण में विराजमान है। फूलों से लदे अशोक मानो इन कुञ्जों के बीजकोष तुल्य है। कोकिल और भ्रमर-गण निरन्तर इन कुञ्जों में मधुर नाद करते रहते हैं ॥४१-४३॥

श्रीललिताकुञ्ज के नैर्ऋत्यकोण में 'श्रीपद्ममन्दिर' नाम की एक अन्य कुञ्ज है। इसके चारों तरफ चारों सुन्दर फाटक और बहुतसी खिड़कियाँ बनी हैं। इस मन्दिर में नाना प्रकार की मणियों का पच्चीकारी काम हो रहा है। भीतर की दीवारों पर श्रीललिता ने श्रीकृष्ण की समस्त विलासलीलाएँ जो उन्होंने

नानामणि-चितानेक-चित्रभित्ति-चतुष्टयम् ।
अन्तः सकृष्णगोपीनां पूर्व्वरागादि-चेष्टितैः ॥४५॥
रासकुञ्ज-विलासैश्च ललिता-चित्रितैर्युतम् ।
पूतनारिष्ट-संहाराद्यन्त-तच्चरितैर्वहिः ॥४६॥
रत्नालि-द्युति-किञ्जल्कं सद्गर्भागार-कर्णिकम् ।
वहिरब्जदलाकारैर्वृतं षोडश-कोष्ठकैः ॥४७॥
तत्तद्युगान्तरालस्थैश्च षष्ठोपकोष्ठकैरपि ।
उर्द्ध्वं तादृक्सन्निवेश-स्फुरदट्टालिकान्वितम् ॥४८॥
अन्तरन्तः क्रमादुच्च-निर्भित्ति-स्तम्भ-पंक्तिषु ।
स्फाटिकीषु सुविन्यस्त-प्रबाल-वलभी-कुलैः ॥४९॥
छादितेन महारत्न-पटलैस्तिरश्च्यगूर्द्ध्वगैः ।
भ्राजितेन सुकुम्भेन शिखरेण विराजितम् ॥५०॥

समय समय पर गोपियों के साथ की हैं चित्ररूप में दिखाई हैं। भित्ती की बाहर की दीबारों पर पूतनावध से लेकर अरिष्ट वध तक के श्रीकृष्ण के विचित्र कार्य्य अंकित किये हुए हैं ॥४४-४६॥

मन्दिर के बीच का भाग कमलफूल के बीज-कोष के समान गोलाकार है। इसकी बाहर की दीवारों के नीचे का भाग नाना भाँति के रत्नों से जड़ा हुआ है और आकृति में कमल-केशर के समान है। इसके बाहर कमलपत्र के आकार की १६ कोठरियाँ मण्डलाकार बनी हैं और प्रत्येक दो कोठरियों बीच किनारे वाले रिक्त स्थान में १६ उप कोठरियाँ बनी हैं। मन्दिर का दोतला भी ठीक ऐसा ही बना हुआ है ॥४७-४८॥

दोतला की इन कोठरियों के बाहर पत्थर के टोड़ों पर छज्जा बना है जो रत्न-जड़ित पटाव से ढालू पटा हुआ है।

अत्युच्चेन वनालोक-सुखदेन निजेशयोः ।
मुक्त-पार्श्व-तृतीयोच्चखण्डेन च सुमण्डितम् ॥५१॥
अधोरत्ना-चितानेक-चित्र-चित्रेण भास्वता ।
उपकुट्टिम-युग्मान्तर्दिक्षु सोपान-शोभिना ॥५२॥
कण्ठदघ्नातिविस्तीर्ण-कुट्टिमेनाभितो वृतम् ।
परितस्तावदुच्चानां प्रान्तोत्पन्न-महीरुहाम् ॥५३॥
फलैः पुष्पैश्च संश्लिष्ट कुट्टिम-प्रान्तदेशकम् ।
केलिरत्नाकरं राधाकृष्णयोः सवयस्ययोः ॥५४॥

एकादशभिः कुलकम्

छज्जे के खम्बों पर सोने के कलस शोभा पा रहे हैं। वाहर की ओर टेढ़ी सीधी महराव हैं ॥४९-५०॥

इस मन्दिर की तीसरी मञ्जिल (त्रितला) सब ओर से खुली हुई है। इसके चारों तरफ रत्न जड़ित खम्वे हैं जिनके ऊपर एक अटारी बनी है। इसी पर बैठ कर श्रीराधाकृष्ण बन शोभ का दर्शन किया करते हैं ॥५१॥

इस पद्ममन्दिर की सब से नीची मञ्जिल के बरामदे मणियों से जड़े और नाना प्रकार की चित्र-कलाओं से परिपूर्ण हैं। बरामदों के आस पास चढ़ने उतरने के लिये सीड़ियाँ बनी हुई हैं जिनके दोनों ओर कण्ठ तक ऊँची चौकिया बनी हैं जो वैठने के प्रयोग में आती हैं ॥५२॥

सोपानों के चारों ओर कण्ठ तक ऊँचा एक अन्य चबूतरा है जिसके आगे कुछ दूर पर वृक्षों की कतार खड़ी है। यह वृक्ष भी गले से अधिक ऊँचे नहीं हैं ॥५३॥

फल, फूल और वेदिकाओं के कारण ही शोभायमान इस

आग्नेय्यां भाति पद्माभ-रत्नहिन्दोल-कुट्टिमम् ।
पूर्वापर-दिगुत्पन्न-प्रवीण-बकुलागयोः ॥५५॥
साचि किञ्चिद्विनिर्गत्य गत्या वक्रोर्द्ध्वयोपरि ।
मिलिताभ्यां सुशाखाभ्यां छादितं मण्डपाकृति ॥५६॥ युग्मकम्
तच्छाखामूल-संनद्धैः पट्टरज्जु-चतुष्टयैः ।
दृढैर्वद्ध-चतुष्कोणं नाभिमात्रोच्च-संस्थिति ॥५७॥
पद्मरागाष्ट-पट्टिभिः प्रबालज-पद्माष्टकैः ।
घटितं हस्तमात्रोच्च-पट्टीवेष्टन-केशरम् ॥५८॥

मन्दिर का नाम केलिरत्नाकर है। श्रीराधाकृष्ण सखियों सहित इसमें विहार करते हैं ॥५४॥

अनंगरंगाम्वुज चवूतरे के अग्निकोण में एक हिण्डोला बना है। उसके चमूतरे का आकार आठदल-वाले कमल के समान है। इसके पूर्व-पश्चिम की दिशा में दो ऊँचे बकुल-बृक्ष लगे हैं जिनकी दो शाखायें एक दूसरे में इस प्रकार मिल गई है मानो हिण्डोले का महराव दार चन्दोया शोभायमान है ॥५५-५६॥

उन दोनों शाखाओं में चार मजवूत रस्सियों से वन्धा हुआ एक सुन्दर डोला झूल रहा है जो पृथिवी से नाभी तक ऊँचा है ॥५७॥

इस हिण्डोले में पद्मरागमणि की वनी आठ पट्टियाँ लगी हुई है। चारों ओर मूँगे के वने हुए आठ कमल के फूल लगे हैं। यह एक हाथ परिमाण ऊँचे हैं सवसे ऊपर की पट्टियाँ उन फूलों की केशर के समान लगती हैं ॥५८॥

इन पट्टियों के ऊपर रत्न जड़े हुए हैं उनके बीच बीच

द्व्यष्टपत्राम्बुजाकार-रत्नालि-चित्रकर्णिकम् ।
द्विद्वि-पादान्विताम्भोज-दलाभाष्ट-दलैर्वृतम् ॥५६॥
रत्नपट्टीकेशरान्तर्द्वाराष्टक-सुसंयुतम् ।
दक्षिणे दल-पार्श्वस्थारोहद्वार-द्वयान्वितम् ॥६०॥
लघुस्तम्भद्वयासक्त-पट्टपृष्ठावलम्बकम् ।
पट्टतूली-लसन्मध्यं पार्श्व-पृष्ठोपधानकम् ॥६१॥
नानाचित्रांशुकैश्छन्नं स्वर्णसूत्राम्बरैरपि ।
लसच्चन्द्रावली-मुक्तादाम गुच्छ-वितानकम् ॥६२॥
यत्राष्टदलगालीनां मध्यगौ राधिकाच्युतौ ।
गायदन्यवयस्याभिर्वृन्दा दोलयतीश्वरौ ॥६३॥

में १६ दल के पद्म के आकार की रत्न-श्रेणी बनी है, वही मानो इसकी कर्णिका के समान है। प्रत्येक दो पट्टियों के जोड़ के नीचे कमल दल के आकार के आठ पाये बने है ॥५६॥

रत्न-जड़ित पट्टियों के बीच आठ दरवाजे हैं। हिण्डोल की दक्षिण वाली पट्टी में दो द्वार बैठने उतर ने के लिये बने हैं।

इस हिण्डोले में श्रीराधाकृष्ण के बैठने की वेदिका के पीछे दो दण्डों के सहारे सटी एक पट्टी लगी हुई है जो उनकी कमर के अवलम्बन का काम देती है। हिण्डोले के अन्दर बैठने की जगह के आस पास और पीछे रेशमी तोषक-तकिये लगे हुये हैं। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के चित्र-विचित्र रेशमी वस्त्र और सोने के तार के वने चन्द्र और मुक्ता मालायें ऊपर चँदोये में लगे शोभा पा रहे हैं ॥६१-६२॥

जो भी हो-श्रीवृन्दादेवी उस कमल रूप हिन्दोले को, जिसके चारों ओर आठ कमल-दल के समान अष्ट-सखियाँ खड़ी हैं

स्वारूढ-राधाच्युतयोः सर्व्वाभिमुखताकरम् ।
हिन्दोलाम्बुजमाभाति मदनान्दोलनाभिधम् ॥६४॥

अष्टभिः कुलकम्

ऐशान्यां भात्यष्टपत्रं माधवीकुञ्ज-सारसम् ।
माधवानन्ददं नाम नानालीलोपहारयुक् ॥६५॥
फुल्लमल्लीभिराश्लिष्ट-नम्रशाखाभुजव्रजैः ।
छादितं फुल्ल-पुन्नागैश्चन्द्रकान्ति-चितान्तरम् ॥६६॥
पद्मपत्राकार-कुञ्जैर्वेष्टितं स्वर्णकर्णिकम् ।
उदीच्यां मणिकिञ्जल्कं भाति कुञ्जं सिताम्बुजम् ॥६७॥ युग्मकम्

हला डुला रही हैं तथा अन्य सखियाँ नीचे खड़ी गान कर रही हैं ॥६३॥

यहाँ एक और विचित्र घटना दिखाई देती है। वह यह कि जब श्रीराधाकृष्ण उस डोले में विराजते हैं तब सबको ऐसा दिखाई देने लगता है कि श्रीराधा-कृष्ण का मुख प्रत्येक के सामने ही है ॥६४॥

ललितानन्दद-कुञ्ज के ईशान कोने में एक और माधवी कुञ्ज है। इसको माधवानन्दद कुञ्ज कहते हैं। इसकी बनावट आठदल वाले कमल की है। लीला के काम में आने वाली सब सामग्री इसमें हर समय मौजूद रहती हैं ॥६५॥

ललितानन्दद कुञ्ज की उत्तर-दिशा में एक अद्भुत कुञ्ज 'सिताम्बुज' नाम से विख्यात है। इसकी सुन्दरता बहुत अधिक है। इसके चारों ओर नागकेसर और मल्लिका के फूल खिले हुए हैं वृक्षों की शाखायें इस कुञ्ज के ऊपर फैली हुई हैं इसकी कर्णिका सुवर्ण के समान चमक रही है। फूलों के ऊपर जो पराग जमा हुआ है वह मणियों की भाँति जग-

नम्रशाखाभुजाश्लिष्ट-फुल्लहेमलताचयैः ।
तमालैः कल्पितं जिष्णुनीलरत्नावलीचितम् ॥६८॥
नीलपद्मदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतम् ।
सुवर्णकर्णिकं प्राच्यां भाति कुञ्जासिताम्बुजम् ॥६९॥ युग्मकम्
अवाच्यां पद्मरागादि-चितान्तर्वाह्य-मण्डलम् ।
लवङ्गैश्छादितं फुल्लैर्भाति कुञ्जारुणाम्बुजम् ॥७०॥
कुञ्जं हेमाम्बुजं भाति प्रतीच्यां फुल्ल-चम्पकैः ।
बल्लीभिश्छादितं हेम-चित-बाह्यान्तरालकम् ॥७१॥

मगा रहा है ॥६६–६७॥

इस ललितानन्दद कुञ्ज की पश्चिम-दिशा में पहिली कुञ्ज की तरह एक और कुञ्ज बिराजमान है। इसको 'असिताम्वुजकुञ्ज' कहते हैं। यह नीले पद्म की आकृति की बनी है। बृक्षों की शाखायें इसके ऊपर झुकी हुई हैं मानो इसको आलिंगन कर रही हैं, चारों ओर फूलों से लदी लताओं से घिरी हुई है। तमाल आदि सब बृक्ष भली प्रकार नीलबर्ण रत्नों से सजे सजाये हैं। इस कुञ्ज के चारों ओर आठदल कमल के आकार की आठ उप-कुञ्ज बनी हैं। इसकी कर्णिका सोने की बनी हुई है॥६८—६९॥

ललिताकुञ्ज के दक्षिण दिशा में 'अरुणाम्बुज' नाम की एक और कुञ्ज शोभा पा रही है। इसके भीतर और बाहर का मण्डल पद्मराग आदि मणियों का बना हुआ है फूलों से भरी लवंग लतायें उसको घेरे हुए हैं ॥७०॥

दूसरी एक और कुञ्ज हेमाम्बुज नाम की इस ललितानन्दद कुञ्ज के पश्चिम दिशा में बिराजमान है। उसके चारों ओर चम्पक-बृक्ष और हेम चम्पक लतायें फैली हुई हैं। इसके

७)

एवमुत्तरादि-कुञ्जा भान्ति राधा-हरिप्रियाः।
नानावर्णाकार-भेदात् दृशां विस्मयकारिणः ॥७२॥
प्रतिविदिशमुदञ्चच्चम्पकानाञ्चतुर्णां-
मरुण-हरित-पीत-श्याम-पुष्पोच्चयानाम्।
वर-परिमल-धाराक्षिप्त-गन्धान्तराणां
प्रतिदिशमधिरोहन् माधवी-वेष्टितानाम् ॥७३॥
व्यतिसुमिलित-तिर्यग्-ङ्ग-निर्गतैः कैश्चिदन्यै-
रुपविघटित-सङ्गैः स्निग्धशाखा-समूहैः।
शुक-पिक-मधुपानां नील-पीतारुणानां
मधुर-निनद-रम्यैश्छादितः सौधतुल्यः ॥७४॥ युग्मकम्

भीतर और बाहर का भाग सुवर्ण का बना हुआ है ॥७१॥

इसी प्रकार ललितानन्दद कुञ्ज के उत्तर आदि आठो दिशाओं में श्रीराधाकृष्ण की प्रिय सब से उत्तम कुञ्ज नाना भाँति के आकार की बनी है जो दर्शकों के आनन्द और विस्मय को बढ़ाती हैं।७२॥

इस कुञ्ज के ईशानकोण में एक और विख्यात कुञ्ज श्री-विशाखाजी की है। इसको मदनसुखदकुञ्ज कहते हैं। इसके चारों ओर चार चम्पक बृक्ष लगे हुए हैं। इन बृक्षों में प्रफुल्लित नीले, लाल, हरे, पीले फूलों की विचित्र सुगन्ध अन्य गन्धों का तिरस्कार कर बहती है। नीले, पीले और हरे रंग के शुक, सारिका आदि और भ्रमर, व्याकुल-अवस्था में इधर उधर मधुर गान करते रहते हैं। चम्पक-बृक्ष और मालतीलतायें इसको चारों ओर से घेरे हुए हैं। देखने से यह कुञ्ज राज-भवन जैसे प्रतीत होती है ।.७३-७४॥

स्थल-जल-जनिपुष्पैः पल्लवैः क्ल्प्तनाना-
भरण-बसन-शय्या-सद्वितानादि-पूर्णः ।
अरुण-विशद-पीत-श्याम-पद्मोत्पलाद्यै-
र्दिशि विदिशि सनालैः कल्पितानेकचित्रः ॥७५॥
जठर-शर-शलाकैः पल्लवैश्चित्रपुष्पै-
र्घटित-मृदुकवाटी-प्रावृतद्वाश्चतुष्कः ।
मदकल-चलभृङ्गाऽनीकिनी-द्वारपालो
मणिचय-चितभूमि-द्व्यष्टपत्राब्ज-मध्यः ॥७६॥
बहिरपि तत-शाखाच्छादिताभिः समन्ता-
न्नतसृभिरतिभाभिर्वेष्टितो देहलीभिः ।
अनिशमिह विशाखा-शिष्यया मञ्जुमुख्या
रचन निपुणमत्या संस्कृतोऽध्यक्षयास्य ॥७७॥

इस कुञ्ज के बीच में पृथिवी पर उगने वाले फूल, जल में उत्पन्न होने वाले फूल, पल्लव, आभूषण' वस्त्र, शैय्या, चँदोये एवं लाल, सफेद, पीले, काले फूल और मृणाल सहित लाल, सफेद, पीले, नीले पद्म–उत्पल समूह जगह जगह शोभा पा रहे हैं ॥७५॥

इस कुञ्ज के चारों तरफ चार छोटे छोटे फाटक लगे हैं। जो सुन्दर जंगले दार हैं। उन पर विचित्र फूल बूटे बने हैं। जिसमें शलाकायें लगी हैं, उनका ऊपरी भाग तीर जैसा बना है। मद–लोभी भ्रमरगण द्वारपाल के समान उनके इधर उधर घुम रहे हैं। कुञ्ज के बीच की भूमि मणियों की बनी है और १६ दल कमल फूल के समान शोभा पा रही है ॥७६॥

बाहर की ओर इस कुञ्ज को चारों ओर से वृक्षों की शाखायें घेरे हुये हैं। चारों ओर की दीवार बड़ी मनोरम और कान्तिमय बनी हुई हैं श्री विशाखाजी की शिष्या मन्जु-

शिव-हरिति तटस्थोऽप्येष राधा-वकारे-
विहरण-रसवन्या-प्लावितात्मा समन्तात्।
मदन-सुखदनामा लोचनानन्दधामा
बिलसति स विशाखानन्ददः कुञ्जराजः ॥७८॥बहुभिः कुलकम
विचित्र-वृक्ष-वल्लीभिश्चित्ररत्नैश्चितान्तरः।
चित्रवर्णैः खगैर्भृङ्गैः कुट्टिमैः प्राङ्गणैर्वृतः ॥७९॥
चित्र-मण्डप-संयुक्तश्चित्र-हिन्दोलिकान्वितः।
प्राच्यां चित्रानन्ददाख्यश्चित्रकुञ्जो विराजते ॥८०॥ युग्मकम
स्फटिकैरिन्दुकान्तैश्च चित-कुट्टिम-चत्वरः।
चित्रितः पुण्डरीकैश्च कैरवैर्मल्लिकादिभिः ॥८१॥

मुखी इसकी देखभाल के लिये नियुक्त है। इसमें जो चित्र-कला वनी है उसकी रक्षा करती हैं। प्रेमरस से परिपूर्ण यह कुञ्ज श्रीराधाकुण्ड के किनारे ही बनी है। श्रीराधा कृष्ण के लीलारस इसमें निरन्तर बहता रहता है ॥७७-७८॥

श्रीराधाकुण्ड की पूर्व दिशा में 'चित्रानन्दद' नाम की एक और कुञ्ज है। यह अति विचित्र ढंग से बनी हुई है। इसमें नाना जाति के और नाना आकार के रंग विरंगे वृक्ष और लतायें स्थान स्थान पर शोभायमान हैं। जहाँ भिन्न जाति के पक्षी और मृग आनन्द से विचरते हैं। दर, दालान, आँगन, मण्डप और चन्दोये मणियों द्वारा विचित्र कला से बने हैं जगह, जगह हिन्दोले झूल रहे हैं ॥७९-८०॥

श्रीराधाकुण्ड के आग्नेय-कोण में श्रीइन्दुलेखा जी का कुञ्ज विराजमान है। इस को पूर्णेन्दुकुञ्ज कहते हैं, इस के बराण्डे और आँगन सफेद-पत्थर और चन्द्रकान्त मणि के

शुभ्रपुष्प-दलैवृ क्षैर्वल्लीभिश्च समन्वितः ।
शुभ्रालि-पिक-कीराद्यैः शब्दज्ञेयैर्निनादितः । ८२॥
शुभ्रवेशौ तु राकायां राधाकृष्णौ सहालिभिः ।
क्रीड़न्तावपि नेक्ष्येते कैश्चिद्‌यत्रागतैरपि ॥८३॥
पूर्णेन्दुनामा कुञ्जोऽयमिन्दुलेखा-सुखप्रदः ।
सुशुभ्र-केलितल्पादिराग्नेय्यां दिशि राजते ॥८४॥चतुर्भिः कुलकम्
हेमवल्लीवृतैर्हेम-पुष्पागैश्छादितोऽभितः ।
हेमपद्मावली-चित्रो हेम-प्राङ्गण-कुट्टिमः ॥८५॥

बने हैं, जिनमें सफेद कमल, कुमुद और मल्लिका के फूल चित्रित किये हुये हैं । इसके अतिरिक्त इस कुञ्ज में जितने वृक्ष, लतायें, फल और पत्र हैं सब सफेद ही हैं। जितने पक्षि–कोकिल, शुक, भ्रमर इत्यादि हैं वे भी सब सफेद ही हैं। देखने से उनकी जाति का पता नहीं लगता है। केवल बोली सुन कर ही जान पड़ता है कि यह कौन पक्षि है। यह सब इस कुञ्ज में निरन्तर बिचरते रहते हैं। इस कुञ्ज की विचित्रता यह है कि पूर्णमासी के दिन जब राधा–कृष्ण सब सखियों सहित शुभ्र वस्त्र धारण कर इस कुञ्ज में प्रवेश करते हैं उस समय यदि कोई अकस्मात् वहाँ आजाता है तो उनको श्रीराधा–कृष्ण आदि कोई भी दिखाई नहीं देता है ॥८१–८२–८३–८४॥

राधाकुण्ड के दक्षिण–दिशा में श्रीचम्पकलता की हेम कुञ्ज है । जिस प्रकार पूर्णेन्दुकुञ्ज सब प्रकार से शुभ्रवर्ण है ठीक उसी प्रकार यह स्वर्णवर्ण है । श्रीराधिका वहाँ आती हैं तो अपने समस्त श्रीअङ्ग पर लील- वशात: पीला अनुलेपन लगा कर और पीले ही आभूषण और पीला वस्त्र धारण कर आती

हेम-मण्डपिकायुक्तो हेम-हिन्दोलिकान्वितः ।
हेमाभालि-खगैर्युक्तो हेमलीला-परिच्छदः ॥८६॥
लीलया पीतवसना पीतालेप-विभूषणा ।
यत्र प्रविष्टा श्रीराधा कृष्णेनापि न लक्ष्यते ॥८७॥
गौराङ्गा वेशधृक् कृष्णः स्वप्रेयस्याः सहालिभिः ।
शृणोति प्रेम-संलापं यत्रैताभिरलक्षितः ॥८८॥
कदाचित् पद्मया यत्र प्रेरिता जटिलागता ।
ददर्श कृष्णं नो राधां तेनैकासनगामपि ॥८९॥
स्ववर्णकृत स्वस्थितानां भाति काञ्चन-भूरिव ।
दक्षिणे चम्पकलतानन्दो हेम-कुञ्जकः ॥९०॥षड्भिः कुलकम
यत्र चम्पकवल्ल्याः सा निकुञ्ज-पाकशालिका ।
आस्ते तद्दीशयोश्चित्रजग्धिवेदिकयान्विता ॥९१॥

है। उस समय श्रीकृष्ण भी उनको नहीं देख पाते हैं। श्रीकृष्ण गौराङ्ग-वेष धारण कर वहाँ छिप कर आते हैं और श्रीराधिका और उनकी सखियों के बीच हुई मधुर प्रेमवार्त्ता श्रवण करते हैं, उस समय कोई भी उनको देख नहीं पाता है। एक दिन की आश्चर्य घटना है कि श्रीराधा-कृष्ण को एक आसन पर बिराजमान देख पद्मासखी जटिला को वहाँ लिवा लाई किन्तु आकर देखती है कि राधा-कृष्ण का कहीं पता ही नहीं है ॥८५-८६-८७-८८-८९-९०॥

इस कुञ्ज में श्रीचम्पकलता ने एक अनुपम रसोई घर बनवा रक्खा है। यहाँ एक मणिमय वेदिका बनी है जहाँ बैठ कर श्रीराधा-कृष्ण भोजन करते हैं। श्रीचम्पक-लता समय २ पर श्रीराधा-कृष्ण के सह भोजन का आयोजन

यस्यां पाकक्रियाचार्य्या सवृन्दा सा निजेशयोः।
सम्पादयति संमोदात् कदाचित् कुञ्जभोजनम् ॥६२॥
तमालैः श्यामवल्लीभिः श्लिष्टशाखैर्वृतान्तरम्।
इन्द्रनील-चिताभ्यन्तभूमि-कुट्टिम-चत्वरः ॥६३॥
राधया युगलीभावं गतोऽपि मुखरादिभिः।
नेक्ष्यते हरिरेकैव राधिका यत्र दृश्यते ॥६४॥
राजते दिशि नैरृत्यां रङ्गदेवी-सुखप्रदः।
सर्व्व-श्यामः श्याम-कुञ्जो राधिका-रतिवर्द्धनः ॥६५॥
रक्तवल्लीवृतो रक्तपुष्पपत्रैर्द्रुमैर्वृतः ।
शोणरत्न-चिताभ्यन्तः कुट्टिमाङ्गन-मण्डपः ॥६६॥
रक्तहिन्दोलिका-युक्तः कृष्णोष्ठः सर्व्व-लोहितः।
तुङ्गविद्यानन्ददोऽस्ति पश्चिमेऽरुण-कुञ्जकः ॥६७॥ युग्मकम्

करती हैं और पाक-विद्या में निपुणा श्रीवृन्दादेवी की सहायता से भोजन प्रस्तुत करती हैं ॥६१-६२

श्रीराधाकुण्ड के नैरृत् कोण में श्रीरङ्गदेवी की मनोहर कुञ्ज है। यह कुञ्ज श्रीराधा को अति प्रिय है। इस के भीतर के बराण्डे, चबूतरे आदि समस्त मणिमय हैं। चारों ओर श्याम-लतायें और तमाल-बृक्षों की शाखायें इसको घेरे हुये हैं। इस कुञ्ज में समस्त वस्तु गाढ़-श्याम वर्ण है। यदि किसी समय मुखरा आदि कोई आ भी जाये तो श्रीराधा-कृष्ण को युगल भाव में देख नहीं पाती है, केवल राधाजी ही दिखाई देती हैं॥ ६३-६४-६५॥

श्रीतुङ्गविद्या का कुञ्ज अरुणाकुञ्ज के नाम से विख्यात है। जो श्रीराधाकुण्ड के पश्चिम में विद्यमान है। इसकी लतायें

हरिद्वल्ली-वृक्ष-चित्रो हरित्पक्ष्यलि-संयुतः ।
हरिन्मणि-चिताभ्यन्तर्वाह्य-कुट्टिम-चत्वरः ॥६८॥
वायव्यां सर्व्वहरितो राधाकृष्णाद्य-केलिभूः ।
सुदेवी-सुखदाभिख्यो हरित्-कुञ्जो विराजते ॥६६॥ युग्मकम्
उपरि लहरीतुल्याकार-चित्रैः स्फुरद्भि-
र्मरकत-चयगर्भैः पुष्परागेन्दुकान्तैः ।
घटितमितरलोके तोयवद्भासमानं
मणिमय-कुमुदाम्भोजालि-हंसादियुक्तम् ॥१००॥

वृक्ष, पुष्प, वराण्डे, मण्डप, हिन्दोले और आँगन आदि सब के सब लाल-वर्ण के ही हैं जिनकी अनुपम शोभा है ॥६६-६७

श्रीराधाकुण्ड के वायु-कोण में श्रीसुदेवी का हरित्कुञ्ज है । श्रीराधा-कृष्ण इसमें सार-फाँसे खेला करते हैं । इसकी लतायें वृक्ष और पक्षि सब हरे रङ्ग के हैं । इस के अन्दर की सब वस्तुएं, चबूतरे और बराण्डे आदि समस्त हरि-मणियों द्वारा बने हुये शोभायमान हैं ॥६८-६६

राधाकुण्ड के बीच जल के ऊपर श्रीराधा की छोटी बहन लीलासहायिनी अनङ्गमञ्जरी का "सलिलमन्दिर" नाम का कुञ्ज विराजमान है । यह पद्मरागमणि और चन्द्रकान्तमणियों की विचित्र योजना द्वारा बनाया गया है । इसके भीतर जल के नीचे जो मणियों द्वारा चित्र अङ्कित हो रहे है वह जल के ऊपर तरंगों के समान जान पड़ते हैं । भीतर जो कमल, फूल, हंस , भ्रमर अङ्कित किये हुए हैं वह ऐसे जान पड़ते हैं मानो जल की सतह पर तैर रहे हैं । यह मन्दिर १६ दल वाले कमल के समान बना हुआ है । किनारे से मन्दिर तक जाने के

धनपति-दिशि तादृक् सेतुबन्धानुसक्तं
षडधिकदशपत्राम्भोजवत् सन्निवेशम् ।
सलिल-कमल-सद्मानङ्गयुङ्मञ्जरीश-
म्प्रदमतुल-सुलावण्योल्लसल्लालमीति ॥१०१॥ युग्मकम्

श्रीराधेव हरेस्तदीय-सरसी प्रेष्ठाद्भुतैः स्वैर्गुणै-
र्यस्यां श्रीयुत-माधवेन्दुरनिशं प्रेम्णा तया क्रीडति ।
प्रेमास्मिन् बत राधिकेव लभते यस्यां सकृत् स्नानकृ-
त्तस्या महिमा तथा मधुरिमा केनास्तु वर्ण्यः क्षितौ ॥१०२॥

प्रिया-कुण्डं दृष्ट्वा मुदित-हृदयोऽप्यस्य विविधै-
र्गुणैस्तैस्तैरुद्दीपित-विरहभाव-स्मरवशः ।
प्रिया-प्राप्त्युत्कण्ठा-कवलितमना नागर-गुरु-
भ्रमात्मानोत्प्रेक्षां बकरिपुरमुष्मिन स विदधे ॥१०३॥

लिये एक पुल बना है ॥१००-१०१॥

अब तक जिस कुण्ड का वर्णन हो चुका है वह सरोवर श्रीकृष्ण को अपनी प्रियतमा श्रीराधा के समान ही प्रिय है। व्रज के पूर्णचन्द्र श्रीमाधव उसके गुणों में वशीभूत हैं और निरन्तर उसमें विलास क्रीड़ा करते रहते हैं। जो मनुष्य एक बार भी इसमें स्नान करता है वह श्रीकृष्ण का श्रीराधा के समान प्रेम-भाजन होता है। इसलिये इस पृथ्वी पर ऐसा कौन है जो इस कुण्ड की महिमा और माधुर्य्य का वर्णन कर सकता है ॥१०२॥

अपनी प्रियतमा श्रीराधा के कुण्ड का दर्शन कर नागर-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न होते हैं एवं उस कुण्ड के गुणों की ओर ध्यान करते हुए राधा के विरह में अत्यन्त व्याकुल तथा काम

खेलच्चक्रयुगोरोजं फेनमुक्ता-स्रगुज्ज्वलम् ।
रसोर्म्म्युच्छलितं मेने प्रिया-वक्षःसमं सरः ॥१०४॥
मधुर-रस-तरङ्गा बिभ्रती पङ्कजास्यं
भ्रमरक-परिवीतं प्रोल्लसत्खञ्जनाक्षम् ।
प्रमुदित हरिणाक्षैर्हंसंकाराव-रम्या
प्रियतम-सरसी सा प्रेयसीव व्यलोकि ॥१०५॥

वश हो जाते हैं। प्रिया की प्राप्ति की मनोकामना से वकारी श्रीकृष्ण के मनमें अनेकानेक तत्सम्बन्धी उत्प्रेक्षा उत्पन्न होने लगती हैं ॥१०३॥

राधाकुण्ड में क्रीड़ा परायण चक्रवाक् मिथुन को देख श्रीकृष्णको अपनी प्रेयसी के दोनों स्तनों का, जल में उठे फेन को देख उनकी मुक्ता-माला का भ्रम होने लगा और तरंगों को देख उनके माधुर्य्य का स्मरण हुआ इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कुण्ड को प्रिया के वक्षःस्थल समान ही माना १०४॥

श्रीकृष्ण राधाकुण्ड को अपनी प्रेयसी श्रीराधा के तुल्य ही समझने लगे। प्रियतमा जिस प्रकार भावावेश में व्याकुल रहती है सरोवर भी ठीक उसी प्रकार जल-तरंगों द्वारा व्याप्त है। प्रिया का मुखारविन्द जिस प्रकार कमल समान है कुण्ड भी उसी प्रकार कमल विशिष्ट है। प्रिया के मुख पर जैसे घुघराले केस हैं सरोबर भी उसी भाँति भ्रमरों से घिरा रहता है। उनके नेत्र जिस प्रकार खञ्जन पक्षी के समान हैं कुण्ड भी उसी प्रकार खञ्जन पक्षी से युक्त है। प्रेममयी प्रियाजी के आभरणों की झँकार जिस प्रकार हंसध्वनी के समान है कुण्ड भी उसी प्रकार हंसध्वनि से युक्त है ॥१०५॥

स्वप्रेष्ठाऽरिष्टकुण्डोर्म्मि-चञ्चत्वाहूपगूहिता ।
स्वकोकनद-पाणिभ्यां क्षिप्त-तच्चल-तत्करा ॥१०६॥
समीर-चञ्चदम्भोज-चलास्येन बलादिव ।
चुम्बिताऽलि-कटाक्षेषत्तिर्य्यगम्बुज-सम्मुखी ॥१०७॥
भृङ्गी-झङ्कार-शीत्कारा विकल-स्वर-गद्गदा ।
प्रोद्यत्कुट्टमिता तेन राधिकेव व्यलोकि सा ॥१०८॥सन्दानितकम्

इसके बाद श्रीकृष्ण का ध्यान राधाकुण्ड के समीपवर्त्ती श्रीश्यामकुण्ड की ओर गय । इस कुण्ड की अनुपम शोभा का क्या वर्णन किया जा सकता है। उसमें लहरें उठ उठ कर श्रीराधाकुण्ड की ओर बड़े बेग से चलती हैं मानो श्रीकृष्ण श्रीराधिका को आलिंगन करने के निमित्त बल पूर्वक अपनी दोनों भुजाओं में आवद्ध करते हैं, और श्री राधाकुण्ड की तरंगों से कम्पायमान कमल ही मानो श्रीराधाजी के हाथ हैं जो हिल हिल कर लहरों को आगे बढ़ने से रोक रहे हैं वही मानो राधाजी का निशेध है ॥१०६॥

श्यामकुण्ड के कमल, वायु-योग से चञ्चलित होकर बेग के साथ जब राधाकुण्ड के भ्रमर बैठे हुए उन मनोहर कमलों के ऊपर लीलाबश गिरते थे तब ऐसा प्रतीत होता था कि श्रीकृष्ण बल पूर्वक श्रीराधा के मुख-कमल का चुम्बन कर रहे हैं और श्रीराधा मानो टेढ़ी चितवत करके उनको निबारण कर रही है ॥१०७॥

श्रीकृष्ण द्वारा स्तन और अधर ग्रहण करने पर जिस प्रकार श्रीराधा मनमें तो अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव करती है किन्तु बाहर से व्यथा और मिथ्या क्रोध दिखलाती हुई कुट्टमित-

समुद्भ्राम्यल्लीलाम्बुजमनिल-जातोर्म्मि-बलितं
सरोयुग्मं वीक्ष्यानतशिरसि गोवर्द्धन-गिरेः।
निज-प्रेमोद्घूर्णा स्खलितवपुषस्तस्य स हरि-
र्भ्रमरारं वाष्पोच्छलितमिव मेनेऽक्षियुगलम ॥१०६॥
इत्थं प्रियायाः स सरः समीक्ष्य तत्र प्रत्यङ्ग-संस्मारकमात्मनो गुणैः।
बिन्दंस्तदानन्दममन्दमप्यभू-त्तादागमौत्सुक्य-विभिन्न-धैर्य्यकः ॥

भाव दिखलाती हैं उसी भाँति श्रीकृष्ण जब श्रीराधाकुण्ड के दर्शन करते थे तो उनका ऐसा अनुभव होने लगता था कि सरोवर ही भ्रमर-गण की झङ्कार के बहाने शीत्कार द्वारा उत्पन्न गद्-गद् स्वर में मिथ्या-क्रोध प्रकाश कर रहा है ॥१०८॥

श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड के दर्शन कर श्रीकृष्ण विचारने लगे कि यह दोनों हमको जो इतना आनन्द देते हैं इसका एक मुख्य कारण यह है कि हमारी प्रियतमा श्रीराधा को जो प्रियवस्तु है वह चाहे जड़ हो क्यों न हो चेतन होकर हम को सुख प्रदान करने के लिये बहुत ही आतुर और उद्योगी हो जाती है। इसकी साक्षात उदाहरण यह गोवर्द्धन पर्वत है। क्यों कि हमको पाकर इसकी कुण्डरूप दोनों आँखें प्रेम के बशीभूत से चञ्चलता को प्राप्त हो गई हैं जैसे बायु के बेग से कुण्डों में उत्पन्न नीले कमल उलट पलट रहे हैं। लहरों के बहाने मानो प्रेम निस्वास ले रहा है। प्रेम से पुलकायमान हो मयूर के समान पुच्छ ऊपर उठा कर मानो हमको साष्टांग प्रणाम कर रहा है। बृक्ष और लताओं के हिलने डुलने के छल से मानो प्रेम में विह्वल हो देह की सुध बुध खो बैठा है। तात्पर्य्य-श्रीकृष्ण दोनों कुण्ड को मयूराकार श्रीगोवर्द्धन के दोनों नेत्र रूप मानने लगे ॥१०६॥

प्रायः स एवम्विध-सन्निवेशकं
ददर्श तत्पार्श्वगमात्मनः सरः ।
कुञ्जैः स्वकान्ताग्रहतोऽतिसंस्कृतै-
र्विराजितं नर्म्मसखालि-निर्म्मितैः ॥१११॥
प्रियनर्म्म-वयस्या ये सुबलो मधुमङ्गलः-
उज्ज्वलार्ज्जुन-गन्धर्व्वा विदग्ध-भृङ्ग-कोकिलाः ॥११२॥
दक्ष-सन्नन्दनाद्याश्च तेषां स्वस्वाभिधान्विताः ।
तैर्व्विभज्यार्पिताः कुञ्जास्ते राधा-ललितादिषु ॥११३॥ युग्मकम्

श्रीराधाकुण्ड की प्रत्येक वस्तु का दर्शन कर श्रीकृष्ण को श्रीराधाके अंग प्रत्यंग का स्मरण होता था आप अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते हुए भी उनकी अनुपस्थिति में बहुत बेचैन हो जाते थे ॥११०॥

श्रीकृष्ण के आठ अन्तरंग सखाओं ने (सुबल, मधुमंगल, उज्ज्वल, अर्जुन, गन्धर्व, विदग्ध, भृङ्ग और कोकिल) श्रीराधा के आग्रह से श्रीश्यामकुण्ड के चारों ओर कुञ्ज, सोपान, घाट, घाटों के ऊपर मण्डप, वराण्डे, आँगन और हिन्दोले आदि समस्त श्रीराधाकुण्ड के समान ही रचना कर दिये थे किन्तु जल के बीच कोई कुञ्ज नहीं थी। अपने कुण्ड के दर्शन करने से श्रीकृष्ण को यह भ्रम हो जाता था कि यह राधाकुण्ड ही है ॥१११॥

इसके बाद अब श्रीकृष्ण के अन्तरंग सखाओं की उन कुञ्जों की जहाँ जहाँ स्थिती है और वे कुञ्ज उन सखाओं ने श्री-ललिता-आदि सखियों को जिस रूप अर्पण की है उसका वर्णन किया जाता है ॥११२-११३॥

वायोर्दिश्यस्ति सुबलानन्ददा कुञ्जशालिका।
राधयाङ्गीकृता यस्यास्तीर्थं मानसपावनम् ॥११४॥
नित्यं स्नात्यत्र सालीभिः कुण्डेऽस्मिन् विपुलाग्रहा।
कृष्णपादाब्जमाध्वीक-पानीये कृष्णवत्प्रिये ॥११५॥
ललिताङ्गीकृतोदीच्यां कुञ्जशालाति-चित्रिता।
मधुमङ्गल-शन्दाख्या भाति श्रीराधिका-प्रिया ॥११६॥
विशाखाङ्गीकृतैशान्यामुज्ज्वलानन्ददा परा।
एवमन्यासु दिक्ष्वन्या भान्त्यन्याभिः कृताश्रयाः ॥११७॥

श्रीश्यामकुण्ड के वायु-कोण में 'सुवलानन्दद' नाम की सुबल सखा की एक कुञ्जशाला है। श्रीराधा इसको अपनी ही कुञ्ज मानती हैं इसमें जो तीर्थ विराजमान है उसको मानस-पावन कहते हैं। श्रीराधा नित्य-प्रति सब सखियों सहित इसमें स्नान करती हैं। श्रीप्रिया इस कुञ्ज को बहुत प्रेम करती हैं। इसका यह कारण है कि वे इस कुञ्ज की पानीय वस्तु स्वयं श्रीकृष्ण के चरण कमल मकरन्द रूप (पुष्प मधु) के समान हैं ऐसा मानती हैं। अतः श्रीकृष्ण की भाँति यह कुञ्ज राधिका का परम प्रिय है ॥११४-११५॥

श्रीराधाकुण्ड के उत्तर में मधुङ्गमलशन्दद नाम की एक कुञ्ज है। इसको ललिताजी अंगीकार किये हुए हैं। यह कुञ्ज श्रीराधा को बहुत प्रिय है। इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की चित्र-कारी हो रही है ॥११६॥

ईशान-कोण में 'उज्ज्वलानन्दद' नाम की उज्ज्वल सखा की एक कुञ्ज है। इसको विशाखा जी अङ्गीकार किये हुए हैं। इस भाँति अर्जुन आदि सखाओं की भी कुञ्ज अन्य-दिशाओं में विराजमान हैं। जिनको चित्रा-आदि सखियाँ अंगी-

पूर्व्व-पश्चिम-दिङ्भागौवीशेशा कुण्डयाः क्रमात् ।
बिस्तीर्णौ नृ-पशूनां स्तः स्नान-पानार्थ-तीर्थगौ ॥११८॥
लीलानुकूलेषु जनेषु चित्तो-त्पन्न-भावेषु च साधकानाम् ।
एवम्विधं सर्व्वमिदं चकास्ति स्वरूपतः प्राकृतवत् परेषु ॥११९॥
अथ वृन्दागतं वीक्ष्यानन्दिता नन्दनन्दनम् ।
कर्णिकारावतंसौ द्वावभ्येत्योपजहार सा ॥१२०॥
वृन्दा तत्तन्निज-निपुणतालङ्कृतं दर्शयन्ती
तत्तत्कुञ्जादिकमनुतटं सेश्वरीं स्मारयन्ती ।

कार किये हुए हैं ॥११७॥

श्रीश्यामकुण्ड के पूर्व-दिशा में और श्रीराधाकुण्ड के पश्चिम-दिशा में घाटों पर मनुष्य और पशुओं के स्नान और जलपान का प्रबन्ध है। यहाँ पर दो विस्तीर्ण मार्ग बने हैं ॥११८॥

हमने अब तक जिन दो कुण्डों का वर्णन किया है उनके विषय में यहाँ पर एक शंका उठ सकती है कि दूसरे साधारण कुण्डों के समक्ष श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड किस प्रकार अप्राकृत रूप में जाने जा सकते है। इसी से तो हम कहते हैं कि लीला के अनुकूलकारी नित्यसिद्ध जन और साधकों के उत्पन्न भावमय चित्त में ये कुण्ड अप्राकृत रूप में प्रतीयमान होते हैं किन्तु दूसरे संसारी मनुष्यों के लिये यह प्राकृत रूप में दीखते हैं ॥११९॥

तब श्रीवृन्दा श्रीकृष्ण को वहाँ आया देख उनके समीप गईं और कमल-पुष्प की गन्ध से युक्त दो फूल कानों में लगाने के लिये उनको भेट किये ॥१२०॥

राधाकान्तं ककुभि सहजैर्भ्राजमानं गुणैः स्वैः
कुण्डैशान्यां मदन-सुखदाभिख्यकुञ्जं निनाय ॥१२१॥
स तद्दृष्ट्वातिहृष्टोऽभूत्तात्तत्स्थानेषु राधया ।
कृत-कर्त्तव्य-लीलानां स्मृति-संकल्प-तत्परः ॥१२२॥
बिशाखया मञ्जुमुख्या बृन्दया च सुमण्डितम् ।
कुञ्जं विलोक्य तं प्रीतस्तामाहोत्कलिकाकुलः ॥१२३॥
दिष्ट्या बृन्दे यदि तव सखी सागता स्यादकस्मात्
निष्प्रत्यूहं यदि मम तया स्युश्च ते ते विलासाः ।
कुण्डारण्यं मधु सुमधुरं कुञ्जगेहं तदास्मिन्
वैचित्री च त्वदुपरचिता कल्पते सत्फलाय ॥१२४॥

इसके बाद श्रीवृन्दादेवी कृष्ण को राधा का स्मरण कराने लगी। अपनी कारीगरी से बनी हुई सब देदीप्यमान कुञ्जों को दिखलाती हुई उनको मदन-सुखदकुञ्ज में लिवा ले गई ॥१२१

तब श्रीकृष्ण उस कुञ्ज की शोभा का दर्शन कर जिस जिस स्थान पर पहिले जो जो लीलाएँ की थी उनको स्मरण करने लगे और कौन कौन लीला करनी है उसके अनुसार कर्तव्य निश्चय करने लगे ॥१२२॥

इस कुञ्ज को श्रीविशाखा, उनकी शिष्या मञ्जुमुखी और श्रीबृन्दा ने खूब सजाकर रक्खा था। इसकी सजावट देख श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और आकुलचित्त से बृन्दाजी से कहने लगे ॥१२३॥

इस समय यदि भाग्यवश तुम्हारी सखी राधा अकस्मात् यहाँ आ जायें और निर्विघ्नता से उनके साथ हमारी विलास-लीलाएँ हो तभी तुम्हारा यह कुञ्ज और इसकी सजधज सार्थक हो सकती है ॥१२४॥

सङ्केतकुञ्जमगतं तुलसी-सकाशात्
शैव्यान्वितं च पथि मां नु निशम्य राधा।
नैष्यत्यसौ तत इतः किल कापि गत्वा
तामानयेदिह निवेद्य मम प्रवृत्तिम् ॥१२५॥
श्रीराधायाः सविध उभयीं माधवीयामवस्थां
शंसन्त्युच्चैर्मदन-विषमां लालसोद्दीपनीञ्च।
कुर्वाणैनां प्रणय-विकलां व्याकुलां तृष्णयाद्धा
तामानेतुं त्वरय ललितां मद्गिरा त्वं धनिष्ठे ॥१२६॥
स्थापयैकां सखीं वृन्दे गोदिगध्वन्यसौ यथा।
मामन्वेष्टुं सखा कश्चिदागच्छेत्तं प्रतारयेत् ॥१२७॥

हे वृन्दे! हम कुञ्ज की ओर आ रहे थे कि मार्ग में शैव्याजी से भेंट हो गई और तुलसी के द्वारा पता चला कि राधा आ नहीं पायेंगी। इसलिये हे सखि! किसी को भेजकर राधा को सूचना दो कि हम संकेत-कुञ्ज में आगये हैं और बड़ी उत्कण्ठा से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। शैव्या को हमने धोखा देकर गौरीतीर्थ में भिजवा दिया है ॥१२५॥

इसके बाद श्रीकृष्ण धनिष्ठा से कहने लगे कि श्रीराधा को बुलाने के लिये ललिता को शीघ्र वहाँ जाने को कहो। ललिता वहाँ पहुँच कर उनसे हमारी द्विविधा स्थिती का वर्णन करे। हम मदन शरसे अत्यन्त जर्जरित-एवं आकुलता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा कहने से वह प्रेमाकुला हो यहाँ आने के लिये बेचैन हो जायेगी ॥१२६॥

हे वृन्दे! तुम गोशाला मार्ग पर किसी एक सखी को नियुक्त करदो जिससे यदि कोई हमको ढूंढता हुआ यहाँ आये तो उससे कहदे कि हम यहाँ नहीं हैं। ॥१२७॥

गारीतीर्थाध्वनि परां दक्षां स्थापय सा यथा ।
पुनरायाति शैव्या चेदन्या वा ताश्च बञ्चयेत् ॥ १२८॥
पक्वरम्भाफले मग्नदृष्टिं लोलं बटुं हरिः ।
वीक्ष्याह बृन्दामनयोः फलैस्त्वं पूरयोदरम् ॥१२६॥
बटुराहानया किं मे त्वमाज्ञापय मां सखे ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा यथावाञ्छं खादंस्तृप्यामि लोलुपः ॥१३०॥
तत्र तत्र प्रहितयोः सख्योर्निपुणयोस्तया ।
कृष्णोऽप्युत्कण्ठितोऽतिष्ठत् प्रियाध्वनिहितेक्षणः ॥१३१॥

और गौरीतीर्थ के मार्ग पर भी किसी दूसरी चतुरा सखी को वैठा दो जिससे शैव्या अथवा उसकी सखीयाँ न आ सके ॥

फिर श्रीकृष्ण यह देख कि मधुमंगल की दृष्टि कदलीफलों की ओर जमी हुई है, बृन्दाजी से कहने लगे कि देखो इस ब्राह्मण-कुमार का मन केले के फलको ललचा रहा है। एक बृक्ष के फलों से इसकी उदर पूर्त्ति न हो सकेगी, अतः इसको दो बृक्षों के फल खाने को दो ॥१२६॥

श्रीकृष्ण के इस प्रकार परिहास पूर्ण बाक्य सुन मधुमंगल कहने लगा कि हे सखे ! यह बात तो सत्य है कि मेरा मन केले के फल को ललचा रहा है। इसमें बृन्दा की प्रतीक्षा की तो कोई आवश्यकता नही है। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं स्वयं ही देख देख कर उत्ताम फल अपनी रुचि अनुसार खाकर उदरपूर्त्ति कर लूँ ॥१३०॥

इसके बाद बृन्दा ने दो चतुर सखियों को गोशाला और गौरीतीर्थ के मार्ग पर पृथक् पृथक् नियुक्त कर दिया। तब श्रीकृष्ण उत्कण्ठा के साथ अपनी प्रियतमा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे ॥१३१॥

स्मित-कमलमुखी सा यावदायाति तावज्-
जलधिशत-गभीरोऽप्यस्तधैर्य्य: स मेने ।
क्षणमपि युगलक्षं हन्त यत्तान्न चित्रं
प्रणयिनि सहजेयं प्रेमभाजां हि चेष्टा।। १३२।।
श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्ग: सप्तम एष सुष्ठु निरगात् पूर्व्वाह्न-लीलामय: ।७।।

जब तक प्रफुल्ल-कमलमुखी श्रीराधा आ नहीं गईं तब तक सैकड़ों समुद्रों के समान गाम्भीर्य्य होते हुए भी श्रीकृष्ण धैर्य्य खो बैठे और प्रियतमा की प्रतिक्षा का एक एक क्षण उनको लाख लाख युगों के समान जान पड़ने लगा। इसमें आश्चर्य्य ही क्या है । प्रेमियों की इस प्रकार की चेष्टायें तो स्वाभाविक ही होती हैं ।।१३२।।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरण-कमलों के मधुपान में भ्रमर स्वरूप श्रीरूपगोस्वामीजी की सेवा के फल स्वरूप, श्रीरघुनाथदासगोस्वामी---द्वारा प्रकाशित और श्रीजीवगोस्वामीजी के संसर्ग से उत्पन्न और श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामी के वरदान प्रभाव द्वारा लिखे गये श्रीगोविन्दलीलामृत-काव्य का सप्तम सर्ग समाप्त हुआ ।।७।।

❀ अथ अष्टमः सर्गः ❀

मध्याह्नेऽन्योन्य-सङ्गोदित-विविध-विकारादि-भूषा-प्रमुग्धौ
वाम्योत्कण्ठातिलोलौ स्मरमख-ललिताद्यालि-नर्म्माप्तशातौ ।
दोलारण्याम्बु-बंशीहृति-रति-मधुपानार्क-पूजादि-लीलौ
राधाकृष्णौ सतृष्णौ परिजन-घटया सेव्यमानौ स्मरामि ॥१॥
अथात्र घोषेश्वर-नन्दन-प्रिया पृथक् पृथक् सा युगपन्निजेन्द्रियैः ।
आकृष्टचित्ता प्रियसङ्गमौत्सुकैः स्वं सान्त्वयन्तीमवद्विशाखिकाम ॥

जो दोपहर के समय एक दूसरे से मिलने पर अष्टसात्त्विक विकार और निर्वेद आवेग आदि भावों से अलङ्कृत हो शोभा को प्राप्त होते हैं, जो बाम्यभाव और उत्कण्ठा से भरपूर हैं; रतिक्रीड़ा-बिषय में ललिता आदि सखियों द्वारा उपहास बाक्य सुन सुख का अनुभव करते हैं; और दोललीला, अरण्यलीला, जलक्रीड़ा, वंशीहरण, रमण, मधुपान, और सूर्य्यपूजा आदि लीलाओं में तत्पर एवं परिजनों से सेवित हुए हैं, मैं उन श्रीराधाकृष्णजी का अपने हृदय में ध्यान करता हूँ ॥१॥

इसके उपरान्त श्रीनन्दनन्दन-प्रिया, वृषभानुनन्दिनी श्री-राधा अपने घर में बैठी हुई अपने प्रियतम श्रीकृष्ण संग-जात-सुख का एक ही समय में पृथक् पृथक् इन्द्रियों द्वारा स्मरण कर उनकी ओर आकृष्ट हो मन ही मन अपने को शान्त्वना देने लगी और विशाखा सखी को बुलाकर कहने लगी ॥२॥

सौन्दर्य्यामृत-सिन्धुभङ्ग-ललना-चित्ताद्रि-संसावकः
कर्णानन्दि-सनर्म्म-रम्यवचनः कोटिन्दु-शीताङ्गकः।
सौरभ्यामृत-संसवावृत-जगत् पीयूष-रम्याधरः
श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति वलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे ॥३॥
नवाम्बुद-लसद्द्युतिर्नवतडिन्मनोज्ञाम्बरः
सुचित्र-मुरली-स्फुरच्छरदमन्द-चन्द्राननः।
मयूर-दल-भूषितः सुभग-तारहारप्रभः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति नेत्र-स्पृहाम् ॥४॥
नदज्जलद-निस्वनः श्रवणाकर्षि-सत्सिञ्जितः
सनर्म्म-रससूचकाक्षर-पदार्थ-भङ्ग्युक्तिकः।

हे सखि बिशाखे ! जो अपने सौन्दर्य्यामृत सागर की तरंगों से रमणियों के चित्त रूप पर्वत को संसावित करते हैं, जिनके सपरिहास बचन दोनों कर्णों को उत्साहित करता रहता है, जिनके अंग कोटि चन्द्रमा से भी सुशीतल है, जिनके अमृत तुल्य मनोहर अधर निज सौरभामृत के द्वारा जगत् को आप्लावित करता है वे व्रजराजनन्दन बलात्कार हमारे पाँच इन्द्रियों को क्रम से आकर्षित कर रहे हैं ॥३॥

हे सखि जिनकी अंगकान्ति नवीन-जलधर से भी सुन्दर है, जिनके पहिनने के बस्त्रों की शोभा विद्युत् छटा से भी अधिक है, जिनके कर कमलों में चित्र विचित्र वंशी शोभा पा रही है, जिनका कमलमुख शरद् चन्द्र से भी अति शोभायमान है, जो मयूरपुच्छ का मुकुट धारण किये हुए हैं, जिनके गले में हार दोदुल्यमान हो रहा है, ऐसे मदनमोहन हमारे नेत्रों की तृष्णा को बढ़ाते हैं ॥४॥

रमादिक-वराङ्गना-हृदयहारि-वंशीकलः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति कर्ण-स्पृहाम् ॥५॥
कुरङ्गमदजिद्वपुःपरिमलोर्म्मि-कृष्टाङ्गनः
स्वकाङ्ग-नलिनाष्टके शशियुताब्ज-गन्धप्रथः ।
मदेन्दुवर-चन्दनागुरु-सुगन्धि-चर्चार्चितः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति नासा-स्पृहाम् ॥६॥
हरिन्मणि-कवाटिका-प्रततहारि-वक्षःस्थलः
स्मरार्त्त तरुणी-मनःकलुषहन्तृ-दोर्गलः ।
सुधांशु-हरिचन्दनोत्पलसिताभ्र-शीताङ्गकः
स मे मदमोहनः सखि ! तनोति वक्षःस्पृहाम् ॥७॥

हे सखि ! जिनका कण्ठस्वर मेघ के समान गम्भीर है, जिनके अलङ्कारों की ध्वनि कानों को अपनी ओर खींचती है, जिनकी हँसमुख बातों की भङ्गी विविध भाँति शोभा प्रकाश करती है, जिनकी मुरली-ध्वनि लक्ष्मी आदि रमणियों के मन को चुराती है ऐसे मदनमोहन हमारी कर्णेन्द्रिय को आनन्द प्रदान करते रहते हैं ॥५॥

हे सखि ! जिन श्रीकृष्ण के अङ्ग की सौरभ कस्तूरी की सुगन्ध को तिरस्कार और रमणीगण के मन को आकर्षण करती है, जिनकी देह अष्टदल कमल के समान है अर्थात् दो पैर, दो हाथ, दो कर्ण, नाभि और सुन्दरमुख यह आठ दल है। जिनके समस्त अङ्ग पर कर्पूर, मलय और अगर इत्यादि सुगन्धित वस्तुओं का लेपन हो रहा है, ऐसे श्रीमदन-मोहन हमारी नासिका की स्पृहा को बढ़ाते ही रहते हैं। अर्थात् उनके अंग की सुगन्ध पाकर हमारी नासिका हठात् हमको उनकी ओर खींचे लिये जाती है ॥६॥

व्रजातुल-कुलाङ्गनेतर-रसालि-तृष्णाहर-
प्रदीव्यदधरामृतः सुकृतिलभ्य-फेलालवः ।
सुधाजिदहि-वल्लिका-सुदल-वीटिका-चर्वितः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति जिह्वा-स्पृहाम् ॥८॥

अथागता सा तुलसी सभां तां गुञ्जावलीं गन्धफली-युगञ्च ।
निवेदयन्ती ललिता-कराब्जे वृत्तं समस्तं मुदिता शशंस ॥६॥

श्रवसोरवतंसकद्वयीं हृदि गुञ्जास्रजमप्यमूं शुभाम् ।
हरि-सङ्ग-समृद्ध सौरभां प्रियसख्या ललिता मुदा दधे ॥१०॥

हे सखि ! जिनकी बिशाल-छाती इन्द्रनीलमणि के दो किबाड़ों के समान मनोहर हैं, जिनकी दो भुजायें कामातुर युबतियों के मन के ताप को दूर करने में अर्गल (चिटखनी) के समान हैं, जिनकी समस्त देह, चन्द्र, चन्दन, नीलकमल और कर्पूर के समान शीतल है ऐसे श्रीमदनमोहन हमारे वक्षःस्थल के आनन्द को बढ़ाते हैं ॥७॥

हे सखि ! जिनका सुमिष्ट अधरामृत बड़े भाग्य से मिलता है और एक बार पान करने पर रमणियों में श्रेष्ठ व्रजाङ्गनायें दूसरे रस को तुच्छ ज्ञान करती हैं; जिनका भुक्तावशेष-पान अमृत से भी स्वादिष्ट है ऐसे मदनमोहन हमारी जिह्वा को आकर्षण करते हैं ॥८॥

श्रीराधा व्याकुल होकर श्रीकृष्ण के विषय में इस प्रकार उत्सुकता प्रकाश कर रही थी ठीक उसी समय तुलसी वहाँ आ पहुँची और श्रीकृष्ण का भेजा हुआ गुञ्जाहार और चम्पक-फूल की दो नवीन कलियाँ ललिताजी के हाथ देकर समस्त वृतान्त बर्णन करने लगी:-॥६॥

तब ललिता ने कुसुम-कलियाँ और गुञ्जाहार जिनमें श्री-

तत्स्पर्शतः फुल्ल-सरोज-नेत्रा कृष्णाङ्ग-संस्पर्शमिवानुभूय ।
कम्पाकुला कण्टकिताङ्ग-यष्ठि क्वापि गन्तुं स्थगिता तदासीत् ॥
धीरता वामता-सूक्ष्ममेधालीभिः प्रबोधिता ।
त्वरयन्ती सखीर्याने भङ्गया परिजहास सा ॥१२॥
पश्याताग्रे दिदृक्षा चेद् गत्वालं मदपेक्षया ।
शैव्या-वाग्वागुरावद्धं कृष्णसारं मृगेक्षणाः ॥१३॥
विधेयः पद्मिनीनां वः प्रयत्नः कृष्णपद्मिनः ।
चन्द्राबली सखीवारी-पतितस्य समुद्धृतौ ॥१४॥

कृष्ण के अङ्ग की सुगन्धि लगी हुई थी श्रीराधा के कर्ण और कण्ठ में पहिना दी ॥१०॥

प्रफुल्ल-कमलनयनी श्रीराधा गुञ्जाहार और चम्पक-कलिका के स्पर्श मात्र से कृष्ण-आलिङ्गन सुख का अनुभव करने लगी। उनका समस्त शरीर कम्पित और पुलकित हो गया। श्रीकृष्ण-दर्शन की इच्छा होते हुए भी वे स्थिर भाव से बैठी रही ॥११॥

श्रीराधा यह देख कि ललिता-आदि सखियाँ श्रीकृष्णजी के समीप जाने और उनको ले जाने के लिये अति उतावली हैं, मन में तो अत्यन्त प्रसन्न हुई किन्तु बाहर से धैर्य्य और बिबेक आदि दिखलाती हुई परिहास करते हुए कहने लगी:-॥१२

हे सखियो ! यदि तुम लोगों की इच्छा श्रीकृष्ण के पास जाने की है तो हमारी प्रतीक्षा क्यों करती हो। चली क्यों नहीं जाती हो। आगे जाकर देखोगी कि तुम्हारा कृष्णसार (एकजाति का हरिण) शैव्या की बातों के फन्दे (जाल) में फँसा पड़ा है। श्लेषार्थ यह है कि श्रीकृष्ण उसकी बातों में आकर अपना सार (धैर्य्य) खो बैठे हैं ॥१३॥

न हठात् क्रियते सुपण्डितैरविचारात् कृतमप्यनर्थकम् ।
सुविचार्य्य कृतं हि फलते सुधियां साधुफलोपपत्तये ॥१५॥
ललिताह सत्यमेतद्‌यन्न सङ्केतगो हरिः ।
किन्तु शैव्यादिभिर्वीतस्तद्‌यानं मान-हानये । १६॥
अथेशा कृष्ण-सङ्गाशोरकलिका-व्याकुलान्तरा ।
तस्य दुर्लभता-स्फूर्त्या मनस्येतदचिन्तयत ॥१७॥

आगे और उपहास करती हुई कहने लगीं कि हे सखियो चन्द्रावली ने तुम्हारे श्रीकृष्ण को बातों में फुसलाकर अपने पास बाँध रक्खा है । कामातुर हस्ति जिस प्रकार हस्तिनी द्वारा बन्धन को प्राप्त होता है उसी प्रकार कृष्ण भी फँसे पड़े हैं। अब तुम लोगों का कर्त्तव्य है कि उनको फन्दे से छुड़ाओ। इस बाक्य में यह भी व्यङ्ग है कि तुम लोग कामातुरा हस्तिनी के समान हो ॥१४॥

हे सखियो ! बुद्धिमान लोग करने योग्य काम अकस्मात् कभी नहीं करते हैं। पहिले भली प्रकार सोच विचार लेते हैं तब ही आरम्भ करते हैं इस प्रकार किया हुआ कार्य्य ही सत्फल को प्राप्त होता है । इसलिये तुम लोग भी सोच विचार कर कार्य्य करो ॥१५॥

श्रीराधा के इस प्रकार व्यङ्ग बचन सुन श्रीललिता कहने लगीं कि हे सखि ! तुम जो कुछ कह रहो हो वह सत्य है। इसी कारण से श्रीकृष्ण संकेत-स्थान पर नहीं पहुँचे और शैव्या आदि सखियों से घिरे हुए वैठे हैं। ऐसी जगह जाने से तो मानहानि ही सम्भव है ॥१६॥

श्रीललिताजी के इस प्रकार बचन सुन श्रीराधा कृष्ण-संग

ननन्दा विद्वेष्ट्री पतिरतिकटुः सापि कुटिला
धवाम्बा मे पद्मा-प्रभृति-रिपुपक्षश्च बलवान् ।
वनं व्याप्तं सर्व्वं व्रजधनजनैरह्नि सखिभि-
र्वृतः कृष्णो लभ्यः कथमिह भवेद्विघ्न-बहुले ॥१८॥
निष्प्रत्यूहं हरेः सङ्गो दुर्लभो मेऽद्य दुर्विधेः ।
इत्याकुलाधियस्तस्याः शुभासीच्छकुनोन्नतिः ॥१६॥

की आशा से बिकल हो उठी और उनसे मिलना दुर्लभ जान व्याकुल हो कहने लगीः-॥१७॥

हाय हमारी बृद्धा सास कुटिलता का भण्डार है। कभी भी हमसे सीधी तरह बात चीत नहीं करती है। सदाँ ही श्रीकृष्ण के बिषय में शंका करती रहती हैं। हमारी ननद साक्षात् मानो द्वेष और हिंसा का अवतार ही है। हमारा अपमान और तिरस्कार करने के लिये अपना माता और भाई से हमारी प्रतिदिन झूँठी-सच्ची बातें बनाकर हमको लाञ्छना दिलाना और लज्जित कराना ही अपनी तपस्या समझती है। साक्षात् वह क्रोध की प्रति-मूर्त्ति ही है। इसके अतिरिक्त दिन के समय तो सारा बृन्दाबन गौओं और सखाओं के आवागमन से भरपूर रहता है, हमारे प्रतिपक्षी शैव्या-पद्मा आदि केवल चतुरा अथवा कुटिलबुद्धि में निपुण ही नहीं है जिनको पराजय करना बहुत कठिन है। इतनी विघ्न-बाधायें होनेपर भला दिन में श्रीकृष्ण के साथ मिलन किस प्रकार सम्भव हो सकता है ॥१८॥

हाय। मैं कितनी अभागिन हूँ। आज तो कोई बाधा भी उपस्थित नहीं है उस पर भी प्रियतम का मिलन दुर्लभ

सुलभो वृषभः स गिरौ कमपि प्रसभं गणको बहिरित्यवदत् ।
निज-वाम-कुचोरुभुजानयनं प्रियसङ्गतये स्फुरदाशु समम् ॥२०॥
भविक-शकुनजातामोद-पूर्णापि गाढ़-
प्रणय-विसरजा-सम्भावना-लीनचित्ता ।
हृदय-दयित-वार्ता-प्राप्ति-तृष्णा-स्रवन्त्या
सममहह ! धनिष्ठामागतां सा ददर्श ॥२१॥

हो रहा है। ऐसा कहते कहते श्रीराधा अत्यन्त व्याकुल हो गईं उसी समय अकस्मात् प्रियमिलन के विषय में एक शुभ-सूचक-ध्वनि कानों में पड़ी ॥१६॥

बाहर कोई ज्योतिषी किसी से कह रहा था कि पर्वत के ऊपर शीघ्र ही वृषभ की प्राप्ति होगी। यह सुन श्रीराधा विचारने लगीं कि वृषभ शब्द का अर्थ तो श्रेष्ठपुरुष है अतः श्रीकृष्ण ही तो पुरुषों में श्रेष्ठ हैं तब तो अवश्य ही हमको उनकी प्राप्ति होगी। इसके अतिरिक्त एक और शुभ-लक्षण उनको प्रतीत होने लगा। उनका वाम-स्तन, वाम-उरु और बाम-भुजा फड़कने लगी ॥२०॥

जिस समय श्रीराधा ने ज्योतिषी के मुख से अकस्मात् शुभ सूचक शब्द सुने और साथ ही साथ अपने वाम अङ्गों के शुभ शकून फड़कन देखे तो वे महा-आनन्द को प्राप्त हुईं किन्तु प्रगाढ़ प्रेम के बशीभूत यह सन्देह बना ही रहा कि श्रीकृष्ण प्राप्ति होगी या नहीं। इस प्रकार चिन्ता कर ही रही थी कि इतने में धनिष्ठा श्रीकृष्ण के पास से उनके निकट आ पहुँची। उसको आता देख वे समझ गईं कि यह अवश्य ही हमारे प्राणबल्लभ का सम्बाद लाई है अर्थात् हमारी कृष्ण-मिलन-तृष्णा शान्त करने के निमित्त

स्वमिलन-मुदितां तां वीक्ष्य राधा धनिष्ठां
हृदय-दयित-पादैः प्रेरितां मन्यमाना ।
उदित-विविध-भाव-व्याकुलाप्यस्य वार्त्ता-
श्रवण-कुतुक-दिग्धा व्याजतस्तामपृच्छन् ॥२२॥
कुत इह सखि ! वृन्दारण्यतो माधव-श्रीः
कथय किमनुभूता लोकिता गोत्रवर्य्यः ।
व्रजधन-जन-पाता सङ्गतश्चेक्षितोऽसौ
कथयतु भवती सा कीदृशी वा स कीदृक् ॥२३॥
विकसित-वनमालाकृष्ट-पुष्टालि-वृन्दा
विकच-तिलकलक्ष्मीः कोकिलालाप-रम्या ।
हृदि युवति-जनानां काममुद्दीपयन्ती
स्फुरति सखि ! विशाला माधुरी माधवस्य ॥२४॥

नदी स्वरूप उनका समाचार लाई है। आशा है अब तो मिलन अवश्य होगा ॥२१॥

श्रीराधा यह जान कि प्रसन्नवदना धनिष्ठा हमारे प्राणनाथ श्रीकृष्ण की भेजी हुई हो आई है, प्रिय-मिलन अब निश्चय ही होगा इस भावना से उनके समस्त अङ्ग में हर्ष आदि उल्लास भाव उदय हो गये। आप प्रियतम की कथा (वार्ता) सुनने की लालसा से व्याकुल हो उठी किन्तु मान-मर्य्यादा की रक्षा के निमित्त धनिष्ठा से इस प्रकार बातें करने लगी जिसने दो दो अर्थ ज्ञात हों। वे बोलीः-। २२॥

कहिये सखि ! किस ओर से आगमन हुआ। धनिष्ठा ने उत्तर दिया-वृन्दावन से, राधा ने पूछाः-क्या माधवश्री की शोभा देखी ? व्रज के गोधन आदि के रक्षक गिरिगोवर्द्धन भी देखे ? कह तो वे कैसे हैं ? ॥२३॥

विविधोत्कलिकाकीर्णां दर्शनात् स्मरवर्द्धिनीम् ।
माधवीयामवस्थां कः सखि ! वर्णयितुं क्षमः ॥२५॥

राधा का यह प्रश्न कि "माधवश्री" देखी—इसके दो अर्थ हैं। वसन्तशोभा एवं श्रीकृष्णमाधुरी । धनिष्ठा ने इस प्रकार उत्तर दिया:- (१) सखि ! वसन्त की शोभा का क्या वर्णन करूँ । उसकी विस्तृत माधुरी हरे भरे विकसित वन द्वारा भ्रमर-गण को अपनी ओर खींच रही है और तिलक फूलों-को स्फुटित कर कोयल की कूक के द्वारा युवतियों के मन में कामेच्छा उत्पन्नकर विलास कर रही है (२) हे सखि श्रीकृष्ण की सुन्दरता का तो वर्णन ही क्या करूँ । उनकी अद्भुत माधुरी रूप वनमाला द्वारा भ्रमरगण का परिपालन, तिलक द्वारा मुख श्री का प्रकाश, कोयल के समान सुमिष्ठ वाणि द्वारा (वंशी-रव) युवतियों के हृदय में अनंग अभिलाषा का सञ्चार कर रही है ॥२४॥

धनिष्ठा कहने लगी—हे सखि ! माधव सम्बन्धी अवस्था वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता मैं जो थोड़ी बहुत जानती हूँ कह रही हूँ श्रवण करो। यह माधवीया अवस्था भाँति भाँति की श्रेष्ठ-कलियों द्वारा चारों ओर व्याप्त हो रही है। इसके दर्शन मात्र से ही कामवासना उदय होती है। (दूसरा अर्थ) श्रीकृष्ण उत्कण्ठा से व्याकुल है अर्थात् तुम्हारी कथा-आलाप और निशावसान लीलाओं का चिन्तन करते करते उनका समस्त अङ्ग पुलकायमान हो रहा है। इस समय उनकी ऐसी अवस्था है कि दर्शन मात्र से युवतियों में कामवासना का उदय हो जाता है ॥२५॥

धरोद्धर्त्ता धातूत्रय-रचित-चित्रावयववान्
ध्वनद्वेणुधनुव्रज-जलदभीति-व्रजहरः ।
वयःक्रीडोन्मीलः सबल-सुरभी-वर्द्धनकृती
विरावोच्चैः शृङ्गो लसति सखि ! गोवर्द्धनधरः ॥२६॥
तद्रागभङ्गी-मधुलीनां पानोन्मत्ताहृदप्यसौ ।
कान्तोदन्तं स्फुटं श्रोतुं संवादमनयाऽकरोत् ॥२७॥

श्रीराधा का दूसरा प्रश्न है,–"गोत्र श्रेष्ठ की शोभा देखी"। इसके भी दो अर्थ हैं। श्रीराधा छल से श्रीकृष्ण शोभा का वर्णन सुनना चाहती है। धनिष्ठा भी बड़ी चतुराई से दोनों अर्थ वर्णन करती है। इस गोत्र-श्रेष्ठ शब्द का अर्थ है "गोवर्द्धन-गिरि" एवम् "गोवर्द्धन-धारी श्रीकृष्ण"। धनिष्ठा कहने लगी– (१) हे सखि ! जिसका अङ्ग प्रत्यङ्ग गेरू आदि धातुओं द्वारा बिचित्र बना हुआ है, जहाँ नित्य वेणुनाद सुनाई पड़ता है, जो इन्द्रकोप से भयभीता गो समूह के रक्षक हैं जहाँ, पक्षिवृन्द निबास करते हैं, जो गौओं की बृद्धि में कुशल हैं, जहाँ ऊँचे ऊँचे शिखरों पर पक्षियों का कलरब गान होता है, ऐसे गबर्द्धन गिरी आनन्दपूर्वक विलासक्रीड़ा कर रहे हैं। श्रीकृष्णपक्ष में–(२) जिनका समस्त अङ्ग गेरू आदि धातुओं के रंग से चित्र बिचित्र सजाया हुआ है, जो मधुर-वंशी बादन कर रहे हैं, जो बादलों की गर्ज्जना से भयभीता गो समूह के भय को दूर करने बाले हैं, जिनकी सदा किशोर-अबस्था रहती है, जो देवताओं के भय को दूर करने में सदा तत्पर रहते हैं, जिनके महिष-शृङ्गाबाद्य से अपूर्व-ध्वनि निकलती है, ऐसे पृथ्वी के उद्धार कर्त्ता गोबर्द्धनधारी श्रीकृष्ण विराजमान हैं ॥२६॥

यानं क्व ते सम्प्रति ते समीपे किमर्थमावेदयितुं प्रवृत्तिम्।
कस्य व्रजेन्दोः सखि ! कीदृशी सा स्वशत्रु-कन्दर्प-तमोऽतिभूतिः॥
छायाद्वितीयोऽयमसौ सहायी निरायुधोऽयं स च शस्त्रपूर्णः।
स्वरूप-सम्पज्जय-जातरोषस्तं बाधतेऽसौ स्वमधौ समृद्धः ॥२६॥

धनिष्ठा की इस प्रकार वाक् चातुरी देख प्रेम से उन्मत्त हो श्रीराधा अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्ण का वृतान्त स्पष्ट रूप से जानने के लिये उससे वार्तालाप करने लगी :- ॥२७॥

राधा- 'सखि ! अब कहाँ जाने का बिचार है' ?

धनिष्ठा- 'तुम्हारे निकट'।

राधा- 'किस लिये' ?

धनिष्ठा- 'एक बात बताने के लिये'।

राधा- 'क्या बात' ?

धनिष्ठा- 'श्रीकृष्णजी के बिषय में'।

राधा- 'कहो ! क्या कहना है' ?

धनिष्ठा- श्रीकृष्णचन्द्र का शत्रु कामदेव, राहु के समान उनको यहाँ घेरे हुए है। उसके डर से वे बहुत बेचैन हैं। बस बताने आई हूँ ॥२८॥

कन्दर्प श्रीकृष्ण को पीड़ा दे रहा है इसका एक विशेष कारण यह है कि वे इस समय असहाय हैं। केवल छाया ही उनकी एक साथिन है। कामदेव अपने दल बल सहित है। श्रीकृष्ण अकेले हैं, उनके पास कोई अस्त्र नहीं है। कन्दर्प अपने पाँचों बाणों (सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन) से युक्त है, श्रीकृष्ण ने अपनी माधुरी द्वारा मदन की समस्त छटा और सौन्दर्य्य को पराभव कर दिया है इससे

समाच्छन्नं कुर्व्वन्नुपरि कुसुमैः स्वैरिव शरैः
समन्तात् सामन्तैरलि-पिक-वसन्तानिल-मुखैः ।
भवत्कुण्डारण्यं न्यरुणदिह कृष्णं रतिपति-
र्बहिस्थानीकीन्या इव स तव सङ्गं स्पृहयति ॥३०॥
बहुधा कृतरक्षणं प्रियं पतितं दैव-वलेन सङ्कटे ।
तव सङ्गति-मात्रतारणे त्वरितं त्राहि न चेन् कृतघ्नता ॥३१॥

वह चिढ़ गया है और अपने अधीनस्थ बसन्त की शोभा का विस्तार कर उनको कष्ट पहुँचा रहा है ॥२९॥

कष्ट किस प्रकार है कहती हूँ सुनो । वही रतिपति कामदेव ने अपनी विविध भाँति कुसुम-सैन्य लेकर सारे बनको ऊपर से घेर लिया है और भ्रमर, कोकिल, बसन्त और मलयवायु रूप अपने सामन्तगण द्वारा चारों ओर से श्रीकृष्ण को आच्छादन कर तुम्हारे कुण्डारण्य में अवरुद्ध कर रक्खा है । अब उनकी सहायक सेना रूप में एक तुम्ही तो हो । इस लिये उनकी यही अभिलाषा है कि तुम वहाँ पहुँचकर उनकी रक्षा करो । तुम्हारे जाने से मदन की सब सेना एवं पिक आदि सब सामन्त-गण स्वयं ही पराजय को प्राप्त हो अपने अधीन हो जायेंगे ॥३०॥

हे सखि ! आज भाग्यवश तुम्हारे प्रियतम महासङ्कट में फँस गये हैं, तुम शीघ्र जाकर उनका उद्धार करो नहीं तो यह तुम्हारी कृतघ्नता होगी क्यों कि उन्होंने अनेक बार विपत्तियों से तुम्हारी रक्षा की है । तुमसे मिलने की ही अभिलाषा से तो वे तुम्हारे कुण्ड पर गये हैं और आपत्ति में पड़ गये । यदि तुम यह कहो कि किस प्रकार रक्षा कर सकती हैं तब सुनो बतलाती हूँ केवल तुम्हारे संगमात्र से ही उनकी

त्वत्सङ्गत्या यदा भाति तदा मदन-मोहनः ।
अन्यत्र विश्वमोहोऽपि स्वयं मदन-मोहितः ॥३२॥
धृतानल्पाकल्पः कृतकुसुम-तल्पो हृदि बल-
द्विकल्पः सङ्कल्पान् विदधदिह जल्पंस्तव कथाम् ।
स शूरोऽपि क्रूरातनु-कदन-दूरोज्झितधृति-
र्हरिः कुञ्जे गुञ्जन्मधुप-पिकपुञ्जे निवसति ।३३॥

यह दशा दूर हो जायेगी । पहिले भी अनेक वार तुम्हारे द्वारा उनकी रक्षा हो चुकी है । इसलिये हे सुन्दरी ! यदि इस समय अपने संग द्वारा तुम उनकी रक्षा न करोगी तो तुमको कृतघ्नता का दोष लगेगा ॥३१॥

हे राधे ! यदि तुम्हारे मन में हमारे इन वाक्यों पर बिश्वास नहीं है और कहती हो कि जो कामदेव को भी मोहित कर देते हैं उनको कामदेव कैसे मोहित कर सकता है ? इस शंका का समाधान यह है कि श्रीकृष्ण जब तुम्हारे साथ होते हैं तब ही तो वे मदनमोहन हैं और जब तुमसे अलग रहते हैं तब समस्त स्थावर जंगम को मोहित करने वाले होते हुए भी स्वयं कामदेव द्वारा मोहित हो जाते हैं ॥३२॥

और सुनो श्रीकृष्ण भली प्रकार सज धज कर कुञ्ज में पुष्प-शैय्या पर लेटे हुए हैं । वे अपने मन में केवल तुम्हारे ही विषय में सोच रहे हैं और किसी भी बिचार को चित्त में स्थान नहीं देते हैं । हे सखि उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि तुम्हारे ध्यान के बिना और कोई बात ही नहीं करेंगे । वे स्वयं बलवान् होने पर भी कन्दर्प के आक्रमण के सामने धैर्य्य खो बैठे हैं । केवल भ्रमर और कोकिल आदि पक्षियों का कलरव सुन अपना मन बहला रहे हैं ॥३३॥

नवीनजलद द्युतिः कनकपीत-पट्टाम्बरः
स्फुरन्मकरकुण्डलो घुसृण-चारु चर्च्चाञ्चितः ।
प्रफुल्ल-कमलेक्षणः कनक-यूथिकामाल्यवान्
शिखण्ड-कृत-शेखरः स्फुरति साध्वि ! कुञ्जे हरिः ॥३४॥
श्रीतारुण्य-महामृताब्धि-विलसत्सौन्दर्य्य-पाथःस्फुर-
ल्लावण्योच्च-तरङ्ग-भङ्गि-विलसत्कन्दर्प-भावभ्रमे ।
श्रीवंशीध्वनि-वात्ययोत्थित-पतद्योषाक्षिचेतस्तृण-
स्तम्बानाशु निमज्जयन्नपि हरिस्त्वद्वीथिमुद्वीक्ष्यते ॥३५॥

धनिष्ठा के मुख से यह बात सुन श्रीराधा बेचैन हो उठीं। आप धैर्य्य धारण कर श्रीकृष्ण के सौन्दर्य्यादि का वर्णन बड़ी उत्सुकता से सुनने लगीं। धनिष्ठा आगे कहने लगी कि हे पतिव्रते ! श्रीकृष्ण की सुन्दरता अपार है उसका क्या वर्णन करूँ नवीन जलधर के सदृश तो उनकी अंग-कान्ति है, सुवर्ण जैसी छटा का पीताम्बर धारण किये हुए हैं उनके दोनों कानों में मकराकृत कुण्डल शोभायमान हैं, उनका समस्त शरीर कुँकुम आदि सुबासित लेप द्वारा शोभा पा रहा है, नवीन खिले कमल के समान दोनों नेत्र युवतियों को अपनी ओर आकर्षण कर रहे हैं, और वे मस्तक पर मयूर-पुच्छ का मुकुट-धारण किये हुए हैं ॥३४॥

जिनकी किशोर-अवस्था का सौन्दर्य अगाध एवं अनन्त अमृत-सागर के निर्मल-जल के सदृश है, लावण्य ही उस जल में चंचल तरङ्ग है, कर्म्म-निरत काम-वासना उस समुद्र के भवँर है, वंशीध्वनि उसमें चक्रवात अर्थात् प्रबलवायु रूप है जो (घूर्णा) श्रेष्ट- तरुणियों के मन को तृण के समान्

वक्रभिदि सुविदग्धे स्वां सुवैदग्ध्य-धारां
नवतरुणिम-पूर्णे नव्य-तारुण्य-लक्ष्मीम् ।
शशिमुखि रतितृष्णामप्यमुष्मिन् सतृष्णे
सफलय वरवेशे वेशभङ्गीं समर्प्य ॥३६॥

प्रेमोद्भ्रान्तं द्रुत-स्वास्त स्मराक्रान्तं त्वदाश्रितम् ।
मूर्च्छान्तां क्लान्तिमायान्तं कान्तं कान्ते द्रुतं व्रज॥३७॥

नचाती और जन्मभर के लिये घुमाती रहती है। आज वे श्रीकृष्ण जो युवतियों के प्राण और मन को सदा अपनी ओर खींचते हैं, कन्दर्प के बाणों से विन्धे पड़े हैं और बड़ी कातर दृष्टि से तुम्हारी राह देख रहे हैं। अब तिलमात्र देर करना उचित नहीं है ॥३५॥

इसलिये हे सखि! उन रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण को अपनी वैदग्धी-धारा का अर्पण कर सफल करो वे नबयौवन से परिपूर्ण हैं इसलिये अपनी यौवन शोभा उनको अर्पित करो। वे तुम्हारे प्रेम की आकांक्षा करते करते हैं, इसलिये अपनी रति-कामना उनको समर्पण करो। वे सबसे उत्तम वेशधारी हैं इसलिये अपना शृङ्गार-रस देकर उसे उनको सफल बनाओ। हे चन्द्रमुखी! यदि किसी अरसिक जन को अपनी रसिकता दी जाती है तो वह वृथा होती है ॥३६॥

हे सखि राधे! श्रीकृष्ण तुम्हारे प्रेम के कारण उद्विग्न, आकुल, कामबाण से पीड़ित और तुम्हारे आश्रय पर निर्भर हैं, इस समय तुम्हारे वियोग में मूर्छा को प्राप्त हो गये हैं, ऐसे अपने प्रिय कान्त के निकट शीघ्र पहुँच कर उनकी रक्षा करो ॥३७॥

इति सखी-वचनामृत-पानज-प्रकट-भावचयाचित-विग्रहा ।
अतिशयोत्सुकता-जड़ताकुला द्रुतविलम्बित-यान-मतिर्बभौ ॥३८॥
ततस्तदैवागत-कुन्दवल्ल्याः स्वस्य प्रयाणाय कृतत्वरायाः ।
सा सव्यहस्तेन करं दधाना परेण लीला-कमलं चचाल ॥३९॥
पुरतस्तुलसी धनिष्ठया स-विशाखा ललिता च पार्श्वतः ।
परितश्च सखीततिः परा स्वसखीं तां परिवार्य्य सान्वयात् ॥४०
स्वसम सहचरीभिः कृष्ण-राधाङ्घ्रिसेवो-
पकरण-वलिताभिर्दासिकाभ्याश्च युक्ता ।
अनुसरति युताभ्यां सूर्य्य-पूजोपचारैः
प्रणय-सहचरी तां मञ्जरी रूप-पूर्व्वा ॥४१॥

धनिष्ठा के मुख से इस प्रकार वार्त्ता सुन श्रीराधा के अङ्ग में नाना भाव(चिन्ता,शंका,आग्रह,चापल्य,आक्षेप भावी लीलायें इत्यादि) उदय होने लगे। आप शीघ्र दर्शन प्राप्त करने की अभि-लाषा से लम्बे लम्बे पैर बढ़ाती हुई शीघ्रता से गमन करने लगीं ॥३८॥

इसी समय कुन्दवल्ली वहाँ आ पहुँची और सूर्य्यपूजा के लिये चलने को श्रीराधा से अनुरोध करने लगी। राधा अपने वाम हाथ से उसका हाथ पकड़ कर अपने दाहिने हाथ में लीलाकमल को घुमाने लगीं ॥३९॥

जब श्रीराधा पूजा के लिये चलने लगी तब उनके आगे आगे धनिष्ठा के साथ तुलसी, दायें बायें ललिता और बिशाखा और अन्य-सखियाँ चारों ओर घेरकर चलने लगीं ॥४०॥

और प्रणय-सहचरी श्रीरूपमञ्जरी धनिष्ठा व तुलसी को सूर्य्य-पूजा की सब सामग्री लेकर आगे आगे चलने का आदेश दे स्वयं श्रीराधा के पीछे पीछे चलने लगी। दूसरी सखियाँ

व्रजाद्विनिष्क्रम्य ददर्श सा पुरः सुमङ्गलां स्त्रीं दधिपात्र-धारिणीम्।
चाषं द्विजातिं नकुलं मृगावलीं धेनुं सवत्सां वृषभञ्च दक्षिणे ॥४२
सरसि विकच-पद्मे वेष्टिते भृङ्गपंक्त्या
मदिरयुगलमुद्यल्लास्यमालोक्य बाला।
प्रचलदलकपाली-सङ्गिरिङ्गत्सुनेत्र-
स्वरमण-मुखबिम्ब-भ्रान्तिभाक् स्तम्भितासीत् ॥४३॥
इति शुभ-शकुनेच्छोद्धुत-मुन्मन्थराणां
बिबिध-कुटिल-हास्योल्लासमातन्वतीनाम्।
प्रणय-सहचरीणां श्रेणिभिः पूर्ण-पार्श्वा
मदगज-गुरुयाना काननाभ्यर्णमाप ॥४४॥

भी श्रीराधा-कृष्ण की चरण-सेवा योग्य सब वस्तुएँ लेकर उनके पीछे पीछे चलीं ॥४१॥

इस प्रकार जाते जाते जब ब्रजसीमा के पार पहुँच गईं तब देखती हैं कि एक सधवा स्त्री हाथ में दधिपात्र लिये खड़ी है, दाँई ओर नीलकण्ठ पक्षि, ब्राह्मण, नेवला, मृगश्रेणी, बच्चे सहित गौ और बैल के भी दर्शन हुए ॥४२॥

इसके बाद श्रीराधा सरोवर के बीच में एक खिले हुए कमल को देख श्रीकृष्ण के मुख-भ्रम से और उस कमल के ऊपर नृत्यशील दो खञ्जन पक्षियों को उनके नेत्र युगल जान, और आस पास उड़ते हुए भ्रमरों की पक्तियों को उनकी अलकाबली मान आश्चर्य्य से स्तम्भित हो गईं ॥४३॥

शुभ-सूचक शकुन समूह दर्शन करने से श्रीराधा के आनन्द की सीमा न रही। हास्य विनोद करती हुई सखियों के बीच मत्त-हथनी के समान गमन करती हुई वे वन के निकट जा पहुँची ॥४४॥

इयमथ तरुवल्ली-वृन्दमुत्फुल्लयन्ती
मदकल-कलकण्ठी-काकली-कण्ठनादा ।
मधुकर-कलविङ्की-झङ्कृतोच्छिञ्जितोम्मर्म्मि-
र्वनमनु बनजाक्षी माधवश्रीर्विवेश ॥४५॥
फुल्लश्यामलतोज्ज्वलं सुतिलकश्रीयुक् बिशालार्ज्जुन-
प्रोत्फुल्लोच्च-हलिप्रियं शिखिदल-श्रेणीभिराभूषितम् ।
पुन्नागामल-चम्पकालिकृत-मालालङ्कृतं पल्लवै-
र्दीव्यत्काञ्चन-विद्रुमादि-वलितं तापिञ्छ-कान्त्युल्लसत् ॥४६॥

कमलनयनी श्रीराधा सखियों के बीच गमन करते करते बृक्ष, लतागणों को उत्फुल्ल करती हुई कोकिलकण्ठ को लजाने वाली मधुरबाणी मे वन-शोभा का बर्णन करती हुई एवम् भ्रमर और चड़ूई पक्षि की ध्वनि से भी श्रेष्ठ अपने आभरणों की झँकार करती हुई बसन्त की शोभा के समान बनके बीच प्रवेश हुईं। बसन्त आने पर जिस प्रकार बन की शोभा बढ़ जाती है उसी प्रकार श्रीराधा के अंग-प्रत्यंग में सौन्दर्य फूट उठा ॥४५॥

वहाँ पहुँचकर राधा ने देखा कि-समस्त बन में श्रीकृष्ण-अङ्ग-कान्ति के समान शोभा का विस्तार हो रहा है। वह शोभा कैसी है? समस्त बन प्रफुल्ल श्यामलताओं से भरा है। श्रीकृष्ण-कान्ति भी श्याम-वर्ण है। वन तिलक (तिल) के फूलों से सुशोभित है, श्रीकृष्ण के ललाट पर भी तिलक शोभायमान है, वन उत्कृष्ट अर्जुन तथा उच्च कदम्ब बृक्षों से परिपूर्ण है, श्रीकृष्ण के भी बिशाल, अर्जुन हलधर आदि सखा हैं। वन में मयूर घूम रहे हैं, श्रीकृष्ण के मस्तक पर भी मयूर-पुच्छ मुकुट

गुञ्जा-पुञ्ज-विराजितं श्रमहरच्छाया-कदम्बाश्रयं
वेणुध्वान-मनोहरं प्रविलसत्श्रीपीतनार्चाञ्चितम् ।
फुल्लन्मन्मथ-सङ्कुलं बरवयःशोभा-विलासास्पदं
सापश्यत् पुरतो बनं बपुरिब प्रेष्ठस्य सर्व्वेष्टदम् ॥४७॥ युग्मकम्
पतति नयनमस्या यत्र यत्रात्र बस्तु-
न्यखिलमिदमघारेस्तत्तदङ्गायमानम् ।

शोभित है। वन में चारों ओर पुन्नाग और बिमल चम्पक-लतायें फैली हुई हैं, श्रीकृष्ण भी चम्पक और पुन्नाग-फूलों की मालायें धारण किये हैं। वन में काञ्चन और विद्रुम-वृक्ष लगे हुए हैं, श्रीकृष्ण भी काञ्चन और प्रवाल-आदि के बने आभरणों से रंजित हैं। बन में तमाल-वृक्ष शोभा बढ़ा रहे हैं, श्रीकृष्ण के अङ्ग की कान्ति भी तमालबृक्ष के समान है ॥४६

वन गुञ्जाफल के वृक्ष समूह से भरा हुआ है, श्रीकृष्ण भी गुञ्जाहारों से अलङ्कृत हैं । बन में अनेक छाया-दार कदम्ब-बृक्ष हैं जो श्रम को दूर करते हैं, श्रीकृष्ण भी घने छाया-दार कदम्ब-वृक्ष का आश्रय लेते हैं। बन में बाँसों से ध्वनि निकलती है, श्रीकृष्ण भी ध्वनि-बाली वंशी धारण किये हैं। बन आम्र-बृक्षों की मञ्जरी से परिपूर्ण है, श्रीकृष्ण के भी समस्त अङ्ग पर केसर आदि सुबासित द्रव्यों का लेपन हो रहा है। वन खिले हुए मदन-बृक्षों से शोभायुक्त है, श्रीकृष्ण भी कमलों से भूषित हैं। बन, उत्तम उत्तम पक्षियों का विलास स्थान है, श्रीकृष्ण भी किशोर अवस्था द्वारा विलास के केन्द्र रूप हैं। इस प्रकार बन-शोभा का दर्शन कर श्रीराधा समस्त बनको अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का अङ्ग स्वरूप बोध करने लगीं ॥४७॥

मदयदपि हृदन्तः शस्त्रतामेत्य सद्यः
प्रहरति विषमेषोश्चित्रमेतच्च तत्र ॥४८॥
लसत्सहचरी-युक्ता मत्तालि-नवमालिका ।
बिशाखालि-कृतच्छाया बिकसन्मदनाकुला ॥४९॥
फुल्ल-मञ्जुलता-हृद्या सर्व्वदा रूप-शोभिता ।
सुशीतल-कुचस्फीता कृष्ण-गोतर्पि-वैभवा ॥५०॥

उस बनकी जिस जिस वस्तु पर श्रीराधा की दृष्टि पड़ने लगी है वही वही वस्तु श्रीकृष्ण के अङ्ग के सदृश प्रतीत होने लगी, उस से उनका हृदय कामबाण बिद्ध होकर जर जर होने लगा है ॥४८॥

इधर सखियाँ भी श्रीराधा को मानो साक्षात् अटवी रूप बोध करने लगीं । कारण-श्रीराधा जिस प्रकार सखियों से घिरी रहती हैं, वन भी उसी प्रकार झिन्टी वृक्षों से शोभा पा रहा था । श्रीराधा जिस प्रकार भ्रमरगण से युक्त मल्लिका-माला से अलङ्कृता हैं बन भी उसी प्रकार मल्लिका पुष्प समूह से शोभायमान था । श्रीराधा जिस प्रकार विशाखा-सखी का अनुगमन करती हैं वन भी उसी तरह अनेक शाखाओं से ढका हुआ है । श्रीराधा जिस भाँति कामातुरा है, वन भी धतूरे के फूलों के कारण मदमत्त था ॥४९॥

श्रीराधा जिस प्रकार मञ्जुलता अर्थात् सौन्दर्य्य से खिल रही थी, बन भी उसी प्रकार मञ्जु-(मनोहर) लताओं से परिपूर्ण है । श्रीराधा जिस भाँति, समस्त अवस्थाओं में सदा ही सौन्दर्य की मूर्त्ति हैं वन भी उसी प्रकार भिन्न भिन्न काष्ठो द्वारा शोभायमान है । श्रीराधा की शीतल दोनों कुचायें

सुवयः-सुषमा-पूर्णा व्याकुला बहुवारकैः ।
श्रीराधेव वयस्याभिः सुखदा ददृशेऽटवी ॥५१॥ सन्दानितकम्

यूथेश्वरीभिः स सखीकुलाभि-रन्विष्यमाणो वन-गह्वरेषु ।
कथं न लभ्यो निपुणाभिरेताः प्राप्ताः कथं हास्यति वा स लुब्धः ॥

जिस प्रकार शोभित हैं वन भी उसी प्रकार लकुच-वृक्षों से भरपूर है। श्रीराधा जिस प्रकार अपने प्रिय श्रीकृष्ण की गो (इन्द्रियों) को तृप्त करती हैं वन भी उसी प्रकार गौओं को तृण आदि वस्तुओं से तृप्त करता है ॥५०॥

श्रीराधा जिस प्रकार किशोर-अवस्था की शोभा से परिपूर्ण हैं, वन भी उसी उसी भाँति मनोहर पक्षियों से भरा हुआ है। श्रीराधा जिस प्रकार अपनी सास और ननद की कुटिलताओं से अत्यन्त उद्विग्न रहती हैं वन भी उसी प्रकार लिसोड़े के वृक्षों की अधिकता से क्षुब्ध है ॥५१॥

श्रीराधा वन की यह शोभा देख स्थायीभावों में मग्न हो गईं किन्तु साथ ही साथ उनके हृदय में एक व्यभिचारी अर्थात् शंका-भाव भी उदय हो गया। वे सोचने लगीं कि ये सब यूथेश्वरी सखियाँ चन्द्रावली की प्रेरित शैव्या के समान श्रीकृष्ण की खोज कर रही हैं क्योंकि ऐसा कौन होगा जो इस मनोहारी वन में श्रीकृष्ण संग न चाहेगा। ये सब सखियाँ बड़ी चतुरा हैं, इनमें से कोई न कोई अवश्य ही प्रियतम को खोज लेगी। उनको पाकर फिर छोड़ेगी भी नहीं। यह भी निश्चय ही है कि रसिकराज प्रियतम उनकी मनो-कामना भी पूर्ण कर देंगे। कौन कह सकता है कि इस प्रकार की घटना कहीं न कहीं हो जाये ॥५२॥

इति निज-हृदि राधा सन्दिहानापसव्ये
वनमनु विलसन्तं कृष्णसारं मृगीभिः।
शिखि-वरमपि सव्ये केकिनीभिः समीक्ष्य
प्रिय-मृगशिखि-बुद्ध्या भ्रान्तितः शङ्कितासीत् ॥५३॥युग्मकम्
तमालमष्टापद-बद्धमूलं सा वेष्टितं फुल्ल-सुवर्ण-यूथ्या।
शाखाग्र-नृत्यच्छिखिनं समीक्ष्य निर्णीत-चेता विचिकित्सिताभूत् ॥
प्रेमेर्ष्या-भुजगी-दष्टा नष्ट-पण्डा प्रचण्डधीः।
चण्डीश-चण्डकोदण्ड-भ्रूदण्डाह धनिष्ठिकाम् ॥५५॥

इस प्रकार की भावनायें मन में लिये हुए श्रीराधा ने देखा कि दक्षिण-दिशा में विलास-रत कालामृग मृगीगण के साथ और वाम दिशा में मयूरगण मयूर के साथ रतिक्रीड़ा कर रहे हैं। तव उनको भ्रमबश यह शंका होगई कि यह कालामृग और मयूर हमारे प्राणप्यारे श्रीकृष्ण ही हैं। जो इस बन में अन्य नायिका के साथ बिहार कर रहे हैं। इस प्रकार भावाविष्ट हो श्रीराधा ईर्षा वश स्वाभाविक ज्ञान खो बैठी ॥५३॥

कुछ और आगे चली तव देखा कि जुईलता एक तरूण तमाल से लिपटी हुई है। उसकी जड़ के ऊपर सुवर्ण निर्मित बेदी बनी है। वृक्ष की शाखाओं पर एक मयूर नृत्य कर रहा है। यह देख श्रीराधाजी को शंका हुई कि यह तो हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। कारण-श्रीराधा पहिले से ही शंका कर रही थी, अब बे-स्वर्ण-वेदी को तो पीताम्बर,-लिपटी हुई लता को अन्य कोई नायिका, शाखा के ऊपर मयूर को श्रीकृष्णजी का मुकुट, तमाल-वृक्ष को उनका श्यामरूप, समझने लगी। यह सव अवलोकन कर यही भ्रम हुआ कि साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं ॥५४॥

किमिदमयि धनिष्ठे कुत्र किं पश्यताग्रे
वनमिदमिह किन्तद्वन्यजातं न चान्यत् ।
नटनमिदमपूर्व्वं यच्छठेन्दोः पुरस्तात्
कलयसि नहि धुर्त्ते मुद्रिताक्षी किमासीः ।.५६।।
ललिता-प्रभृतीरथावदत् प्रियसख्योऽद्भुतमत्र शर्म्मदम् ।
युगपन्नटनं शठेशयोर्नटनट्योरनयोर्नु पश्यत ।।५७।।

यह सब देख श्रीराधा ईर्षानल में जलने लगी और स्वाभाविक बिवेकबुद्धि भी खो बैठी उस समय मन में यही निश्चय किया कि यह धनिष्ठा जब यहाँ से हमारे पास गई थी तब यह सब कुछ जानती थी, उस पर भी यह दुष्टा उस धूर्त्तराज श्रीकृष्ण की दूति बनकर हमारे निकट गई । यह निर्लज्जा हमको भी अपने क्रीड़ामृग के साथ उपभोग कराना चाहती है । इस प्रकार प्रचण्ड रूप धारण कर श्रीराधा धनिष्ठा का तिरस्कार करती हुई कहने लगी ।।५५।।

राधिका- अयि धनिष्ठे ! यह सामने क्या है ।

धनिष्ठा- कहाँ ?

राधिका- सामने देख ।

धनिष्ठा- यह तो वन है ।

राधिका- वन ही में तो यह सामने क्या है ?

धनिष्ठा- यह तो सब बन की ही बस्तुएँ है और कुछ भी नहीं है ।

राधिका- सामने जो यह धूर्त्तराज श्रीकृष्ण नाच रहे है, क्या दिखाई नहीं दे रहे ? आँखे बन्द कर रक्खी हैं ? ।।५६।।

श्रीराधा धनिष्ठा से इस प्रकार कहने लगी । सुवर्ण-जुई लता सहित पवन के बेग से हिलायमान तमाल वृक्ष, एवं उसके

निजवाङ्मधुना विमोहिता स्ववशीकृत्य भृशं धनिष्ठिका ।
हरिणा निज-धाष्ट्र्य-नर्त्तने विहितासौ वत कूट-नर्त्तकी ॥५८॥
रतहिण्डक-हिण्डितासकौ छलदूत्याभिध-नृत्यपण्डिता ।
नयतीह विधातुमुत्सुका शठ-नृत्ये भवतीः सभासदः ॥५९॥
कलयत स सुरङ्गाख्योऽपि जात्या कुरङ्गः
प्रणय-सहचरीं स्वां रङ्गिणीं वञ्चयित्वा ।
विलसति हरिणीभिमां विलोक्याप्यमुञ्च-
न्ननु हरि-शठतास्मिन् सङ्गतः संससर्ज ॥६०॥

एवं उस की शाखा के ऊपर नृत्यशील मयूर देख श्री राधिका को भ्रम हो गया कि यह तो हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण किसी अन्य रमणी के साथ विहार कर रहे हैं। तब वे ललितादि सखियों को सम्बोधन कर कहने लगीः- हे सखियों यह देखो शठराज नट, नटी के साथ नाच रहे हैं ॥५७॥

और सुनो-इन्होंने अपनी मीठी मीठी रसयुक्त बातों से धनिष्ठा को मोहित कर अपने बशीभूत कर रक्खा है। अपनी सारी कुटिलता का पाठ इसको पढ़ा दिया है ॥५८॥

यह धनिष्ठा इस महान रतिचोर (जो एक को छोड़ दूसरी नायिका का उपभोग करे-) कृष्ण की ही भेजी हुई यहाँ आई है यह छल-कपट में बिख्याता है और छल करके हमलोगों को इस धूर्त्तराज के साथ उपभोग कराने के निमित्त लिबा लाई है ॥५९॥

दुष्टजनों का संग कितना भयङ्कर होता है ? संगदोष के कारण इस धनिष्ठा की क्या नहीं दुर्दशा हुई है, इस धूर्त्तराज कृष्ण के संग से इसका पालतू सुरंग नाम का मृग भी सदाचार को छोड़ नीच कर्म्म करने लगा है। देखती नहीं हो

मत्सङ्गिणीं प्रणयिणीं दयितां मयूरीं
वीक्ष्यापि सम्मुख-गतां वत केकिनीभिः।
निःशङ्कमुल्लसति ताण्डविकः कलापी-
सङ्गेन धाष्ट्र्यमिह संक्रमितं वकारेः॥६१॥
अथावदत् स्मेरमुखी धनिष्ठा त्वयैव सर्व्वा निज-चित्र-नृत्ये।
वयं कृताः साध्वि सभासदोऽस्मिन् प्रीताः स्म दृष्ट्वा यददृष्टपूर्व्वम्॥

इसका यह हरिण अपनी प्रियतमा हमारे द्वारा पालित रंगिणी नाम की हरिणी को हमारे साथ देखते हुए भी दूसरी हरिणी के साथ व्यभिचार रत हो रहा है॥६०॥

इस शठ चूड़ामणि की संगति के प्रभाव से बेचारा ताण्डविक मयूर भी अपने सद्गुण त्यागकर शठता में तत्पर हो गया है। जो हमारी पालित अपनी प्रियतमा सुन्दरी नाम की मयूरी को हमारे साथ देखकर भी अन्य मयूरी के साथ बिलास कर रहा है और उसे छोड़ता नहीं है। (श्रीराधा ने एक हरिणी पाल रक्खी है जिसका नाम रंगिणी है, श्रीकृष्ण ने भी एक हरिण पाल रक्खा है, उसका नाम है सुरंग। श्रीराधा ने सुन्दरी नाम की मयूरी पाल रक्खी है और श्रीकृष्ण ने ताण्डविक नाम का मयूर पाला है। श्रीराधा-कृष्ण ने कौतुक वश इनका बिबाह करदिया है)॥६१॥

इस पर धनिष्ठा हँसते हँसते राधिका को सम्वोधन कर कहने लगी कि हे साध्वी! आज तो तुमने हम सबको अपनी मनो-भावना का अपूर्व चित्र दिखलाया। ऐसा नृत्य तो हमने इसके पहिले आज तक न कभी देखा न सुना। जो कुछ भी हो हम इससे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं॥६२॥

दुर्लभे सुलभे चार्थे यत्रासक्तिस्तु रागजा ।
तत्र नित्यं रागभाजां प्रत्यूहाशङ्किनी मतिः ॥६३॥
आगच्छतालयोऽद्भुतनृत्यमेतत् कृष्णाय तूर्णं विनिवेदयामः ।
निशम्यमुष्यां स यथा विलासी गुणिन्यलं रज्यति यद्गुणज्ञः ॥६४
अथ सा स्मित-संवृताननं स्वसखीवृन्दमवेद्य विस्मिता ।
पुनरप्यवलोकनाल्लतातरुसङ्गं त्ववधार्य्य लज्जिता ॥६५॥

हे राधे ! जिस वस्तु में जिसका अत्यन्त अनुराग हो, वह चाहे प्राप्य हो अथवा अप्राप्य हो, प्रेमीजन को उसमें विघ्न की सम्भावना रहती ही है । इस प्रकार शंकायुक्त रहना उसका स्वभाव ही है ॥६३॥

अन्य-सखियों को सम्बोधन कर धनिष्ठा आगे कहने लगी कि हे सखियो इधर आओ । हम लोगों को चाहिये कि हमने जो राधा का यह अद्भुत नृत्य अर्थात् वाणी-विलास देखा है शीघ्र रसिक शिरोमणि कृष्ण को जाकर बताएं । वे तो रति-विलास कार्य्य में अपने को परतन्त्र मानते हैं, किन्तु यह कथा सुन वे अवश्य ही हमारी इन स्वामिनीजी के प्रति अधिक अनुराग करने लगेंगे क्यों कि वे गुणी है और गुणवानों का आदर करना जानते हैं ॥६४॥

धनिष्ठा के मुख से इस प्रकार परिहास युक्त कथा सुन सब सखियाँ खिलखिला कर हँसने लगीं । यह देख श्रीराधिका सकुचा गईं और फिर एक बार उसी दिशा की ओर दृष्टि निक्षेप करने लगी । उनको बड़ी लज्जा अनुभव होने लगी कि इस समय न तो वहाँ कृष्ण हैं और न और कोई रमणी ही है, केवल लतायें वृक्षों से लिपटी हुई हैं ॥६५॥

इत्थं माधव-सङ्ग-रङ्ग-विकसद्वृन्दावनालोकना-
त्तां कृष्णाद्भुत-माधुरी-वरसुधा-पानातितृष्णाकुलाम्।
प्रेमोन्माद-विघूर्णितान्तरतया नानाभ्रम-व्याकुलां
तत्कृष्णाप्ति-समुत्सुका विजहसुः सख्यश्चलन्त्यो द्रुतम् ॥६६॥
मदनरण-वाटिकाख्य-प्रियकेलि-कुसुमवनस्य मध्ये सा।
कुञ्जस्थित-रविमूर्त्तेः सविधं समुपस्थिताकस्मात् ॥६७॥
प्रणम्य तां भक्तिभरेण तन्वी बद्धाञ्जलिर्वल्गु वरं ययाचे।
निर्विघ्न-गोविन्द-पदारविन्द-सङ्गोऽस्तु मे देव भवत्प्रसादात् ॥६८

समस्त सखियों ने देखा कि श्रीराधिका भावोन्मत्ता हो श्रीकृष्ण के संग रंग कर रही है। यह देख वे लोग हास्य करती हुई उनको आगे लिवा चलने लगीं। श्रीराधा की उस समय कैसी भावनायेंथी—उनके मन में श्रीकृष्ण-माधुर्य्य दर्शन करने की इतनी तीव्र—उत्कण्ठा बढ़ी हुई थी कि प्रेम के कारण उनको अपनी अवस्था का तनिक भी ज्ञान नहीं था और उन्मत्ता की तरह नाच नाच कर घूम रही थीं। इस समय उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग से नाना भाव उदय हो रहे थे। वे विलास-भूमि बृन्दावन में श्रीकृष्णचन्द्र की प्राप्ति के हेतु अत्यन्त आकुला थीं ॥६६॥

तब श्रीराधिका 'कामरण' नामक, श्रीकृष्ण की एक मनोहर कुञ्ज में पहुँच, कुसुम—वाटिका में स्थित सूर्य्यदेव की प्रतिमा के सामने उपस्थित हो गई ॥६७॥

और भक्ति-भाव से हाथ जोड़ सूर्य्य--मूर्त्ति को प्रणाम किया। आप कातर स्वर से प्रार्थना करने लगी कि हे देव अनुग्रह कर यह बरदान दो कि विना विघ्नबाधा शीघ्र प्रियतम कृष्णचन्द्र का संग प्राप्त हो ॥६८॥

प्रतिमा-फुल्ल-दृग्वक्त्र-प्रसादोत्फुल्लमानसा ।
पुनस्तां प्रणिपत्येयं सखीभिः सह निर्गता ॥६९॥
श्रीसूर्य्यपूजा-सम्भार-सहिते परिचारिके ।
स्थिते तत्रैव तद्वाटी-देवीभिर्ललिताज्ञया ॥७०॥
दिशि दिशि विसरन्तीं श्रीमदङ्गान्मुरारे-
र्मृगमद-परिलिप्तेन्दीवराणामिवौघैः ।
पथि परिमलधारां प्राप्य राधोन्मदिष्णुः
सपदि तमनु भृङ्गीवोत्पतिष्णुस्तदासीत् ॥७१॥
कृष्णः कान्ता-तनु-सुरधुनी-सौरभाच्छामृतोर्म्मि-
धारामाराद्विपिन-वलयं प्लावयन्तीमकस्मात् ।
काश्मीराक्ताम्बुज-परिमलोल्लङ्घिनीं घ्राणपूर्णा-
माघ्रायासीत् पुलक-जटिलो भृङ्गवत् प्रोत्पतिष्णुः ॥७२॥

मूर्त्ति को हँसते देख श्रीराधा ने अनुमान किया कि देव हमसे प्रसन्न जान पड़ते हैं। यह विचार कर उन्होंने पुनः प्रणाम किया और सब सखियों सहित कुञ्ज के बाहर आ गईं ॥६९॥

इसके बाद ललिता-सखी की आज्ञानुसार तुलसी और धनिष्ठा वन देवियों के साथ सूर्य्य पूजा का सब सामान ले उसी-फूल बाटिका में पहूँच गई ॥७०॥

तब सखियों सहित श्रीरधिका ने बन में प्रवेश किया। उस समय समस्त बन श्रीकृष्ण की अंग सौरभ से कस्तूरी-मिश्रित नीलकमल की सुगन्धी के समान सुबासित हो रहा था। उस सुगन्धि को प्राप्त कर श्रीराधिका उन्मत्त भ्रमरी के समान उड़कर श्रीकृष्ण के पास पहुँचने की इच्छा करने लगी ॥७१

श्रीराधा की अंग रूप गंगा की सुनिर्मल अमृत-धारा ने

परिमल-मिलनान्मिलितां वनमनु दयितां दवीयसीं मत्वा।
हरिणा प्रहिता वृन्दा तामानेतुं समुत्सुकेन ॥७३॥
कुञ्जे नवाख्यमथ कुञ्जनृपस्य धाम
प्राप्ता ददर्श मिलितां स्वगति-प्रवृत्त्यै ।
राधोत्सुकेन हरिणा प्रहितां हि वृन्दां
स्वाभीष्टसिद्धिमिव मूर्त्तिमतीं पुरः सा ॥७४॥

निकटवर्ती वन-भूमि को सिञ्चन करती हुई और केसर सुगन्धि युक्त कमल-गन्ध को भी तिरस्कार करती हुई जब नासिका-पुट द्वारा श्रीकृष्ण के हृदय को स्पर्श किया तब वे अतिशय रोमाञ्चित हो गये और भ्रमर के समान उन्मत्त हो उड़कर श्रीराधिका के पास जाने की इच्छा करने लगे-अर्थात् श्री-राधाजी के अङ्ग की सौरभ इतनी माधुर्य्यमय थी कि श्री-कृष्ण उसकी सुगन्धि से मदमत्त हो गये ॥७२॥

श्रीराधा के अंग से निकली सुगन्धि से सारा बन सुवासित और आमोदित हो उठा। श्रीकृष्ण समझे कि अभी श्री-राधा दूर में हैं और यहाँ तक आने में देर लगेगी तब वे बहुत बेचैन होने लगे। उनको शीघ्र लिवा लाने के लिये वृन्दा-देवी को भेजा ॥७३॥

श्रीकृष्ण की आज्ञा से श्रीवृन्दादेवी नव कुञ्ज में जा पहुँचीं। श्रीराधिका उनको अपने सम्मुख आया देख मन में विचारने लगी कि यह अवश्य ही हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण की भेजी हुई हमको साथ लिवा चलने के लिये आई है। ऐसा सोच उनको अपनी अभीष्ट की साक्षात् मूर्त्ति प्रतीत करने लगी-अर्थात् अब इनके द्वारा हमारी मनोकामना सिद्ध होगी ऐसा निश्चय करने लगी ॥७४॥

८)

कृष्णोत्तंसचरं तस्यै वृन्दापीन्दीवर-द्वयम् ।
तदङ्गसङ्ग-गन्धान्धीकृत-पुष्पन्धयं ददौ ॥७५॥
तत्स्पर्श-सौरभ्यमवाप्य कृष्णो-पस्पर्श-गन्धानुभवेन मत्ता ।
समुद्गवद्भाव-पिधान-यत्ता सम्वादमुत्काशु तया व्यधत्त ॥७६॥
कस्माद्वृन्दे प्रियसखि हरेः पादमूलात् कुतोऽसौ
कुण्डारण्ये किमिह कुरुते नृत्य-शिक्षां गुरुः कः ।
तं त्वन्मुर्त्तिः प्रतितरुलतं दिग्विदिक्षु स्फुरन्ती
शैलूषीव भ्रमति परितो नर्त्तयन्ती स्वपश्चात् ॥७७॥

श्रीवृन्दा ने श्रीकृष्ण के दिये हुये उनके कर्ण-भूषण दो नील कमल, जिनमें लिप्त उनके अङ्ग की सुगन्ध, भ्रमरों को उन्मत्त बना देती थी श्रीराधिका के हस्त-कमल में समर्पण कर दिये ॥७५॥

उन दोनों पुष्पों की गन्ध और स्पर्शमात्र से श्रीराधिका श्रीकृष्ण के अंग की सुगन्ध अनुभव कर अत्यन्त उन्मत्ता हो गईं और उनमें विविध सात्त्विक भाव उदय होने लगे किन्तु उन भावों को यत्न सहित छिपाते हुए उत्कण्ठा के साथ वृन्दाजी से कथोपकथन करने लगीं ॥७६॥

श्रीराधिका– कहो वृन्दे ! कहाँ से आना हुआ ?
वृन्दा– श्रीकृष्ण के निकट से
श्रीराधिका– वे कहाँ विराजमान हैं ?
वृन्दा– तुम्हारी कुण्ड के किनारे वाले वन में ।
श्रीराधिका– वहाँ क्या कर रहे हैं ?
वृन्दा– नृत्य शिक्षा पा रहे हैं
श्रीराधिका– सिखाने वाले कौन हैं ?

भ्रान्ता वृन्दे त्वं न मूर्त्तिर्ममैषा पद्मालयाप्ताबुत्पतिव्याद्विरेफः ।
तृष्णा-घृष्णाक् भ्राम्यते शैव्ययासौ तद्गन्धाढ्यद्धारया वात्ययैव ॥
वात्याहत्या चक्षुना लम्भितासौ
शैव्या-वात्या सापि सार्द्धं स्वसख्या ।
गौरी-सङ्गोत्केन तेन स्वसङ्गाद्
गौरीतीर्थं तत् सपर्य्याच्छलोक्त्या ॥७६॥
तद्वार्त्तया नः किमिहास्त्यरिष्ट-कुण्डोत्थ-पातालज-गाङ्गवारि ।
स्नात्वा यथाय्र्याचरणानुशासनं मित्रं समभ्यर्च्य गृहं प्रयामः ॥

वृन्दा– तुम्हारी प्रतिमूर्त्ति रूपा प्रत्येक तरुलता कुशल अभिनेत्री के समान सब दिशाओं में स्फूर्ति उत्पन्न कर अपने पीछे पीछे श्रीकृष्ण को नचा रही हैं ॥७७॥

श्रीराधिका– अयि वृन्दे ! यह तो तुमको धोखा हुआ है। यह मूर्त्ति हमारी नहीं है। पद्मा की सखि चन्द्रावली को पाने के लिये उनके अङ्ग की सुगन्ध से युक्त शैव्या रूपा घूर्णि-वायु से व्याकुल हो भ्रमर के समान श्रीकृष्ण भटक रहे हैं अर्थात् वे चन्द्रावली के अंग की गन्ध पा पागल की भाँति इतस्ततः घूम रहे हैं ॥७८॥

वृन्दा– हे राधे ! तृणावर्त के वध करने में निपुण श्रीकृष्ण ने तुमको गौरी अर्थात् सुन्दर जान तुम्हारे संग के लिये समुत्कण्ठ हो उस वात्या-रूप शैव्या को कपट से उसकी सखी चन्द्रावली सहित गौरी-पूजा के निमित्त गौरी-तीर्थ में भेज दिया है ॥७९॥

श्रीराधिका– वृन्दे ! हमको इन बातों से क्या प्रयोजन है ?। हम तो अपनी सास की आज्ञा से श्यामकुण्ड की पाताल-

क यानं ते वृन्दे ! तव चरणराजीव-सविधे
किमर्थं ते राज्याद्भुत-भविक-विज्ञापन-कृते ।
वदैतत किं श्रीमाधव-सुविभवालङ्कृतमिदं
मुहुर्वृन्दारण्यं लसति भवदालोकन-कृपाम ॥८१॥

अथावदत् कुन्दलता प्रगल्भा विमुञ्च वृन्दे निज-कूटदूत्यम ।
मय्यर्पिता सूर्य्य-समर्चनार्थं निजार्य्यया कृष्ण-सशङ्कयेयम ॥८२

गंगा में स्नान कर सूर्य्य-पूजा करने के बाद घर लौट जायेंगी ॥८०॥

श्रीराधिकाजीने आगे फिर पूछा- अब किस ओर जाने का विचार है ?

वृन्दा- तुम्हारे पास ।

श्रीराधिका- किस हेतु ?

वृन्दा- तुम्हारे राज्य की विचित्रता वर्णन करने के लिये ।

श्रीराधिका- कौनसी विचित्रता ?

वृन्दा- वृन्दावन माधव के अर्थात बसन्त के श्लेष में कृष्ण के माधुर्य्य से शोभा को प्राप्त है । अब उसकी यही कामना है कि तुम उसकी शोभा के दर्शन करो । अर्थात् श्रीकृष्ण के समीप शीघ्र चली जाओ ॥८१॥

समयानुसार कार्य्यकुशला कुन्दलता इस समय वृन्दा से कहने लगी कि इस प्रकार की कपट-युक्त बातों को अब छोड़ो । क्या तुमको पता नहीं कि इनकी सास जटिलाजी को श्रीकृष्ण की ओर से बड़ी शंका रहती है और यही कारण है कि उन्होंने इनको सूर्य्यदेव की पूजा के लिये हमारे साथ भेजा है ॥८२॥

पाताल-गङ्गा-जलजेऽरिष्टमर्दि-सरस्यमूम ।
संस्नाप्य निभृतं नेष्ये पूजायै सूर्य्य-वेदिकाम ॥८३॥

न यामस्तत्र चेत् कृष्णो मनोगङ्गामयामहे ।
कृष्णगन्धि-दिश्यसौ यन्न नेया जटिलाज्ञया ॥८४॥
बृन्दाब्रवीत कुन्दलते किमर्थं हरेर्भिया हिण्डसि चित्तगङ्गाम् ।
उपायमेकं शृणु येन तत्र गता अपि द्रक्ष्यति वः स नैव ॥८५॥
कृष्णः कान्तासरसि मदनोद्घूर्णितात्मास्ति कुञ्जे
यूयं वासन्तिक-वनपथा पूर्वतः सुष्ठु गत्वा ।
तीर्थे पादाम्बुज-रसमयेऽरिष्टहन्तुः प्रशस्ते
स्नात्वा कामं ब्रजत निभृतं साध्वि ! केनाप्यदृष्टाः ॥८६॥

तव ही तो में इनको श्यामकुण्ड की पाताल-गंगा में स्नान कराकर एवं छिपाकर सूर्य्यदेव की पूजा कराने के उनकी वेदी के सामने लिये जा रही हुँ ॥८३॥

हे बृन्दे ! यदि श्यामसुन्दर उस ही कुण्ड पर हैं तो हम वहाँ नहीं जायेंगे, मानसगंगा चले जायेंगे क्यों कि जटिला जी की ऐसी ही आज्ञा है कि जहाँ श्रीकृष्ण हों वहाँ राधा को कभी न ले जाना। इसलिये मैं इनको उस स्थान पर न ले जाऊँगी जहाँ श्रीकृष्णजी की गन्ध भी हो ॥८४॥

बृन्दा बोली कि श्रीकृष्ण के भय से मानस-गंगा क्यों जाती हो, इच्छुक स्थान पर ही क्यों नहीं जाती। एक ऐसा उपाय बताती हूँ कि वहाँ रहते हुए भी तुम लोगों को श्रीकृष्ण देख तक भी न सकेगें ॥८५॥

सुनो, वह उपाय इस प्रकार है-श्रीकृष्ण इस समय राधाकुण्ड पर किनारे वाले कुञ्ज में काम-पीड़ा से व्याकुल

अवदल्ललिता कुन्दलते ! किं निज-देवरात् ।
हरेर्विभेषि मुग्धेव प्रगल्भाप्यप्रगल्भतः ॥८७॥
याम: स्वकुण्डं पश्यामो माधवीयां श्रियं वने ।
स्नात्वा पुन: समेष्यामः किं न कृष्णः करिष्यति ॥८८॥
स्त्रीणां स्वैरं क्रीड़न-स्थानतो नः पुंभिर्द्रष्टुं स्थातुमप्यत्ययोग्यात् ।
तूर्णं वृन्दे ! यर्हि निःसारयामुं गोपातुर्वा तत्र किं कार्य्यमस्य ॥
अहमतिमृद्वी हरिरति चण्डः सुकरः कथमिह वर्ज्जन-दण्डः ।
अपसार्य्यस्ते सखि ! स शिखण्डी यदसि प्रखरा गुरुरतिचण्डी ॥

होकर आँख बन्द किये बैठे हैं । तुम लोग पूरब की ओर से माधवी-बन के रास्ते से चल कर, श्रीश्यामकुण्ड में स्नान कर बिना भय चली जाना कोई भी तुमको देख न सकेगा ॥८६॥

यह सुन श्रीललिता बोली कि हे कुन्दलते ! श्रीकृष्ण तो तुम्हारे देवर होते हैं। आयु में भी तुमसे छोटे हैं। तुम तो उनसे चतुरा हो तब सरला-स्त्री की भाँति डर क्यों रही हो ॥८७॥

इसपर श्रीराधिका कहने लगीं कि मैं तो अपने ही कुण्ड पर जाऊँगी। माधवी बन की शोभा देखूँगी । इसके बाद स्नान कर लौट आऊँगी । यदि श्रीकृष्ण वहाँ पर हैं तो हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं ॥८८॥

और वृन्दा से कहने लगीं कि तुम शीघ्र जाओ श्रीकृष्णजी से कहो कि तुम यहाँ कैसे आये। यह तो स्त्रियों के लिये एकान्त स्थान बना है। यह स्थान पुरुषों के मनोरञ्जन के लिये नहीं है, तुम यहाँ से चले जाओ ॥८९॥

इस पर वृन्दा कहने लगी कि हे श्रीराधे मैं तो साधारण स्वभाव की स्त्री हूँ श्रीकृष्ण बड़े ही उग्र स्वभाव के हैं। भला

कुन्दवल्ल्याह वृन्दे त्वं भ्रान्ता चण्डयानया कथम् ।
स निष्कास्यः पशुपतिर्य्याप्ययमर्द्धाङ्गमस्य तु ॥६१॥
वृन्दाहाप्त-सुभद्रश्रीः कुन्दवल्ल्येव दृश्यते ।
मधुसूदन-सम्भोग्या पुन्नागाङ्गाश्रयोन्मुखी ॥६२॥
स्मेरासु सर्व्वास्ववदद्विलोकय श्रीराधिकामुत्कलिकान्विता सा।
तां भाव गाम्भीर्य्य-सुमन्थराङ्गीं कृष्णस्य तृष्णां विनिवेदयन्ती ॥

मैं उनसे ऐसी बात कैसे कह सकती हूँ । इससे तो वे बहुत ही बिगड़ेंगे । तुम तो उनसे भी अधिक प्रचण्ड स्वभाव की हो, तुम्हीं उनको क्यों नहीं जाकर निकाल देती हो ॥६०॥

यह सुन कुन्दवल्ली कहने लगी कि हे वृन्दे ज्ञात होता है तुमको कुछ भ्रम हो गया है। भला चण्डी किस प्रकार पशुपति को बाहर कर सकती है वह तो उनके आधे अङ्ग में समाई हुई है अर्थात् श्रीराधा तो श्रीकृष्ण की अर्धाङ्गी हैं वह कैसे उनको निकाल सकती हैं ।६१॥

यह सुन वृन्दादेवी परिहास करती हुई सामने वाली एक कुन्दलता की ओर इंगित कर कहने लगी कि अयि सखियो इस प्राप्त शोभावाली कुन्दवल्ली को देखती हो यह मधुसूदन अर्थात् भ्रमर की भोग्य-वस्तु है जो नागकेसर वृक्ष से लिपटने को ऊपर मुख किये है। इसका दूसरा अर्थ यह है-यह सुभद्र की पत्नि कुन्दवल्ली तो श्रीकृष्ण की सम्भोग्या है, उनके अङ्ग से लिपटना चाह रही है ॥६२॥

यह सुन सब सखियाँ हँसने लगीं एवं श्रीवृन्दा श्रीकृष्ण की विरहव्याकुलता का वर्णन करने लगी जिससे सब सखियाँ अपना अपना कर्त्तव्य पालन करें। श्रीराधिका इस समय अपने भावों में खोई हुई थी और अत्यन्त उत्सुका जान

मत्प्रश्नमेकं ललिते वद द्रुतं कादम्बिनीं वीक्ष्य दिगन्त उद्गताम्।
पिपासया मुह्यति चातकेश्वरे समीरणाल्याः करणीयमाशु किम् ॥
दिशि दिशि निशि चाह्नि प्रस्फुरन्ति प्रचण्डा
अविरतगतिकाली प्रेर्य्यमाणाः पुरोऽमुम् ।
नवनवरसपूरैः कालिकाः सेचयन्त्यो
न भवति परमेका प्रेक्षणीयास्य सैव ॥६५॥

पड़ती थी । यह देख श्री बृन्दा ललिता से कहने लगी ॥६३॥

अयि चतुरे ललिते ! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ, शीघ्र उत्तर देना । चातक राज पक्ष में (श्रीकृष्ण) कादम्बिनी (मेघमाला) की ओर दृष्टि जमाया हुआ है और पियासा से अति व्याकुल हो रहा है, तब इस समय बायु-रूपा तुम सब सहचरियों का क्या कर्त्तव्य है ? । मनोगत भाव यह है-कादम्बिनी का अर्थ है मेघमाला अर्थात् अमृतरस बर्षा करने बाली श्रीराधिका । चातकेश्वर का अर्थ है श्रीकृष्ण । बायु से तात्पर्य्य है श्रीराधा की सब सहचरी-उनका कर्त्तव्य क्या है- वे सब श्रीराधा को इस समय शीघ्र श्रीकृष्ण के समीप ले जायें जिससे मेघमाला की बर्षा के समान चातक-रूप श्रीकृष्ण की पिपासा शान्त हो जाये ॥६४॥

सखियाँ कहने लगीं कि हे बृन्दे तब चाहे रात्रि हो अथवा दिन हो बायु द्वारा उड़ाई मेघमाला अर्थात् श्रीराधिका सामने बाले पपीहे अर्थात् श्रीकृष्ण को नई नई रस-बूँदों से तृप्त करें क्योंकि चातक को तो सिबाय एक मेघमाला के अन्य किसी का भी सहारा नहीं है और मेघमाला के लिये भी चातक के अतिरिक्ति और कोई प्रतीक्षा करने बाला नहीं है ॥६५

स चेत्तदेकनिष्ठः स्यात् सापि तां त्वरितं तदा ।
समानाय्य पुरोऽस्यामुं पाययेदमृतं मुदा ॥६६॥
नीरसा अपि ताः शश्वदाशुगाल्या बिचालिताः ।
चपलाः कालिकाः क्वापि भवन्त्येता न तन्मुदे ॥६७॥
तद्‌यात यूयं स्वच्छन्दं स्नात्वारिष्टारितीर्थके ।
कुरुताल्ल्यो मित्र-पूजां तिष्ठाम्यत्रास्ति मे कृतिः ॥६८॥
यातासु तासु लघु-सूक्ष्मधियं शुभाङ्ग
सा शारिके सुचतुरा न्यदिशत् प्रवृत्त्यै ।
आद्यां व्रजाय सुजवामभिमन्यु-मातु-
श्चन्द्रावलेरथ परां गिरिजालयाय ॥६९॥

दूसरी सखी कहने लगी कि—यदि वह चातक केवल मेघमाला को ही चाहता हो तब तो मेघमाला को ही ले जाकर चातक को अमृत रस पान क्यों न करा दें ? ॥६६॥

और सुनो-वही चञ्चल मेघमाला यदि शुष्क हो अर्थात् उसमें कोई रस न हो तब क्या बायु-द्वारा प्रेरित वह मेघ-माला चातक के लिये कोई आनन्द प्रदान कर सकेगी ? ॥६७॥

इस पर बृन्दाजी कहने लगीः—इसलिये हे सखियो अब तुम सब लोग आनन्द से पहिले श्यामकुण्ड के पावन नाम के घाट पर जाकर स्नान करो फिर सूर्य्यदेव की पूजा करना। मुझे यहाँ पर कुछ आवश्यक कार्य्य है इस कारण देर से आऊँगी ॥६८॥

इस पर सब सखियाँ वहाँ से चली गई और बृन्दादेवी ने दो सारिकाओं को जो अधिक बेग से उड़ सकती थी, कुछ इधर उधर के समाचर लाने को नियुक्त किया। इनमें

सेवा-सम्भार-संस्कारागारमागत्य वीक्ष्य तान् ।
सम्भारान् प्रशशंसोच्चैः सा मुदा तत्कृतो जनान् ॥१००॥
वसन्तकेलिर्हिन्दोल-लीला-माध्वीक-पानयोः ।
वन-रत्यम्बु-केलीनां मिथो वेशकृते तयोः ॥१०१॥
वन्याशन-स्वापयोश्च शुक-पाठाक्षलीलयोः ।
तत्तत्स्थानेषु सा तत्तत्सामग्रीस्तैरयोजयत् ॥१०२॥युग्मकम
तत्तल्लीला-परिकरान् सर्व्वान् स्थावर-जङ्गमान् ।
नन्दितांस्त्वरितांश्चक्रे तयोरागति-वार्त्तया ॥१०३॥

से एक का नाम सूक्ष्मबुद्धि और दूसरी का नाम शुभा था। पहिली को तो अभिमन्यु की माता जटिला की चेष्टा जानने के लिये व्रजधाम (यावट) भेज दिया और दूसरी को चन्द्रावली का समाचार लाने को गौरीतीर्थ के लिये भेज दिया ॥६६॥

इसके बाद बृन्दादेवी भण्डार घर में गई और श्रीराधा-कृष्ण की सेवा के योग्य सब सामग्री ठीक ठीक रक्खी देख बहुत प्रसन्न हुई और देख भाल करने वाली बनदेवियों की प्रशंसा करने लगी। १००॥

उन्होंने श्रीराधा-कृष्ण की सेवा के योग्य सब सामग्री जो बसन्त--क्रीड़ा आदि लीलाओं के लिये आवश्यक थी सेविकाओं द्वारा अपने साथ लिवा ले चलीं ॥१०१॥

इनके अतिरिक्त वन्य-भोजन की सामग्री, शयन के समय की वस्तुएं और लीलानुसार पहिनने के वस्त्र आभूषण आदि अपने साथ ले उचित स्थान पर सजा सजा कर रखदिये जिससे दसों प्रकार की लीलायें भली प्रकार होती रहें ॥१०२॥

यह सब कार्य्य सम्पादन कर श्रीवृन्दा ने लीलाओं में सहायक सब स्थावरजंगम परिचर गण को श्रीराधा-कृष्ण के

तयोर्मिथो दर्शनलब्धि-राका-समुच्छलद्भाव-चयामृताब्धौ।
सा संप्लवेच्छा-त्वरितान्तरासीत् स्थिता हरेः सन्निधि-कुञ्जलीना॥
तावन्नान्दीमुखी तासां पश्चादागत्य सोत्सुका।
तयोर्लीलावलोकाय स्थिता सा बृन्दया सह ॥१०५॥
कृष्णोऽप्यारादूकुल-बिटपि-श्रेणी-युग्मान्तराध्व-
न्यागच्छन्तीं प्रिय-सहचरी-वेष्टितां बल्लभां ताम्।
दृष्ट्वा साक्षादुदित-मदनोऽपि प्रतीयाय नायं
स्फूर्त्या तस्यास्तदभिगमने यन्मुहुर्वञ्चितोऽस्ति ॥१०६॥

आगमन की सूचना दे सजग रहने का आदेश किया-यह सुन उन सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और अपने अपने काम में जुट गये ॥१०३॥

इस समय श्रीवृन्दा के हृदय में इच्छा उत्पन्न हुई कि श्रीराधा-कृष्ण के परस्पर मिलन रूप पूर्ण-चन्द्र द्वारा जो भाव-समूह रूप सुधासागर व्याप्त होगा उसमें स्नान करूँ अर्थात् लीलाओं का दर्शन हो इसी अभिलाषा से उद्विग्न हो शीघ्र कुञ्ज की आड़ में एक कोने में छिपकर बैठ गई ॥१०४॥

इस बीच नान्दीमुखी (पौर्णमासी देवी की शिष्या) जो श्रीराधा-कृष्ण की लीला के दर्शन करने की इच्छा से सब से पीछे आई थी श्रीबृन्दा के पास एकान्त स्थान में बैठ गई ॥१०५

अपनी प्राण-प्रियतमा श्रीराधा के दर्शन पाने की कामना से श्रीकृष्णचन्द्र का चित्त अत्यन्त चञ्चल हो गया है वे और बार बार कुञ्ज के बाहर देखने आने लगे हैं कि कहीं प्रिया आती नहीं रही है, किन्तु प्रत्येक बार निराश होते थे अब अन्त में देखते हैं कि सब सखियों सहित वकुल-वृक्षों के बीच सामने वाले मार्ग से राधिका आ रही हैं। देखते ही उनका

८)

कान्तापि कान्तमवलोक्य चमत्कृतात्मा
तं भूरिभाव-विवशा नहि निश्चिकाय ।
यन् प्राक् तमालमनु तद्भ्रमतः प्रलापा-
दालीकुलस्य हसितैरतिलज्जितासीत् ॥१०७॥
मिथस्तत्तादृगुणानन्त्यानुभवाक्रान्त-मानसौ ।
दर्शनानन्द-मत्तौ तौ सवितर्कं तदोचतुः ॥१०८॥
किं कान्तेः कुलदेवता किमुत वा तारुण्य-लक्ष्मीरियं
सम्पद्वा किमु माधुरी तनुमती लावण्य-वन्या नु किम् ।
किम्वानन्द-तरङ्गिणी किमथवा पीयूष-धाराश्रुतिः
कान्ता सावुत वा ममेन्द्रियगणानाल्हादयन्त्यागता ॥१०९॥

कामोदय हो गया और बिचारशक्ति लोप हो गई अर्थात् यह विश्वास न हुआ कि वास्तव में आ ही रही हैं ॥१०६॥

इधर श्रीराधिका भी श्रीकृष्ण को देख अनेक प्रकार भावोदय होने के कारण यह निश्चय न कर सकीं कि यही वास्तव में श्रीकृष्ण हैं, क्योंकि इसके पहिले उनको तमाल वृक्षादि देख बार बार अपने प्रियतम का भ्रम हो गया था और जिससे सब सखियों ने इस पर उनका बहुत उपहास किया था, जिससे उनको अत्यन्त लज्जित होना पड़ा था ॥१०७॥

अब यह दोनों एक दूसरे की यौवनावस्था, सौन्दर्य, कान्ति, सौरभ, माधुरी और चित्त को आकर्षण करने वाली स्वाभाविक गुणावली का अनुभव करते करते उन्मत्तता को प्राप्त हो गये और नाना प्रकार वार्त्ता द्वारा प्रलाप करने लगे ॥१०८॥

रसिक-शिरोमणी श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा के दर्शन कर तथा उनकी मनोहर अङ्गकान्ति से विभोर हो बिचारने लगे कि

या मे नेत्रचकोर-चन्द्रवदना नासालिनी-पद्मिनी
जिह्वा-कोकिलिका रसालदधरा कर्णैन हृच्छञ्जिता।
देहानङ्ग-दवार्त्तवारण-सुधा-स्रोतस्वती मुर्त्तिका
सैवेयं दयितोदिता फलितवान मद्भाग्य-कल्पद्रुमः ॥११०॥
तापिञ्छः किं किमु जलधरः कन्दलो वेन्द्रनीलः
सानुः किम्बाञ्जन-शिखरिणः क्षीव-भृङ्गव्रजो नु।

क्या ये कान्ति की कुलदेवी है ? क्या तारुण्य की लक्ष्मी (प्रतिमा) है ? माधुरी की मूर्त्तिमती सम्पत्ति है, क्या लावण्य का बाढ़ है ? क्या आनन्द की नदी है ? क्या अमृतधारा का वर्षण है ? इसके बाद आगे विचार करने लगे कि ये चाहे जो कुछ भी हो किन्तु यह निश्चय है कि ये समस्त रमणियों में शिरोमणि प्राणवल्लभा राधा हमारे इन्द्रियों को आनन्द देती हुई आगमन कर रही है ॥१०९॥

आगे फिर सोचा कि-जो हमारे नेत्र रूप चकोरी के लिये चन्द्रबदना हैं, जो हमारी नासिका रूप भ्रमरी के लिये पद्मिनी रूपा हैं, जो हमारी जिह्वा रूप कोकिल के लिये आम्र की कली के तुल्य हैं और जिनके अङ्गभूषण की ध्वनि हमारे दोनों कर्ण रूप मृगों को अपनी ओर खींचती है और जो कामपीड़ित हमारे देह-रूप हस्ती के लिये अमृत रस से पूर्ण नदी के समान हैं, वे ही हमारी प्रियतमा श्रीराधिका आगमन कर रही हैं। अहो अवश्य ही आज हमारे भाग्यरूप कल्पवृक्ष फलवान हुआ है अर्थात् उस ने वाञ्छित फल प्रदान किया है॥

इधर श्रीराधिका भी अपने मनमें भाँति भाँति के वितर्क करने लगी कि क्या ये तमाल वृक्ष तो नहीं हैं, नव मेघमाला तो नहीं, इन्द्रनीलमणी की नवीन अंकुर तो नहीं हैं, क्या

कृष्णा-पूरः किमुत निचयः किं स्विदिन्दीवराणां
पुञ्जीभूतो व्रजमृगदृशां किं न्वपाङ्गावलोकः ॥१११॥
अयं किं कन्दर्पः स खलु वितनुः किं नु रसराट्
स नो धर्म्मी किम्वामृत-रसनिधिः सोऽतिविततः।
किमुत्फुल्ल-प्रेमामर-तरुवरः सोऽपि न चरः
स वासौ मत्प्रेयान् जयति मम भाग्यं क नु तथा ॥११२॥युग्मकम्
कान्तः सोऽयं स्फुरति पुरतो नेत्रभृङ्गारविन्दं
किम्वा भ्रान्तास्म्यहमिति सखि ! ब्रूहि सत्यं विशाखे !

अञ्जन रूप पर्वत का शिखर तो नहीं है, क्या मत्ताभ्रमरसमूह तो नही है, क्या यमुना का प्रवाह तो नहीं है, क्या नील-कमलों का संचय तो नहीं है? क्या व्रजबानिताओं के पुञ्जिभूत (मूर्त्तिमान) अपांग अवलोकन (कटाक्ष) तो नहीं है? वे इस प्रकार सोचती हुई कुछ भी निश्चय न कर पाई ॥१११

फिर विचार करने लगी कि यह कहीं कामदेव तो नहीं है, परन्तु वह तो शरीर--धारी है, फिर क्या यह रसराज है किन्तु ऐसा भी नहीं वह तो धर्म्म बिशिष्ट है तब क्या यह अमृत-रस के समुद्र हैं, किन्तु वह भी नहीं क्यों कि उसका तो विस्तार ही बहुत बड़ा है फिर क्या यह फल-फूल युक्त कल्पवृक्ष है किन्तु वह भी नहीं क्यों कि वह तो अचल है और यह चलायमान है, तब क्या यह हमारे प्रिय-कान्त तो नहीं हैं, किन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहाँ जो उनके दर्शन हों ॥११२॥

तब श्रीराधा विशाखा सखी को सम्बोधन कर कहने लगी कि हे सखि, सामने जो हमारे नेत्ररूप भ्रमरी के लिये पद्म रूप बस्तु विराजमान है क्या यही हमारे प्रियतम कान्त

इत्थं पृष्ट्वा पुलकित-तनुं गद्गदारुद्धकण्ठी-
मालीहासैस्त्रपलनयनां तामवादीन्मुदासौ ॥११३॥
कस्तूर्याः सत्तिलकमलिके यस्तवोरोज-युग्मे
चित्रं विन्दुः सुमुखि ! चिवुके नेत्रयुग्मेऽञ्जनश्रीः।
श्रुत्योरिन्दीबर-विरचितः कुन्तले चावतंसः
सोऽयं कान्तः स्फुरति सखि ते भाग्यराशिर्व्रजामुम ॥११४॥
इत्थं मिथो दर्शनतो विशुद्ध-प्रेम-स्वभावोद्गत-भावबृन्दैः।
विक्षुब्ध-सोल्लास-मनस्तनू तौ क्षणं न काञ्चित् ययतुः प्रवृत्तिम् ॥

हैं। यह हमारा भ्रम तो नहीं है। ठीक ठीक बताओ ? यह सुन श्रीविशाखा उन पुलकायमाना, गद् गद् स्वर से अवरुद्ध कण्ठवाली एवम सखियों द्वारा परिहास-युक्ता श्रीराधाजी से कहने लगीः- ॥११३॥

हे राधे ! यह स्फूर्त्ति अथवा भ्रम नहीं है। सामने जो कुछ देख रही हो वही तुम्हारे प्राणनाथ, तुम्हारे मस्तक के तिलक श्रीकृष्णचन्द्रजी ही हैं। वही तो चित्ररूप हो तुम्हारी दोनों कुचाओं पर बिलास करते हैं। अँजन रूप हो तुम्हारे नेत्रों में निवास करते हैं। कर्णभूषण रूप तुम्हारे कानों में डोलते रहते हैं। सुन्दर कस्तूरी बिन्दु रूप तुम्हारी चिवुक पर बिराजते हैं। चूड़ामणि रूप धारण कर तुम्हारी केशराशि में फँसे रहते हैं। ऐसे कान्त को इतने स्वरूपों में प्राप्त करने पर भी यदि तुम्हारी तृष्णा शान्त नही है तो साक्षात् सामने आये हुए उनके दर्शनों से अपने प्यासे प्राणों को क्यों तृप्त नही कर रही हो ? ॥११४॥

इसी प्रकार बिशुद्ध-प्रेम द्वारा एक दूसरे दर्शनों की इच्छा

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दास-कृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः साम्प्रतमष्टमोऽयमगमन्मध्याह्नलीलमनु ॥८॥

❀ अथ नवमः सर्गः ❀

अथानयोर्मानस-नर्त्तकौ तौ प्रेमा-स्वशिष्यौ तनु-नर्त्तकीभ्याम् ।
शिक्षा-गुरुर्नर्त्तयितुं प्रवृत्तो वृन्दा-सखीवृन्द-सभासदग्रे ॥१॥

से श्रीराधिका और श्रीकृष्ण स्वाभाविक भाव समूह से विक्षुब्ध और आनन्दित हो एक क्षण संज्ञा शून्य हो गये। ११५॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरण-कमलों के मधुपान में भ्रमर के समान श्रीरूपगोस्वामी की सेवा के फल स्वरूप, श्रीरघुनाथ-दास गोस्वामि द्वारा प्रेरणा किया हुआ, श्रीमत् जीवगोस्वामि के संसर्ग से उत्पन्न एवं श्रीरघुनाथभट्ट-गोस्वामि के बरदान के प्रभाव से प्रकाशित श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य की मध्याह्न-लीला का अष्टम सर्ग समाप्त हुआ ॥८॥

जिस प्रकार नटाचार्य्य अपने शिष्य नट और नटी को अभिनय के योग्य वेषभूषा में सुसज्जित कर अपनी इच्छा के अनुसार अभिनय का रंग जमाता है उसी प्रकार आज

चापल्यौत्सुक्य-हर्षाद्यै-र्भावालङ्करणैस्तयोः।
मनो-नटौ स्वशिष्यौ तावलङ्कृत मुदा गुरुः ॥२॥
उद्भास्वरैस्तु जृम्भाद्यैः सूद्दीप्तैः सात्त्विकैरपि।
आकल्पैः समलङ्कृत्य श्रीराधा तनुनर्त्तकीम ॥३॥

राधा-कृष्ण के परस्पर प्रेमरूप नटाचार्य ने दोनों के मन रूप नट को और देह रूप नटी को अपनी इच्छानुसार भावावेश में सजाकर कुञ्ज की आड़ में छिपी हुई श्रीवृन्दाजी एवं श्रीराधा की सब सखियों को श्रीयुगल का नाट्य दिखलाया। अर्थात् इस समय श्रीराधा-कृष्ण का तन और मन प्रेम के कारण अति चञ्चल हो गया ॥१॥

तब इस प्रेम गुरु ने आह्लाद के साथ श्रीराधा-कृष्ण के मन रूप अपने दोनों शिष्यों को पहिले तो चापल्य, औत्सुक्य और हर्ष आदि नाना भाव रूप अलंकारों से सुसज्जित किया अर्थात् उस समय परस्पर श्रीराधा-कृष्ण के मन में चापल्य आदि नाना भाव उदय हुए राग और द्वेषादि द्वारा मन की जो लघुता है उसे चापल्य कहते हैं। अविचार, निष्ठुर-वार्त्ता और स्वच्छन्दता इसका कार्य्य है। अभीष्ट वस्तु के दर्शन और उसे प्राप्त करने की लालसा में जो समय व्यतीत हो उसके लिये व्याकुलता अर्थात् एक पल युग के समान व्यतीत होना औत्सुक्य भाव है। व्यग्रता, और अस्थिरता इसके कार्य्य हैं ॥२॥

इसके बाद उस प्रेमाचार्य्य ने श्रीराधाजी के अंग रूप नर्त्तकी को जृम्भादि उद्भास्वर और सुदीप्त आदि सात्त्विक-भावों द्वारा अलंकृत किया, अर्थात् श्रीराधिका में जृम्भादि भाव उदय हुए। भावाविष्ट मनुष्य के शरीर में जो जो भाव

अयत्नजैस्तु शोभाद्यैः सप्तभिर्दशभिस्तथा ।
स्वभावजैर्विलासाद्यैर्भावाद्यैस्त्रिभिरङ्गजैः ॥४॥

प्रकाश पाते हैं पण्डित लोग उनको 'उद्भास्वर' कहते हैं। सात्त्विक भाव आठ हैं:- जड़िमा, घर्मोदय, रोमाञ्च, स्वरभंग,- कम्प, वैवर्ण्य, अश्रुपात, अचेतनता ॥३॥

तब उस प्रेमगुरु ने नर्तकी (श्रीराधिकाजी) का शोभा आदि सात 'अयत्नज'; विलासादि दश 'स्वभावज' और तीन 'अङ्गज' भावों से शृङ्गार किया ।

दीप्तः- तीन चार अथवा पाँच सात्त्विक भाव यदि एक ही समय प्रकट हों और सम्बरण न करा जा सके उसे दीप्त कहते हैं।

उद्दीप्तः- एक ही समय पाँच छय अथवा बहुत से भाव उदय होने पर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो पण्डित जन उसे उद्दीप्त कहते हैं ।

सुदीप्तः- यदि समस्त सात्त्विक भाव अति वृद्धि को प्राप्त हो जायें तब उद्दीप्त भाव महाभाव हो जाता है। इनको बिद्वान पुरुष सुदीप्त भाव कहते हैं।

धूमायिताः- यदि समस्त, सात्त्विक भाव स्वयं अथवा अन्य भावों सहित मिलकर अल्प प्रकाश पायें और उनको गोपन किया जा सके पण्डित लोग धूमायित कहते हैं।

ज्वलिताः- इनही भावों में से यदि दो तीन भाव एक समय उदय हों और उनको कष्ट के साथ गोपन किया जा सके तब 'ज्वलिता' कहते हैं।

शोभाः- रूप और भोग आदि द्वारा अङ्ग को कान्ति को शोभा कहते हैं।

कान्तिः– काम बासना तृप्त करने के उद्देश्य से जो उज्ज्वल शोभा प्रकट हो उसको कान्ति कहते हैं।

दीप्तिः– बयस, भोग, देश, काल, और गुण आदि द्वारा कान्ति ही यदि उदय होकर अधिक वृद्धि को प्राप्त हो, उसी को दीप्ति कहते हैं।

माधुर्य्यः– सब अवस्थाओं में अभीष्ट प्रप्ति के प्रयास द्वारा मनोहारी अङ्ग चेष्टा को पंडित जन माधुर्य्य कहते हैं।

प्रगल्भताः– सम्भोग बिषयक कथा बार्त्ता में निःशंकता को प्रगल्भता कहते हैं।

औदार्य्यः– सव अवस्थाओं में नम्रता का प्रदर्शन औदार्य्य कहलाता है।

धैर्य्यः– मनकी उन्नति वृत्ति यदि स्थिर है अर्थात् उन्नति के समय चित्त चलायमान नहीं है, उसी को धैर्य्य कहते हैं।

तत्र लीलाः– सुन्दर श्रृङ्गार और कर्म्म द्वारा प्रिय का अनुकरण करना ही लीला है।

विलासः– प्रियजन का संगम पाने के हेतु उस समय जो लावण्यता, भाव, स्थान, आसन आदि एवं मुख और नेत्रादि के कर्म्म की विशिष्टता प्रकट होती है उसी को बिलास कहते हैं।

बिच्छित्तिः– श्रृङ्गार रचना में न्यूनता होनेपर भी कान्ति का बना रहना ही बिच्छित्ति कहलाता है।

विभ्रमः– सम्भोग की अभिलाषा से नायक अथवा नायिका का संकेत स्थान पर पहुँचने के समय बेगातुरता के कारण हार माल्य इत्यादि का उचित स्थान से हट जाना विभ्रम है

६)

तथा चकित-मौग्ध्याभ्यां द्वाविंशत्या मनोहरम् ।
निरमासीद्भूषितां तामलङ्कारैः क्रमेण सः ॥५॥सन्दानितकम्

किलकिञ्चितः- गर्व, अभिलाष, रोदन, हास्य, असूया (द्वेष), भय और क्रोध इन सातों भावों का हर्ष के कारण एक ही समय प्रकाश होना ।

मोट्टायितः- प्रियजन का स्मरण और उसकी वार्ता आदि श्रवण करने पर चित्त में प्रेमी की भावनाओं के कारण अभिलाषाओं का उदय होना ।

कुट्टमितः- स्तन और अधर आदि कान्त द्वारा ग्रहण होने पर हृदय में तो सुख का अनुभव हो किन्तु आनन्दावेग से पीड़ित व्यक्ति के समान बनावटी क्रोध का प्रदर्शन ।

बिब्बोकः- गर्व और मान के कारण कान्त की भेट हुई वस्तु के प्रति अनादर ।

ललितः- जिससे समस्त अङ्ग की वेषभूषा, सौन्दर्य, और भ्रू-भङ्गी की मनोहारिता प्रकाश पाय ।

विकृतः- लज्जा, मान, ईर्षा इत्यादि के कारण कहने योग्य वार्ता वाणी द्वारा न कही जासके किन्तु चेष्टा द्वारा प्रकाश पाय ।

तत्र भावः- श्रृङ्गाररस में विकार शून्य चित्त में रति नाम के स्थायीभाव के होने पर पहिला जो विकार उदय हो ।

हावः- स्कन्ध का वक्री-करण और नेत्रादि का सञ्चालन ।

हेलाः- यही भाव स्पष्ट रूप से श्रृङ्गार सूचक होना ॥४॥

इस प्रकार उस प्रेमगुरु ने चकित और मौग्ध्य इन दोनों के साथ शोभादि बाईस भाव रूप अलंकारों से श्रीराधा के तनु रूप नटी को सुसज्जित किया-अर्थात् प्रियतम के संग से श्रीराधिका में समय समय पर लीलानुसार क्रम से ये २२ भाव

अङ्गजैर्भावहावाद्यैः शोभाद्यैस्तैरयत्नजैः ।
स्वभावजैर्यथायोग्यैः सूद्दीप्तैः सप्तसात्त्विकैः ॥६॥
उद्भास्वरैश्च जृम्भाद्यैरेभिः सद्भाव-भूषणैः ।
अलञ्चक्रे सुनिपुणां श्रीकृष्ण-तनु-नर्त्तकीम ॥७॥
तयोर्द्वयोरङ्ग-लक्ष्मी-रङ्गस्थल्यां सुनर्त्तनम ।
प्रवृत्तमासीत्तद्दृष्ट्वा मुदमापुः सभासदः ॥८॥
क्रमात्ते नर्त्तक्यौ प्रकटित-कला-कौशलभरै-
र्मिथस्तृप्ते दृप्ते निजपरपरां तन्निपुणताम् ।
वितन्वाने बाढं ननृततुरहो येन मुदिता
द्रुतं सभ्यास्ताभ्यां तनु-हृदय-रत्नान्यपि ददुः ॥९॥

उदय हुए । आगे मध्याह्नलीला में इनका वर्णन होगा।

चकितम्:- प्रियतम के समक्ष भय के स्थान में अधिकतर भय का होना ।

मौग्ध्यम्:- प्रियतम के सामने जानी हुई बात को अन जाने जैसा भान करते हुए पूछना ।

इसके बाद प्रेमाचार्य ने 'अङ्गज' हाव-भावदि; 'अयत्नज' शोभादि; 'स्वभावज' दश और 'सुद्दीप्तादि सात सात्त्विक भाव एवं 'उद्भास्वर' और जृम्भा आदि सद्भाव रूप भूषणों द्वारा सुनिपुण श्रीकृष्ण के अङ्गरूप नर्त्तकी को सुसज्जित किया ॥६-७

तब उस प्रेम-गुरु ने दोनों नर्त्तकियों का श्रीराधा-कृष्ण की अङ्ग-लक्ष्मी रूप रङ्गभूमि में नृत्य आरम्भ कराया जिसको देख ललिता आदि सभासद्गण आनन्दानुभव करने लगे ॥८॥

अब वे ही अङ्गरूपा दोनों नर्त्तकी परस्पर कला प्रदर्शन से तृप्त और गर्वित हो अपने अपने नृत्य को उच्चतम रूप में निपुणता के साथ बार बार एकान्त में प्रकाश करने लगीं।

राधायास्तनु-नर्त्तकी-मधुरिम-भ्राजिष्णु-रङ्गस्थले
स्वीय-श्रीनयनद्वयोत्तम-नटौ कृष्णस्तथानर्त्तयत् ।
येनान्तर्मुदिताऽसकौ स्वनयन-प्रान्तावलोकोत्पलै:
शश्वत्तत्सुखदैरमण्डयदमुं सभ्याश्च पश्चान्मुदा ॥१०॥
पुर: कृष्णालोकात् स्थगित-कुटिलास्यागतिरभू-
त्तिरश्चीनं कृष्णाम्बर-दरवृतं श्रीमुखमपि ।
चलत्तारं स्फारं नयनयुगमाभुग्नमिति सा
विलासाख्य-स्वालङ्करण-वलितासीत् प्रियमुदे ॥११॥

जिसको देख ललिता आदि सब सभासद् गण सन्तुष्ट हो उन दोनों नर्त्तकियों को अपने अपने देह और प्राण-रूप रत्नों का पारितोषिक देने लगे अर्थात् ललितादि सखियाँ श्रीराधाकृष्ण के परस्पर प्रेम द्वारा उत्पन्न माधुर्य्य आदि का दर्शन कर रोमाञ्चित हो तन मन न्योछावर करने लगीं ।९॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण श्रीराधिका के अङ्ग रूप नर्त्तकी की मधुरिमा-मय आश्चर्य रङ्गभूमि में अपने नयन रूप दोनों उत्तम नटों को नृत्य कराने लगे । उससे श्रीराधिका हर्षित हो श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करने वाले कमल सदृश अपने दोनों नेत्रों के अवलोकन द्वारा विभूषित करने लगीं अर्थात् श्रीराधा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दरता को श्रीकृष्ण अपने नेत्रों द्वारा पान करने लगे तथा श्रीराधिका भी नेत्र की वक्रदृष्टि द्वारा श्रीकृष्ण के अङ्ग प्रत्यङ्ग की मधुरिमा का आस्वादन करने लगीं । यह लीला देख सब सखियाँ आनन्द में मग्न हो गईं ॥१०॥

तब श्रीराधा अपने प्रियतम को सामने देख उनके आनन्द को बढ़ाने के निमित्त अपने अङ्ग की भङ्गिमा द्वारा विलास

आकृष्टा पुरतस्तदौत्सुकतया सख्येव सा लज्जया
पश्चाद्वामतयानृजु-प्रणयतः सव्ये स्वगेहाध्वनि।
स्वासव्येऽप्यवहित्थया प्रबलया पुष्पावचित्यै बला-
दित्थं भावचयोद्गति-प्रचलिता कृष्णस्य सासीन्मुदे ।।१२।।
इत्थं कृष्टा प्रियाग्रे सा बलिष्ठाभिः समन्ततः।
मनोवृत्ति-वयस्याभिर्न निर्याता न च स्थिता ।।१३।।

भाव का प्रदर्शन करने लगी। श्रीकृष्ण का दर्शन कर उनकी गति कुटिल एवं स्थिर होने लगी, उन्होंने अपने मुख को नील-वस्त्र से कुछ ढक लिया किन्तु उनके चञ्चल तारायुक्त नेत्रों ने वक्रिमा भाव धारण कर लिया, आज वह राधा बिलास नामक अलङ्कार से दृष्ट हुई ।।११।।

उस समय ऐसा ज्ञात होने लगा कि श्रीकृष्ण की प्राप्ति की इच्छा से श्रीराधिका अत्यन्त उत्सुका हो उनसे मिलने के हेतु आगे को बढ़ रही है किन्तु सखियों से घिरे होने के कारण लज्जा उनको पीछे खींच रही थी। साथ ही साथ वामता-रूप (प्रतिकूल भाव) सखी भी कुटिल प्रणय वश बल पूर्वक बायीं दिशा की ओर खींचकर घर चलने का आग्रह कर रही है। अवहित्था (आकर छिपाने के भाव) सखी भी मानो दक्षिणकी ओर फूल तोड़ने को बाध्य कर रही है। इसी प्रकार अनेक भावों द्वारा श्रीराधिका श्रीकृष्ण के आनन्द का विस्तार कर रही थी ।।१२।।।

उस समय श्रीराधिका के मन की प्रवृत्तियाँ उनको श्रीकृष्णजी के समीप न तो जाने ही देती थीं और न रोक ही सकती थीं अर्थात् उनकी "प्रियतम के साथ बिहार करूँगी" इस प्रकार इच्छा होते हुए भी जाने नहीं देती थी और दूसरी

ह्रिया तिर्य्यग्ग्रीवा चरण-कटिभङ्गी-सुमधुरा
चलच्चिल्ली-बल्ली-दलित-रतिनाथोर्ज्जित-धनुः।
प्रिय-प्रेमोल्लासोल्लसित-ललिता-लालित-तनुः
प्रिय-प्रीत्यै सासीदुदित-ललितालङ्कृति-युता ॥१४॥
हरि-मानस-नटवर्य्यं गाधा-तनु-नर्त्तकी-गुणैस्तोषान्।
गतवति तां परिरब्धुं तत्रानु-नट्यपि तदनुगता जाता ॥१५॥

कामना कि "प्रियतम के आग्रह और आनन्द में वृद्धि करूँगी" इस प्रकार इच्छा को रोक भी नहीं सकती थीं ॥१३॥

तब श्रीराधिका श्रीकृष्ण के समीप जाने अथवा न जाने में अपने को असमर्थ जान लज्जा के कारण ग्रीवा (गर्दन) नीची कर चरणों और कटि की मनोहारी चेष्टा प्रदर्शित करती हुई कामदेव के धनुष के समान भ्रू चढ़ाकर प्रियतम के प्रेमोल्लास से उल्लासित हो ललित नामक भाव से अपने को अलंकृत करने लगीं। उनकी यह दशा देख श्रीललिता को अत्यन्त सुख हुआ और उन्होंने आदर से उनके अङ्ग पर हाथ रख कर लालन किया। ललितभाव-जिस भाव द्वारा समस्त शरीर की शृंगार आदि सजावट, सुकुमारिता एवं भ्रू सञ्चालन आदि की मनोहारिता प्रकाश पाय ॥१४॥

रसमय नागरेन्द्र श्रीकृष्ण इस प्रकार अपनी प्रियतमा की भाव-माधुरी के दर्शन कर अपने चञ्चल चित्त को न रोक सके और उनको आलिगंन करने की कामना से आगे को बढ़े। जैसे कि-किसी गुणवती नटिनी की नृत्यकला से विमोहित हो प्रधान नट-नटी उसको आलिङ्गन करने के हेतु आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार आज श्रीराधिका की तनु-रूपा नटी के चञ्चल

व्यत्यस्ताकल्प–गात्री द्रुतमभिसरणावेशतस्त्वं प्रिये त-
च्चापल्यं वेश एष प्रथयति मनसोऽप्येह्यमुं संस्करोमि।
इत्थं स्पर्शोत्सुकस्वप्रियपरिहसिताऽवाङ्मुखी सङ्कुचन्ती
लोलाक्षी विभ्रमालङ्कृति–रुचिरतनुस्तस्य तुष्टिं व्यतानीत् ॥१६॥
ह्रिया भिया वामतयाऽवहित्थया कृतावकर्षा कुसुम–ग्रहाय सा।
तिरश्चलन्ती हरिणोत्कचेतसा पुरो निरुद्धा मुमुदे चुकोप च ॥१७

भाव-रूप नृत्य की माधुरी से मुग्ध हो श्रीकृष्ण का मनरूप नट और तनुरूपा नटी उनको आलिङ्गन करने के लिये आगे चले ॥१५॥

उस समय श्रीकृष्ण कहने लगे–हे प्रिये! तुम जो स्वयं हमारे समीप आ रही हो इससे तुम्हारे अङ्ग के भूषण उलट पलट हो गये है। तुम्हारा यह वेश हमारे मन और हस्तादि को चलायमान कर रहा है। इसलिये हमारे निकट शीघ्र आ जाओ हम इन सबको फिर से उचित स्थान पर ठीक कर देंगे। श्रीकृष्ण उनके स्पर्श के लिये अत्यन्त उत्सुक थे। आप कुछ परिहास भी करने लगे जिससे श्रीराधिका सकुचा गई और बक्र-दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। इस प्रकार श्रीराधा विभ्रम नाम के अलंकार स विभूषिता हो श्रीकृष्ण के हर्ष को बढ़ाने लगी।

विभ्रम–संकेत स्थान में नायिका का सम्भोग की इच्छा से
जाना और प्रेमावेग से भूषणों का उलट-पलट हो जाना
विभ्रम भाव कहलाता है ॥१६॥

यद्यपि उस समय श्रीराधिका श्रीकृष्ण के समीप जाना चाहती थी, तथापि लज्जा, भय और वामता द्वारा बल पूर्वक

६।

बाष्प-व्याकुलितारुणाञ्चल-चलन्नेत्रं रसोल्लासितं
हेलोल्लास-चलाधरं कुटिलित-भ्रू युग्ममुद्यत्स्मितम् ।
कान्तायाः किलकिञ्चिताञ्चितमसौ वीक्ष्याननं सङ्गमा-
दानन्दं तमवाप कोटि-गुणितं योऽभून्न गीर्गोचरः ॥१८॥

अथ सा सविधस्थ-केशर-द्रुमशाखां मुकुलाकुलामनु ।
अतिसंभ्रमतः स्वदोर्लतां कुसुमादान-मिषादुदक्षिपत् ॥१९॥

पुन्नागयोरुत्कलिकायुजोस्तयोरुत्फुल्लतासीत् युगपत्तदाद्भुता ।
एकस्य तत्स्पर्श-मुदा परस्य तद्दोर्मूल-संदर्शनज-प्रमोदतः ।२०॥

पीछे को खींचे जाने से बक्र-गति से एक ओर घूम कर फूल चुनने के लिये आगे चलीं। यह देख श्रीकृष्ण ने आकर भुजा पसार उनका पथ रोक दिया। इससे श्रीराधिका के अन्तर में तो सुख हुआ परन्तु बनावटी कोप प्रकाश करने लगी ॥१७॥

उस समय श्रीकृष्ण श्रीराधिका के रसोल्लास से परिपूर्ण अश्रु-युक्त अरुण नेत्र, हेला, (शृङ्गार सूचक) विलसित-अधर, कुटिल भ्रू और हास्य आदि किलकिञ्चित भाव से पूर्ण मुखार-बिन्द के दर्शन कर संग लाभ से भी करोड़ों गुना सुख अनुभव करने लगे जो बाणि द्वारा वर्णन नहीं हो सकता है ॥१८॥

इस के बाद श्रीराधिका ने फूल चुनने के बहाने पास वाले पुन्नाग की कलियों से लदी शाखा पर अपने दोनों कर कमल रख दिये अर्थात् हस्त-प्रसारण के बाहाने श्रीकृष्ण का आलि-ङ्गन चाहने लगी ॥१९॥

उनके कोमल हाथों के स्पर्श और भुजाओं के फैलाने से पुन्नाग-बृक्ष और उत्कण्ठा से आकुल पुरुष-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण-चन्द्र दोनों एक ही समय खिल उठे अर्थात् प्रफुल्लित हो गये ॥२०

तारुण्य-भट्ट-गुरुतः समधीतकाम-
न्यायादि-शास्त्रचययां स सतीर्थयापि।
चित्रं न तान्निज-जयाय तयोदगृह्णा-
न्नैयायिको हि गुरुणापि विवादमिच्छेत् ॥२१॥

केयं मे कुसुमं चिनोति न हि काप्येषास्म्यहं त्वं तु का
मां जानासि न किं न वेद्मि तदितो गच्छास्म्यहं पुष्पपः।
यामि क्व भ्रमरीं त्वमेव ननु सा पुष्पेषु लब्धान्तरे-
त्युक्त्वास्याः मधुसूदनः स सविधं बिन्दन्नबादीत् पुनः ॥२२॥

किशोर–अवस्था रूप भट्टाचार्य्य गुरुदेव के निकट श्रीराधा-कृष्ण काम रूप न्याय-आदि अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर रहे हैं। दोनों परस्पर सहपाठी होने पर भी श्रीकृष्ण की इच्छा श्रीराधिका के ऊपर बिजय पाने की है। इस कारण उनके साथ बिबाद करने की लालसा है। यह कोई बिचित्र बात नहीं है। न्यायशास्त्र के बिद्यार्थी तो अपने गुरुदेव तक से शास्त्रार्थ कर वैठते हैं। यदि श्रीकृष्ण ने श्रीराधिका से बिवाद किया तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? ॥२१॥

विवाद इस प्रकार हुआः—

श्रीकृष्ण– अरे हमारे फूल फल कौन तौड़ रहा है?
श्रीराधा– कोई तो नहीं- मैं हूँ।
श्रीकृष्ण– तुम कौन हो?
श्रीराधा– क्या हमको नहीं जानते?
श्रीकृष्ण– जानते तो पूछते ही क्यों?
श्रीराधा– नहीं जानते तो न सही-यहाँ से चले क्यों नहीं जाते।
श्रीकृष्ण– मैं तो पुष्पप (रखबाला) हूँ-कहाँ जाऊँ?

६)

सुभ्रासि सत्कुलवधूः सुमनो हरन्ती
साध्वी परस्य पुरुषस्य न लज्जसे त्वम् ।
चित्रं तदेतदथवा सततं भ्रमन्त्याः
स्वातन्त्र्यतः प्रतिवनं कथमस्तु लज्जा ॥२३॥
साधारणं वनमिदं ननु मित्र-पूजा-
सूत्कण्ठता वयमवैति च मालतीनाम् ।
पुन्नाग एष विकचोऽपि न सज्जतेऽस्य-
सौभाग्यादिवर्ण-पदचालनयात्र मन्ये ॥२४॥

श्रीराधा- यदि भ्रमर हो तो भ्रमरी के पास जाओ ?

श्रीकृष्ण- तुमही तो भ्रमरी हो ।

श्रीराधा- मैं भ्रमरी कैसे हुई ?

श्रीकृष्ण- तुम्हारा अन्तर-हृदय पुष्पों में ही रमा हुआ है, इसलिये भ्रमरी हो ।

श्रीराधा- (पुष्प का अर्थ कन्दर्प बोध कर) तब तो तुम कन्दर्प हो । तुम्हारे ही पास आ जाऊँगी ॥२२॥

यह बचन सुन श्रीकृष्ण राधा के समीप जाकर कहने लगे:-

अयि ! तुम तो परमा-सुन्दरी हो । उसपर भी पतिव्रता साध्वी । क्या दूसरों के सुमन (एक अर्थ में पुन्नाग वृक्ष के फूल दूसरे अर्थ में परपुरुष का मन) चुराते तुमको लज्जा नहीं ? इसमें आश्चर्य ही क्या ? अपनी इच्छानुसार वन बन में विहार करने वालों को लज्जा कहाँ ॥२३॥

अयि सुन्दरी तुम जो कह रही हो कि यह तो साधारण वन है प्रत्येक व्यक्ति का इस पर समान अधिकार है और अपने आने का भी कारण सूर्य्य (मित्र) पूजा अर्थात् हमारी ही पूजा बतला रही हो । यह भी कह रही हो कि पुन्नाग-वृक्ष

मुग्धासि वेत्सि न किमप्यऽबधेहि बच्मि
सन्मालती-चय-बृत: पुरुषोत्तमोऽयम् ।
ताभिर्युनक्ति न कदापि युनक्ति चापि
दिष्ट्यानिलैः सुमुखि ! प्रत्यनुकूलपूर्णैः । २५॥
स्वामी बनस्य बिदित: स्मर-चक्रवर्ती
तेनार्पितं मयि मुदा बिपिनाबकत्वम् ।

मालती-लताओं से चारों तरफ से घिरा हुआ है किन्तु उस पर भी उनसे अलग अलग ही है आलिंगन नहीं कर रहा है। इन सब श्लेषपूर्ण बातों से तो यही प्रकट होता है कि तुम अपने ओष्ठ, दन्त आदि के सञ्चालन द्वारा हमसे यही व्यंग कर रही हो कि हम तुम्हारे आलिंगन करने में उत्सुक होते हुए भी तुमको आलिंगन क्यों नहीं कर रहे हैं। क्या अकेला पाकर इस प्रकार की छल युक्त बातों से हमको उत्तेजित करना नहीं है कि इस निर्जन स्थान में भी तृप्ति लाभ नहीं करते हो। ॥२४॥

हे सुमुखि ! तुम तो इस समय मुग्धा हो रही हो कुछ भी समझ नहीं पाती हो—सुनो मैं बतलाता हूँ। यह जो पुरुषों में श्रेष्ठ अर्थात् पुन्नाग वृक्ष सुन्दर सुन्दर मालतीलताओं से घिरा होने पर भी उनसे अलग है इसका यही कारण है कि विपरीत बायु इसको मिलाने में बाधा उत्पन्न करती है। यदि सौभाग्य बश कभी अनुकूल बायु चलती है तब मेल हो जाता है। इस कथन से श्रीकृष्ण का यही अभिप्राय है कि बिपक्ष सखियाँ हमको तुमसे मिलने नहीं देती है और सपक्ष-बाली सखियों द्वारा ही हमारा तुम्हारा मिलन सम्भव होता है ॥२५॥

तस्याग्रतो मम बिलुण्ठसि यस्य गर्व्वा-
त्तारुण्य-रत्नघटयुग्ममिदं हरामि । २६॥
त्वां प्रार्थ्य तद्विचिनुयामिति किं ब्रवीषि
नेक्षे कदापि ललनां किमु संलपामि ।
धैर्य्यं रहो युवति-दर्शनतः क्व यूना-
मित्यात्थ किं सखिभिरस्मि सदा परीतः ॥२७॥

आगे सुनो! यह तो तुमको बिदित ही है कि इस बन के स्वामी महाराज कन्दर्प (कामदेव) हैं। उन्होंने ही प्रसन्न हो इस बन की रक्षा का भार हमारे ऊपर सौंप दिया है। तुम जो अपने तारुण्यरूप दो रत्न घटों के कारण गर्विता हो कर इस बन को लूट रही हो तब मैं ही इन दोनों रत्नों को हरण किये लेता हूँ, सारा गर्व चूर्ण हो जायेगा ॥२६॥

श्रीकृष्ण फिर कहने लगे-हे सुन्दरी! यदि तुम यह बात कहो कि तुम पहिले हमसे पूछ कर ही तो फूल तोड़ रही हो तो इसका उत्तर यही है कि मैं तो कभी स्त्री का मुख देखता ही नहीं हूँ, तुम्हारे साथ कथा-बार्ता कैसे सम्भव हुई और यदि कहो कि स्त्री को एकान्त में पाकर पुरुष अपना धैर्य्य खो देता है और तुमही ने हमको देख फूल चुनने की आज्ञा दी तब इसका उत्तर यह है कि मैं अकेला कभी नहीं रहता हूँ। मैं कभी किसी स्त्री को ऐसा अबसर ही नहीं देता हूँ कि वह मुझे अकेला पाय। इसी भय से कि यदि तुम समान कोई सुन्दरी कदाचित कभी मेरे मनको अपने हाव-भाव द्वारा हरण करे मैं सदा अपने सखाओं को अपने पास रखता हूँ। इस निर्जन-स्थान में मुझे अकेला न समझना ॥२७

नैकात्वमस्यवयवाभिध–चौरलक्षै-
र्नित्यं बृता स्वसदृशालि–चयान्विता च।
राजन्वतो जनपदस्य परां बिभूतिं
मुष्णास्यमुष्य निपतेन्मयि राजदण्डः ॥२८॥

नित्यं बनाद्विचिनुमः कुसुमान्यमुष्मा-
दृष्टः कदापि न भवानिह रक्षकः किम् ?
स्वप्नेऽपि न श्रुतचरः स्मर–चक्रवर्त्ती
तत् किं बृथा प्रलपसीति किमात्थ सत्यम् ॥२९॥

श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे सुन्दरि हमारे साथ चालाकी से काम न चलेगा, चोरों की तरह बातें न बनाओ, सीधी सीधी बात कहो। देखो! तुम्हारा प्रत्येक अङ्ग एक एक चोर है और प्रत्येक सखी एक एक प्रधान चोरिणी है। इस विशाल दल को लेकर तुम चक्रवर्त्ती मदनमहाराज की सम्पत्ति चुरा रही हो। यह न समझो कि स्त्री जाति जान कर तुमको छोड़ दिया जायेगा। यदि हम ऐसा करेंगे तो राजदण्ड के भागी होंगे–(यह कहने से श्रीकृष्ण का आशय है कि सब सखियों के सामने ही तुमको हम बल पूर्वक आलिङ्गन कर लेंगे) ॥२८॥

बिश्व बिजयी अनंग महाराज का बिषम प्रताप और हमारा अबारणीय प्रभाव जगत् बिख्यात है, इस कारण पहरा देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। प्रताप से ही सब काम हो जाता है ऐसा कौन है जो हमारी अनुमति बिना इस बन में प्रवेश करने का साहस कर सके। इसी आशा को लिये हुए तो हम इस की ओर ध्यान नहीं देते हैं। आज ही तो यह पता चला कि हमारी सम्पत्ति की चोरी हो रही है

६)

गुप्तं प्रताप-बलतो बनमाबयोस्तत्
कस्ताबदेष बिशतादिति गर्व्वितेन।
गोचारण-व्यसनिना च मयातियत्ना-
न्नावेक्षितं हृतधनं विहितं त्वयैतत् ॥३०॥
गुप्तेन साद्य बिधृतासि मयात्र दिष्ट्या
सन्दण्डच पूर्व्वमिह राजकृते त्वदर्थम्।
स्वार्थं पुनर्गणयुतैव यदार्प्यसे त्वं
राज्ञे तदाश्रुतचरं तमपीक्षितासे ॥३१॥
सामान्य-कानन इहास्ति न रक्षकोऽपि
ज्ञात्वेति ते ननु मयात्र कृतोऽपराधः।
क्षन्तव्य एव भवता करुणामयत्वात्
तन्मुञ्च मामिति किमात्थ न मेऽत्र शक्तिः ॥३२॥

तब छिपकर यहाँ आना हुआ। भाग्य-वश तुमको दल बल सहित रंगे हाथों पकड़ लिया। इस समय राजा के और हमारे धन और प्रयोजन (स्वार्थ) के बदले तुम्हारी गिरफ्तारी होगी। पहिले तो तुमको प्रहार आदि दण्ड भोगना होगा अर्थात् भुजाओं के पाश में बन्धन किया जायेगा एवं नख-आदि द्वारा आघात (नोचा-खोची) सहन करनी पड़ेगी; इसके बाद सखियों सहित तुमको राजा के समीप निकुञ्ज में ले जाऊँगा। जिन अनंग महाराज का कभी नाम भी नहीं सुना तुम कहती हो उनका साक्षात् दर्शन करना तब ही तो तुम्हारा सारा बड़प्पन जाता रहेगा ॥२९-३१॥

बिना विचार किये तुम यहाँ आई फूल तोड़ कर अपराधिनी हुई इस कारण क्षमा चाहती हो-तब हे सुन्दरि सुनो-मूल कथा तो यह है कि तुमको छोड़ने की हममें शक्ति नहीं है ॥३२॥

बन्य-प्रजाभिरखिलं चरितं यतस्ते
विज्ञापितं स्थिरचरादिभिराकुलाभिः ।
श्रुत्वा नृपोऽश्रुतचरां सरुषाग्रहेण
तां याचते मयि विधाय सशस्त्र-दण्डम् ॥३३॥
ज्ञातं हि योजन-चतुष्टयमित्यरण्यं
राज्यं नृपोऽप्यतनुरत्र तृणादि- वित्ताम् ।
कास्ताः प्रजा इति बदस्यवधेहि यास्ताः
साध्व्यः समस्त-जगतामुपजीव्य-लक्ष्म्यः ३४॥
किशलय-जलजातादर्शमत्तेभ-हंसाः
करभ-कनकरम्भा-सम्पुटी-हस्तिहस्ताः ।

तुम कहती हो कि यह बन साधारण है अर्थात् हरकोई इसमें प्रवेश पाने का अधिकारी है एवं यह भी कह रही हो कि नहीं जानती हो कि इसका कोई रक्षक भी है और यही इसका कारण है कि यहाँ के सब स्थावर-जंगम प्रजा-गण ने अनंगमहाराज के आगे तुम्हारे समस्त आचरणों की शिकायत की है। तुमको शास्त्र विरुद्ध काम करते देख उनको बड़ा क्रोध हुआ है, उसी क्रोधावेश के कारण असह्य पीड़ा देकर इस समय तुमको बन्धन करने और उनके सम्मुख ले जाने का हमको आदेश दिया है ॥३३॥

हे सुन्दरि ! यदि तुम कहती हो कि यह राज्य तो बहुत छोटा है केवल चार योजन ही इसका बिस्तार है, इसका राजा अङ्गहीन है एवं समस्त-तृणादि इसकी सम्पत्ति है। यह भी पूछती हो कि इस राज्य की प्रजा कौन कौन हैं, सो सुनो:- जो समस्त संसार के जीवन की रक्षा की सम्पद है वे ही सब साध्वी स्त्रियाँ इस राज्य की प्रजा हैं ॥३४॥

६)

स्मररथ-पद-कृशाकूल-सद्वेदि-सिंहा
अमृतह्रद-भुजङ्गी-पर्ण-कामासनानि ॥३५॥
कमल-मुकुल-ताल-श्रीफलेभेश-कुम्भा-
विश-मनसिज-पाशाशोक-सत्पल्लवांश्च ।
रतिपति-वरशक्तिव्रात-सद्गन्धफल्य-
स्तडिदलिचय-मुक्ता-हीर-जाम्बूनदाद्याः ॥३६॥

हे सुमुखि ! तुम्हारी अङ्ग रूपा चोरिणी द्वारा इस राज्य की प्रजा का सर्वस्व हरण हो जाने पर यह लोग इस समय निर्धन हो इधर उधर घूम रहे हैं। अब सुनो ! तुम्हारे किस किस अङ्ग द्वारा कौन कौन सी प्रजा का क्या क्या धन (सौन्दर्य) हरण हुआ है:—तुम्हारी हथेली और तलुओं ने पत्र और कमलों का सौन्दर्य, गमन-भङ्गी ने मत्त हाथी और हंस की चाल, नखों ने दर्पण, जङ्घा ने हस्तीशावक और स्वर्णवर्ण कदलीवृक्ष का, घुटनों ने स्वर्ण के पात्र (कटोरा) की आकृति का, दोनों ऊरू ने हस्तिशुण्ड का, कटि ने कामदेव के रथ के पहियों का, कमर के ऊपरी भाग ने उपवेशन वेदिका का; कटि के मध्यभाग ने सिंह की कमर के सौन्दर्य का, नाभि ने अमृतकुण्ड का, रोमावली ने सर्पिणी का, उदर ने पीपल-पत्र का, छाती ने कामदेव—शैय्या का, दोनों स्तनों ने कमल-कलियों, तालफल व बेलफल का एवं श्रेष्ठ हाथी के मस्तक के एक-भाग का; दोनों भुजाओं ने कमल—नाल और कन्दर्प पाश (फन्दे) का; हथेलियों ने अशोकवृक्ष के उत्तम-पत्रों का, अँगुलियों ने कामदेव की शक्ति-रूप चम्पक—फूलों की कलियों का; ठोडी की कान्ति ने विद्युत् का; गण्डों के ऊपरी भाग में निकले हुए छोटे छोटे बालों के समूह ने भ्रमर का; दाँतों

शुक-पिक-शिखि-भृङ्गी-कुन्द-रक्तोत्पलाद्याः
शफर-मृग-चकोरी-खञ्जनेन्दीवराणि ।
स्मर-खरशर-चाप-ज्या-जवा-बन्धुजीवाः
शिखर-दर-चमर्य्यः सूक्ष्म-कृष्णालहर्य्यः ॥३७॥
अन्या या याः कति ता गण्या वृन्दाबनमनु बिभवैर्धन्याः ।
त्वत्तनु-चौर्य्या हृत-सर्व्वस्वा भ्राम्यन्तीतस्तत इह निःस्वाः ॥३८॥
चतुर्भिः कुलकम्

की श्रेणी ने मोतियों की माला का; और सारे अंग की कान्ति ने सुवर्ण, गोरोचन और हरिताल आदि लेपों का; बाणि ने कोकिलकण्ठ का, नृत्य ने मयूर का, नेत्रों की चञ्चलता ने भ्रमरी का, मुख के सामने बाले चार दाँतों ने कुन्द-फूल का, तलुओं ने लालकमल का, नेत्रों ने मछली, मृग, चकोरों, खञ्जन और नील कमल का; टेढ़ी चितबन ने कामदेव के तेज–बाणों का, भ्रूयुगल ने मदनधनुष का, दोनों कानों के परस्पर अन्तर भाग ने कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा का, होटों ने जबाकुसुम का, होटों के समीप बाले दाँतों ने पके हुए दाड़िम–बीज का, कण्ठ की रेखाओं ने शंख का, केशो ने चमर का, उदर की रेखाओं ने यमुनाजी की सूक्ष्म-लहरों का हरण किया है ॥३७॥

यहाँ तक कि कामदेव के धनुष और बाण जो इस बन में सब प्रकार से सुरक्षित थे उनका तुमने अपनी टेढ़ी चितबन में हरण कर उसी धनुष-बाण से हमको बींध रही हो। कन्दर्प की प्रजा की सम्पत्ति और राज-सिंहासन आदि की शोभा चुराकर उसकी तीर-कमान तक लूट ली और उसी

इति तदुदित-नर्म्माकर्ण्य कर्णामृतं सा-
भ्युदित-तनु-विकारान शश्वदावृत्य यत्नात्।
लपनमिदमसत्यं कामिनः काः स्वकर्णे
विदधति तदितो यामीति नीचैर्वदन्ती ॥३६॥
दयितमपि मनाक् तं वीक्ष्य सावज्ञदृष्ट्या
द्रुतगतिचलिताग्रे मुग्ध-विब्बोक-दिग्धा।
क्व चलसि ननु धूर्त्ते मामनादृत्य भङ्ग्या
हरिरिति स वदंस्तामंशुकान्ते दधार ॥४०॥ युग्मकम्

को अब टँकोर दे रहो हो क्या ऐसी चौरिणी को राजा कभी छोड़ सकता है। जिस प्रजा का सौन्दर्य्य, माधुर्य्य और गौरव संसार में अतुलनीय है आज वही प्रजा सब अपने कुछ खोकर तिरस्कृत हो रही है। हे सुन्दरी! तुम्हारे अङ्ग की ओर देख कर उनको और कोई निहारता भी नहीं है। आज वे लोग तुम्हारी अङ्ग-छटा के द्वारा भिखारी हो गये हैं और व्याकुल हो सदा तुमको इधर उधर खोजते फिर रहे हैं। ॥३८॥

इसके बाद श्रीराधिका श्रीकृष्ण के इस प्रकार उपहास युक्त वाक्य और साथ साथ अपनी स्तुति के बहाने अपने समस्त अङ्ग के सौन्दर्य्य का वर्णन सुन उस समय उत्पन्न समस्त सात्त्विक-भावों को सम्वरण करती हुई यह कह कर वहां से चलने लगीं कि कामी पुरुष की ऐसी मिथ्या बातों पर कौन रमणी ध्यान देती है अर्थात् कोई नहीं ॥३६॥

इतना कह कर श्रीराधिका अपने प्रियतम की अवज्ञा कर उनकी ओर कटाक्षदृष्टि पात कर मुग्धावस्था को प्राप्त हो स्वभाव-जात विब्बोक नामक अलंकार से सुशोभित हो उठी।

अनुभूयैब तत्स्पर्शमानन्दोत्थैर्बिचालिता ।
नानाभावैः प्रियं राधा तीर्य्यग्ग्रीबा व्यलोकयत ॥४१॥
तारा-नर्त्तन-सूचितात्यबमतिः स्मेरा तदास्याम्वुजं
धाबन्ती तृषितालिनीब कुटिल-प्रान्ता निबृत्ता ततः।
किञ्चिद्बाष्प-कलाकुलाऽरुणतया स्पृष्टाञ्चलोल्लासिनी
राधा-दृष्टिरमज्जयत् प्रियमपारानन्द-बारांनिधौ ॥४२॥
आकृष्य तत्करधृतं वसनाञ्चलं सा
तिर्य्यग्दृगञ्चलकला-स्मरबाण-दृष्ट्या ।

जब द्रुत-चाल से गमन करने लगी तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे धूर्त्ते इस प्रकार हमारा अपमान कर कहाँ जा सकती हो अर्थात् मैं तो अनंग-महाराज का कर्म्मचारी हूँ क्या इस प्रकार छोड़ सकता हूँ, यह कह दौड़ कर उनका आँचल पकड़ लिया ॥४०॥

तब श्रीराधिका अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के स्पर्श सुख का अनुभव करने लगी और उस समय उनके समस्त अङ्ग में आनन्द के कारण जो भाव-समूह उदय हुए उनसे बिचलित हो ग्रीवा घुमाकर श्रीकृष्ण की ओर आड़-दृष्टि करने लगीं ॥४१

उस समय श्रीराधा की दृष्टि के माधुर्य्य का क्या वर्णन हो सकता है। जो कि-श्रीकृष्ण की अवज्ञा कर रही हैं, भ्रमरी के समान वह श्रीकृष्ण के मुख-कमल की ओर दौड़ कर कुटिल कटाक्ष अपनी गति द्वारा प्रान्त-भाग से प्रतिनिबृत्ता हो रही है। श्रीकृष्ण के आँचलधारण करने पर नेत्र वास्पमय और अरुण हो गये हैं! श्रीराधिका इस प्रकार श्रीकृष्ण को आनन्द-सागर में डुबाने लगीं ॥४२॥

६)

विद्धं मुहुर्विदधती प्रियमुन्मदान्धा
प्रत्याह तं स्मितसुधा-सुभगाननाब्जम् ॥४३॥
मधुर-सरसरम्यं वस्तुजातं हि यद्यत्
निवसति किल लोके प्राकृतेऽप्राकृते वा ।
अयमुरु तनु-चौर्य्या त्वं हरन्नस्य साधुः
स्वयमपि तदिहान्यत्रापि चौर्य्यापवादी ॥४४
साधुत्वे धाम्मिकत्वे च यस्य ते भाति साक्षिणी ।
कुमारीणां कोट्टवीनां मूर्द्ध्नि बद्धाञ्जलि-स्तुतिः ॥४५॥
व्रजभुवि युवराजः सर्व्व-साद्गुण्य पूज्यः
परिणय-विधियोग्यानन्त-कन्यायुतायाम् ।

उन्मत्ता श्रीराधिका उस वस्त्र को जिसे श्रीकृष्णजी पकड़े हुए हैं छुड़ा रही हैं और टेढ़ी चितवन से प्रियतम को विद्ध करती हुई कह रही हैं ॥४३॥

हे कृष्ण ! स्वाभाविक और अस्वाभाविक जगत में मधुर, सरस एवं रमणीय जितनी वस्तुएं मौजूद हैं तुमने उन सब की शोभा का अपने अङ्ग रूपी चोरि द्वारा अपहरण कराया है और अब साधु बने बैठे हो। दूसरों को चोरी का अपवाद लगा रहे हो ॥४४॥

और तो क्या कहूँ चीरहरण के समय तुम्हारी धर्म्म-परायणता और साधुता विदित ही है। बेचारी वे कुमारी कन्यायें नग्नावस्था में हाथ जोड़ तुम्हारी स्तुती कर रही थीं और तुम आनन्द मना रहे थे। धर्म्म-निष्ठा और साधुता का इससे उत्तम प्रमाण तुम्हारे अतिरिक्त और कहाँ मिल सकता है ॥४५॥

हे कृष्ण ! इस व्रजभूमि में अनेक कन्यायें विवाह योग्य हैं, तुम युवा हो, राजपुत्र हो, किन्तु कोई भी अपनी कन्या

अभिनव-तरुणोऽप्यप्राप्त-पाणिग्रहो य-
दादु धृत-नियमोऽसि ब्रह्मचारीति सत्यम् ॥४६॥
किम्वाऽसाधारणः कश्चिद्भाति त्वयि गुणो महान् ।
यमाकर्ण्य न कापि त्वां कन्या वृतवती कचित् ॥४७॥
तत्तापाद्भवता मन्ये तुरङ्ग-ब्रह्मचर्य्यकम् ।
अङ्गीकृत्य व्रजे स्वस्य ख्यापिता बटुता मृषा ॥४८॥
बटुश्चेत् पररामास्यालोकने कुतुकी कुतः ।
वंशी-चौरीवृताभिर्वा परस्त्रीभिः कुतो रतिः ॥४९॥
तद्भवान् बणिताख्यातिच्छलेन स्वार्थ-साधकः ।
कन्यानाञ्च सतीनाञ्च धर्म्म-ध्वंसाय दीक्षितः ॥५०॥

तुमको दान करना नहीं चाहता है। इसका कोई न कोई कारण ता अवश्य ही होगा। हमको तो ऐसा विदित होता है तुम्हारा स्त्रीलाम्पटय (कामुकता) ही इसमें बाधक है ॥४६॥

अथवा तुम्हारे भीतर और कोई इससे भी अधिक विशेष गुण है जिसको जानकर कोई भी रमणी तुमसे विवाह करने की इच्छा नहीं करती है ॥४७॥

अब मैं समझी कि-निराश होकर तुमने घोड़े के समान ब्रह्मचर्य्य धारण किया हुआ है अर्थात् घोड़ा विवाह तो करता नहीं है किन्तु घोड़ी को देखकर अपनी कामुकता प्रकट करने लगता है। इसी प्रकार तुम भी समस्त व्रजभूमि में मिथ्या-ब्रह्मचर्य्य दिखाते फिर रहे हो ॥४८॥

हे कृष्ण ! यदि कहो कि मैं ब्रह्मचारी हूँ तब दूसरों की स्त्रियों को क्यों ताकते फिरते हो। वंशी बजा बजा कर पर-रमणियों को अपनी ओर क्यों खींचते हो ? दिन रात दूसरों की स्त्रियों की क्यों आशा लगाये बैठे रहते हो ? ॥४९॥

कदाप्यनारोपित-पुष्पवल्ली-द्रुमैक-पोतोऽपि वनाधिकारी।
असंख्य-गोचारण लून-तत्तान्मूलोऽपि सत्यं बिपिनाबकस्त्वम् ॥५१
सख्यास्माकं वृन्दया बर्द्धितं यद्वृन्दारण्यं ख्यातमेतद्विधात्रा।
मह्यं दत्तं तत् सरत्नाभिषेकं राजानङ्गस्त्वञ्च पातेति सत्यम् ॥५२॥
इदं त्वसाधारणमस्मदीयं मत्कुण्डतीरोद्भव-केल्यरण्यम्।
मदीय-सिंहासन-धाम काम-शर्म्मप्रदाख्यं त्विह भाति कुञ्जम् ॥५३

यह सत्य है कि सब ही कामी पुरुष दुराचारी होते हैं किन्तु कोई भी अपने को ब्रह्मचारी घोषित कर धर्म्म के नाम पर कलंक लगाकर सती-साध्वी और कुमारी कन्याओं का धर्म नष्ट नहीं करता है। तुम तो इन सबसे भी कहीं ऊँचे उठ गये हो खबरदार फूले फूले इस ओर बढ़ने का प्रयत्न न करना ॥५०॥

कितने आश्चर्य की बात है कि तुमने इस बन में कभी एक पौधा तक फूलों का बोया नहीं है उसपर भी अपने को इस वन का स्वामी बता रहे हो। विपरीत, इस सारे वन को गौओं द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर दिया है और अपने को रखवाला घोषित कर रहे हो ॥५१॥

सुनो-हमारी जो एक सखी वृन्दा नाम की है उन्होंने ही परिश्रम करके इस वन को इतना सुन्दर बना रक्खा है। उन्हीं के नाम पर इस वन का नाम बृन्दावन पड़ा है। विधाता ने रत्न समूह के साथ हमारा राज्याभिषेक कर यह वन हमको भेंट में दिया है। अब इसके राजा कन्दर्प महाराज और रक्षक के रूप में तुम न जाने कहाँ से आ धमके ॥५२॥

और सुनो-यह विचित्र बन हमारे कुण्ड (राधाकुण्ड) के किनारे उत्पन्न हुआ है अतः यह हमारी क्रीड़ास्थली है, हमारे

आस्थानीयं कान्तवार्त्ता-सुधाधुङ्-
नाम्न्यस्माकं भाति पुंसामगम्या ।
यस्यां नित्यं मद्वयस्या निषण्णाः
संसेवन्ते प्रेष्ठवार्त्तामृतानि ॥५४॥
चिनुमः कुसुमं-वयमिन-सेवा-विधये रोद्धु यूयं के वा ।
परनीवृति-निजतार्पण-युक्तः किं ह्रीप्रिययापि त्वं मुक्तः ॥५५॥
बटो ! न ते कृत्यमिहास्ति पुष्पारामेऽवलास्वैरविहारधाम्नि ।
पशूनवंस्त्वं पशुपाल-सङ्गी तच्चारणाय व्रजशाद्वलेषु ॥५६॥
स्मितरुचि-शिशिरात्त्वद्वक्त्रपीयूष-रश्मे-
र्व्रजनयन-कुरङ्गोत्लावरम्यात् स्रवन्तीम् ।

सिंहासन का स्थान है और इसकी शोभा को 'कामशर्म्मद' नामक कुञ्ज बढ़ाती है ॥५३॥

और इसी स्थान पर 'कान्तवार्त्ता-सुधाधुक्' नामक हमारे बैठने की जगह शोभा पा रही है। इस स्थान में पुरुष प्रवेश वर्जित है। इस बनमें हमारे समान आयु वाली सब सखियाँ बैठकर प्रियतम की कथा वार्त्ता रूप अमृत अपने कर्णो द्वारा पान करती हैं ॥५४॥

और कहने लगीं कि हम तो सूर्य्य-पूजा के लिये फूल तोड़ रही हैं तुम हम लोगों को निवारण करने वाले होते कौन हो। यह स्थान तो हमारा है, दूसरों की जगह पर अपना अधिकार बताते तुमको लज्जा नहीं आती है ॥५५॥

हे ब्रह्मचारी ! यह पुष्प-वाटिका स्त्रियों की विहार-स्थली है, तुम यहाँपर कैसे आये हो ? जाओ ग्वालों के साथ पशु चारण करो-जहाँ कहीं कोमलघास पशुओं के चरने योग्य देखो वहीं चले जाओ ॥५६॥

पिबति हरिचकोरे नर्म्मपीयूषधारा-
मतृपदिह सखीनां दृक्चकोरीचयोऽपि ॥५७॥
तत्स्पर्शभीत्येव विवृत्य कन्धरां कटाक्ष-नीलोत्पलमालया प्रियम् ।
साभूषयन्त्यस्फुट-भर्त्सनोक्तिका सावज्ञमग्रेऽपससार लीलया ॥५८
कृष्णोऽथ कान्ता-तनु-चित्रनर्त्तकी-
लास्यावलोकोच्छलितातिलालसः ।
द्रुतं समेत्योच्चलितेन पाणिना
दधार चास्याश्चल-कञ्चुकाञ्चलम् ॥५९॥
कान्ता विभुग्नीकृत-चिल्लिकार्म्मुका
शोणाक्षि-कोणेक्षण-बाणमञ्चयैः ।

श्रीराधिका का मुखचन्द्र स्वभाव से ही सदा हास्यसुधायुक्त और सुशीतल रहता है (शुक्ल एवं कृष्णपक्ष का कोई विचार नहीं है) इस चन्द्रमा में स्थित नयन-रूप हरिण चञ्चलता के कारण सदा शोभायमान रहता है, मानो इस अपूर्व चन्द्रमा से निकले क्रीड़ारूप अमृत से श्रीकृष्ण का नयन रूप चकोर और सखियों की नयन रूप चकोरी इस सुधापान के सुख में विभोर हो तृप्ती लाभ नहीं कर पाते हैं-प्रेम पिपासा कभी शान्ति नही हो पाती है वह क्षण क्षण में बृद्धि को ही प्राप्ति होती रहती है ॥५७॥

तब श्रीराधिका इस भय से कि कहीं श्रीकृष्ण से स्पर्श न हो जाये, ग्रीवा घुमाकर कटाक्ष रूप नील-कमलों से अपने प्रियतम को विभूषित करने लगीं। कुछ कुछ अव्यक्त शब्द कहतीं हुई उनकी अवहेलना कर आगे को चलने लगीं ॥५८॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण ने उनके श्रीअङ्ग रूप नर्त्तकी के नृत्य दर्शन की कामना से दौड़कर उनका आँचल पकड़ लिया ॥५९॥

बिखण्डय तूर्णं प्रिय-धैर्य्यकञ्चुकं
लीलारविन्देन तताड तं मुहुः ॥६०॥
तस्यारबिन्दाहति-जात-शातं बिश्वाश्रयेऽस्यापि ममौ न देहे।
ततः स कम्पात् प्रससार बाह्ये प्रस्वेद-बाष्पोत्पुलक-च्छलेन ॥६१॥
तत्स्पर्श-संफुल्ल-तनोर्नतभ्रुव- श्छिन्ना स्वयं कञ्चुकबन्ध-वीटिका।
नीवी च चानं स्खलदन्तरीयकं रुन्धे परं स्वेद-जलं नितम्बके।६२
अथालिवर्ग-स्मित-लोलनेत्रा तत्पाणिरोधाद्वसनं बिमोच्य।
ततोपसृत्य द्रुत-नीवीबन्धे सा दक्षहस्ताप्यभवद्विहस्ता ॥६३॥

तब श्रीराधिका चितवन चढ़ा वक्र-दृष्टि से देखती हुई, प्रियतम के धैर्य्य रूप कबच को छिन्न भिन्न करती हुई बार बार लीला-कमल द्वारा उनकी ताड़ना करने लगी ॥६०॥

इस प्रकार लीला-कमल द्वारा प्रताड़ित होने पर श्रीकृष्ण के आनन्द की सीमा न रही। श्रीकृष्ण, यद्यपि समस्त ब्रह्माण्ड के आश्रय है तथापि इस आनन्द को अपने में धारण करने में असमर्थ थे। कम्प, स्वेद, अश्रु-पुलक आदि के बहाने बाहर निकालने लगे ॥६१॥

श्रीराधिका भी आनन्द के वेग को न रोक सकी। उनकी चञ्चल भ्रू नीची पड़ गई, देह प्रफुल्लित होने लगा जिससे कटि-देश की अंगिया के बन्धन टूट गये, समस्त शरीर रोमाञ्चित और स्वेदमय हो गया ॥६२॥

सब सखियाँ उनकी यह दशा देख हास्य विनोद करने लगीं। श्रीराधिका भी सखियों द्वारा उपहास किये जाने पर लज्जित हो चञ्चल नेत्र कर श्रीकृष्ण से अपना वस्त्र छुड़ा कर वहाँ से चलदीं। चलते चलते टूटे हुए चोली बन्धन को दाहिने हाथ से सम्हालने में व्यस्त हो गई ॥६३॥

कृष्णोऽपि ताबद्धरभाजि पूर्णे स्वेदाम्बुभिस्तत्स्तन-हेमकुम्भे।
स्मरोत्सवारम्भ-मिषेण पाणि-माधातुमुत्कोऽन्तिकमाप तस्याः ॥६४
कान्ता कथञ्चिद्विनिवद्धय नीबीं नेत्रेण पश्यन्त्यरुणाञ्चलेन।
बामेन तं स्मेरसखीः परेण तत्पाणि रोधं प्रति सत्वरासीत् ॥६५॥
स्मित-रुदित-बिमिश्रं गद्गदास्पष्टबर्णं
रमणमनृजुनेत्रा भर्त्सयन्त्युत्सुकाप।
प्रणत-सुखज-बाम्याद्भ्रामिता सास्य बाञ्छा-
प्रतिहति-रहितं तत्पाणि-रोधं व्यतानीत् ॥६६॥

श्रीकृष्ण भी अत्यन्त लालायित हो जिस प्रकार कामोत्सव के समय घट स्थापन कर उसमें आम्र डाली अर्पण की जाती है उसी छल से श्रीराधिकाजी के देदीप्रमान स्वेद-युक्त सुवर्ण कलस रूप दोनों कुचाओं को हाथ में धारण करने के निमित्त उनके समीप जा पहुँचे ॥६४॥

श्रीराधिका बड़े कष्ट के साथ अपनी अँगिया के बन्धन फिर से बाँध अरुण वर्ण बाँये नेत्र के कोने से श्रीकृष्ण की ओर और दाहिने नेत्र के कोने से हँसती हुई सब सखियों की ओर देखती हुई प्रियतम के हाथों को निवारण करने में व्यस्त हो गई ॥६५॥

और कहने लगी! अरे छीः छीः करते क्या हो? दुर्वला स्त्री को व्यथा देना तो कायरता है। शत्रु की तरह क्यों पीड़ित कर रहे हो? छोड़ते क्यों नहीं। स्मरण रक्खो-हमारी ललिता सखी तुमको अभी ठीक कर देगी। इस प्रकार श्री-राधिका श्रीकृष्ण को ताड़ना करने लगी। यद्यपि वह प्रेम-सुख के कारण वामा-रमणी की भाँति प्रतिकूल भाव दिखाती हुई अत्यन्त उद्विग्न और उत्कण्ठता थी उस पर भी कुछ

संघट्ट आसीत् करयोर्निरुद्धयो मिथश्चलत्कङ्कण-नाद-मञ्जुलः ।
समीरगत्या चलयोः समन्ततः कूजन्मदालि-व्रजयोरिवाब्जयोः ॥६७
अथैत्य ललिता मध्यं तयोः कृष्णं न्यवारयत् ।
कुन्दवल्ल्याह त्वं कृष्ण ! पञ्चदेवार्चनं कुरु ॥६८॥
कृष्णः कुन्दलतामाह त्वं ममास्मिन स्मर-क्रतौ ।
आचार्य्या भव सामग्रीमधिष्ठानञ्च मे दिश ॥६९॥
सा चाह नाहमाचार्य्या श्रुतं नान्दीमुखी-मुखात् ।
सुगोप्यमपि तद्ब्रूयां यत्त्वं मत्प्रिय देवरः ॥७०॥

कुछ मुसकाती हुई और रोने जैसा भाव कर तिरछे नयनों से गद्गद्-वाणी द्वारा प्रियतम की भर्त्सना और उनकी अभीष्ट-सिद्धि में वाधा उत्पन्न करने लगी अर्थात् उनके हाथों को अपनी दोनों कुचाओं से हटाने लगी ॥६६॥

उस समय जैसे वायु के वेग से चंचल गुञ्जारते हुए भ्रमर समूह से घिरे दो कमल आपस में मिलते हैं उसी प्रकार कङ्कण-ध्वनि के साथ श्रीराधा-कृष्ण का दो हस्तरूप कमलों द्वारा मिलन हुआ अर्थात् श्रीकृष्ण के दोनों हाथों में श्री-राधिका के दोनों हाथ मिल गये ॥६७॥

इस समय श्रीललिता सखी ने दोनों के बीच में उपस्थित हो श्रीकृष्ण को निवारण करने लगी। कुन्दलता यह देख श्रीकृष्ण को सम्बोधन कर कहने लगी—हे कृष्ण, तुम पञ्च-देवताओं का पूजन करो ॥६८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे कुन्दलते !-तुम इस कन्दर्पयज्ञ में आचार्य्य का पद अङ्गीकार करो। जिस जिस सामग्री की आव-श्यकता पड़े और जो स्थान उचित समझो वह सब हमको बतलाओ ॥६९॥

अस्याः पुरः सव्यकुचे गणेश्वर-स्फुरच्छिरःकुम्भतया प्रकाशिते ।
नमो गणेशाय त इत्युदीरयन् समर्पयादौ करहल्लकं स्वकम् ॥७१॥
नमः शिवायेति पठन् परे परं वक्षोज-लिङ्गेऽर्पय पाणि-पङ्कजम् ।
ह्रीं चण्डिकायै नम इत्यदः पुनः शिरस्यमुष्याः कुटिलभ्रुवोऽपि तत्॥
त्वमथ निज-कराभ्यामेतया वारिताभ्या-
मपि सुचिबुकमस्या वेणिमूलं च धृत्वा ।
मुखविधुमनु यत्नादोन्नमो विष्णवेऽस्मा
इति मनुवरमाख्यन् त्वं मुखाब्जं निधेहि ॥७३॥

यह सुन कुन्दवल्ली कहने लगी कि हम इस यज्ञ की आचार्य्या नहीं बन सकती हैं। हमने नान्दीमुखी से सुना है कि तुम हमारे प्रिय देवर हो, इस कारण तुमको एक गुप्त-बात बतलाती हूँ, सुनो ॥७०॥

जिससे यह पूजा बिना किसी विघ्न बाधा के सम्पन्न हो, तुमको पहिले गणेशजी की पूजा करनी चाहिये। श्रीराधिका की बाँई कुचा को गणेशजी का मस्तक मानो और "गणेशाय तुभ्यं नमः" इस मन्त्र को उच्चारण कर अपना दाहिना हाथ रूप लाल-कमल उस कुचा पर समर्पण करो ॥७१॥ और उनकी दाहिनी कुचा पर जो शिवलिंग रूप बना है "नमः शिवाय" मन्त्र उच्चारण कर अपना कमल रूप बाँया हाथ रक्खो। "ह्रीं चण्डिकायै नमः" मन्त्र का पाठ करके अधो मुख श्रीराधिका के मस्तक पर अपने दाहिने हाथ रूप रक्त-कमल से स्पर्श करो ॥७२॥

इस पर यदि श्रीराधिका तुम्हारे दोनों हाथों को हटावें तब भी तुम अपना दाहिना हाथ उनकी ठोढ़ी पर और बाँया हाथ उनकी वेणी पर स्थापन करो। "अस्मै विष्णवे नमः"

पुनः सवित्रे नम इत्युदीरयन्नस्यास्तु भास्वत्यधरेऽरुणे बलात्।
स्वदन्त-कुन्दाधर-वन्धुजीवकौ कृतावरोधोऽप्यऽनया समर्पय ॥७४
अथार्च्चनायां विहितोद्यमोऽसौ तां भर्त्सयन्तीं किल कुन्दवल्लीम्।
स्वं ताड़यन्तीं श्रवणोत्पलेन प्रियां स पश्यन्नवदत् प्रियालीः ॥७५॥
सख्यः स्मर-मखारम्भे पञ्चदेवार्च्चना मया।
कर्त्तव्या विघ्न-शान्त्यै किं शुभे खिद्यति वः सखी ॥७६॥
सखीमृषाटोपगिरः स्मिताननाः
समाक्षिपन्तीः कुटिलभ्रुवो हरिम्।
निवार्य्य ताः कुन्दलतां दृगिङ्गितै-
र्न्युदन्त्यवादीथ तं विशाखिका ॥७७॥

मंत्र का पाठ कर उनके मुखचन्द्र पर अपना पद्म मुख लगा दो ॥७३॥

फिर भी वे यदि बलपूर्वक तुमको हटाने का प्रयत्न करें तब तुम उनके सूर्य्य तुल्य रक्तवर्ण होठों पर "सूर्य्याय नमः" मंत्र उच्चारण कर अपने दन्तरूप कुन्द और अधर रूप बन्धु-जीव दो फूल समर्पण कर देना ॥७४॥

श्रीकृष्ण के इस प्रकार पूजा करने प्रयत्न पर श्रीराधिका कुन्द-बल्ली को ताड़ना करते करते अपने कर्णफूल द्वारा उन(श्रीकृष्ण) पर प्रहार करने लगी। उस समय श्रीकृष्ण श्रीराधिका की यह अवस्था देख सखियों को सम्बोधन कर कहने लगे:-॥७५

अयि सखियो! विघ्न बाधा निवारण करने के हेतु मैं शुभ कन्दर्प यज्ञ का विधान कर पञ्चदेवताओं (गणेश, शिव, शिवा, सूर्य्य और विष्णु) की पूजा करूँगा। किन्तु तुम्हारी सखी श्रीराधिका को इसमें आपत्ति क्यों है? ॥७६॥

इस पर सब सखियाँ बक्रदृष्टि से उपहास करती हुई

पत्न्या समं धर्म्मकृतिर्विधेया समत्वमत्राञ्चल-बन्धनेन ।
त्व तद्विनेज्याकरणे प्रवृत्ताः कथं सखी नेर्षतु धर्म्म-निष्ठा ।।७८।।

तस्यां विशाखां स्फुरिताधराननं
विलोकयन्त्यां कुटिलीभवद्भ्रुवि ।
पश्चात् स्थिता कुन्दलता मुदा तयोः
संव्यानयोरञ्चल-बन्धनं व्यधात् ।।७६।।

अलक्षिता सा द्रुतमेत्य सम्मुखं स्व-सेवया तुष्टमुवाच माधवम् ।
किं मङ्गलारम्भ इहान्यचर्च्चया नवग्रहानर्च्चय सर्व्वसिद्धये ।।८०।।

झूँठ मूठ उनकी ताड़ना करने लगीं। इसपर विशाखा उनको निषेध करती हुई आँखों के संकेत द्वारा कुन्दलता से कहने लगी कि तुम श्रीराधा-कृष्ण के अञ्चल एक दूसरे से बाँध दो। फिर श्रीकृष्ण को सम्बोधन कर कहने लगी:-।।७७।।

हे देवर! धर्म्मशास्त्र में ऐसा लिखा है कि पुरुष, स्त्री के साथ गठ-बन्धन करके ही धर्म्माचरण कार्य्य करे। इस कन्दर्पयज्ञ में स्त्री-पुरुष अँचल बन्ध होने पर ही सिद्धि लाभ कर सकते हैं। तुम बिना ग्रन्थि-बन्धन के यज्ञ क्यों आरम्भ कर रहे हो। हमारी सखी श्रीराधिका तो धर्म्म-शास्त्र में निष्ठा रखती हैं तब क्यों इसयज्ञ के लिये गठबन्धन कराना नहीं चाहती हैं।।७८।।

श्रीराधिका बिशाखा की यह बातें सुन होठ चबाती हुई कुछ क्रोध से भ्रू चढ़ाकर उनकी ओर ताकने लगी। इस बीच में अबसर पा कुन्दलता ने चुपके से दोनों का ग्रन्थि बन्धन कर दिया ।।७६।।

इस प्रकार बन्धन करने के बाद कुन्दलता श्रीकृष्ण के सामने आकर कहने लगी:-हे माधव! इस शुभ-यज्ञ में नव-

तामवादीदयं मह्य' ग्रहपूजा-बिधिं दिश ।
सापि तं राधिकाङ्गानि दर्शयन्ती दृशाबदत् ॥८१॥
अधर-नयन-गण्डोरोज-भालाननानां
ग्रहणमिह नवानामङ्ककानां ग्रहार्च्चा ।
यदपि तदपि तेषां सुष्ठु सन्तोष-हेतो-
रधर-विकच-बन्धूकार्पणं तेषु कुर्य्याः ॥८२॥
आचार्य्ये त्वं शिक्षयामुं स्वशिष्यं
स्वाङ्गान्यादौ ग्राहयित्वा ग्रहार्च्चाम ।
इत्युक्त्वा तां कृष्ण-भीत्यापयान्ती
राधा रुद्धा स्वाञ्चल-ग्रन्थिनारात ॥८३॥
तीर्य्यग्ग्रीवं वीक्ष्य बद्धाञ्चलान्तं
स्वान्तर्वाञ्छा-पूर्त्ति-फुल्लाननापि ।

ग्रहों के अतिरिक्त और किसी की पूजा नहीं होती है ॥८०॥

यह सुन श्रीकृष्ण ने कहा:- तब कहो नवग्रहों की पूजा किस प्रकार की जाती है? कुन्दलता आँखों के संकेत द्वारा श्रीकृष्ण को श्रीराधिका के सब अङ्ग दिखलाने लगी ॥८१॥

(अधर; दोनों नेत्र; दो गाल; दो कुचायें; मस्तक और मुख)

इन्हीं नौ को ग्रहण करने पर नवग्रहों की पूजा हो जाती है। अतः इन सबको प्रसन्न करने और तृप्त करने के हेतु अपने अधर रूप बन्धुजीव पुष्पद्वारा इनको स्पर्श करो ॥८२॥

श्रीराधिका कुन्दलता के मुख से यह रहस्यमय कथा सुन कहने लगी:- हे आचार्य्ये! तुम पहिले अपने शिष्य कृष्ण को अपने समस्त अङ्ग स्पर्श करा कर नवग्रहों की पूजा की शिक्षा दो। इतना कह वहाँ से भागने को उद्यत हुईं किन्तु अञ्चल बन्धन के कारण अवरुद्ध हो गईं ॥८३॥

कृष्णो सख्योः कुन्दबल्ल्यां च सेर्ष्या
शीघ्रं ग्रन्थि मोचयन्त्यब्रवात् सा ॥८४॥
धाष्टर्य नाट्ये नटस्यास्य बिशाखेयं बरा नटी।
सभ्येशा ललिता कुन्दबल्ली सेयं विदूषिका। ८५॥
पत्नीरङ्कोऽप्यऽन्यपत्न्यां स्वपत्नी-
भावं बिभ्रत् पूरयन् स्वीय-बाञ्छाम्।
मुक्तः सोऽयं लज्जयापि स्वसख्या
त्यक्तो धर्म्मे लोभतो मूलहानिः ॥८६॥

पीछे मुड़कर देखा तो अञ्चल बंधा पाया। इस पर मन में तो अत्यन्त हर्ष हुआ कि आज मनोकामना पूर्ण हुई। बाहर से दिखलावे को श्रीकृष्ण, ललिता, विशाखा और कुन्द-बल्ली के प्रति रोष प्रकट करती हुई बन्धन खोलने में व्यस्त हो गई और कहने लगीः-॥८४॥

इस निर्लज्ज धूर्त्त राज कृष्ण के नाटक की प्रधान नटी यह विशाखा ही है। यह ललिता इस नाटक के समस्त पात्रों की नियुक्ती करती है और यह कुन्दलता विदूषिका का काम कर सबको हँसाती रहती है ॥८५॥

कैसा आश्चर्य्य है कि यह निर्लज्ज कृष्ण पत्नि के अभाव में दूसरों की स्त्री को अपनी भार्य्या बनाकर इच्छा पूर्ण करता फिरता है। क्या ऐसा कर्म करने से इसको लज्जा नहीं आती है। हाय? मैंने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया। फूल तोड़ने के लोभ में मूल भी खो दिया अर्थात् लज्जा बिसर्जन रूप अधःपात कर अधर्म का आचरण किया। अब हम लोग आगे को कभी भी यहाँ नही आयेंगी ॥८६॥

कृष्णोऽथ तां तत्र निवारयन्नपि
प्रवृत्त आसीन्मुख-चुम्बनादिषु ।
कान्तापि तं तेषु निवारयन्त्यपि
प्राज्याग्रहाभूत् पटबन्ध-मोचने ।।८७।।
एवं तयोः स्वस्व-कृतौ समुत्कयो-
रन्योऽन्य-संरोध-वशात् विहस्तयोः ।
उपेत्य रुष्टा ललिता मृषेर्ष्यया
साऽभर्त्सयत्त्वं पटमप्यमोचयत् ।।८८।।
कर्त्तु भवल्लालसा चेत् स्वपत्न्यञ्चल-बन्धनम् ।
व्रजे ते दुर्लभा कन्या प्रजावत्यानयास्तु तत् ।।८९।।
सा मुक्तमाकृष्य पटान्तमारात्
स्थिता चलद्भ्रुः स्मित-शोभितास्या ।

श्रीकृष्ण आँचल खोलने में प्रवृत्त श्रीराधिका को निवारण करते हुए उनके मुखादि का चुम्बन करने में प्रवृत्त हो गये। उधर श्री राधिका भी उनके चुम्बन-कार्य्य में बाधा करती हुई अञ्चल खोलने लगीं ।।८७।।

इस प्रकार अपने अपने काम में उत्सुक दोनों एक दूसरे को हटाने में खींचातानी करने लगे। इस बीच ललिता पास आकर बनावटी रोष दर्शाती हुई श्रीकृष्ण की ताड़ना करने लगी और बन्धन खोल दिये ।।८८।।

ललिता कहने लगी:-यदि तुम्हारी कामना पत्नि के साथ ग्रन्थि बन्धन कराने की है तो वृन्दाबन में तो तुमको कोई अपनी कन्या देगा नही, इसलिये एक काम करो-अपने भाई की स्त्री कुन्दवल्ली के साथ ही क्यों न गठ-बन्धन करालो ।।८९।।

तं प्रेरयन्ती स्वदृगिङ्गितेन
न्यस्तेक्षणं स्वानन इत्यवादीत् ॥६०॥
भ्रान्ताचार्य्या ते यदादौ बिधेयां दिक्पालार्च्चा या विहाय ग्रहाणाम्।
अर्च्चामग्नं कारयन्ती भवन्तं कर्म्मण्यस्मिंश्छिद्रतामादधाति ॥६१॥
कुन्दबल्ल्यब्रवीत् नाहं भ्रान्ताज्ञेऽस्मिन् स्मरक्रतौ ।
दिग्देबतार्च्चनात् पूर्व्वं ग्रहपूजेत्ययं बिधिः ॥६२॥
स्थानाधिष्ठान-नामानि तेषां पृष्टाच्युतेन सा ।
दृशा तं दर्शयन्त्यालीर्बभाषे कुन्दवल्लिका ॥६३॥

तब बन्धन मुक्त होने पर श्रीराधा दूर जा खड़ी हुई और अपनी ओर निहारते कृष्ण को आँख के इशारे (संकेत) से कहने लगीं कि कुन्दलता के समीप जाओ ॥६०॥

और कहने लगीं:- हे कृष्ण ! तुम्हारी आचार्य्या कुन्दबल्ली इस समय बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और तुम भी निरे मूर्ख ही रहे। शास्त्र का बचन है कि यज्ञ आरम्भ में पहिले दिक्-पालों की पूजा की जाये किन्तु इस मूर्खा आचार्य्या ने ऐसा न करा कर ग्रहों की पूजा कराई इसी से तो बाञ्छित फल प्राप्त न हो सका ॥६१॥

इस पर कुन्दलता कहने लगीः-अयि मूर्खे राधे! मेरी बुद्धि तो ठीक है। मैंने तो शास्त्र के अनुसार ही यह यज्ञ कराई है, पहिले ग्रहों का ही पूजन होता है ॥६२॥

तब श्रीकृष्ण कुन्दलता से कहने लगेः-अब तुम हमको दिक्पालों के स्थान, अधिष्ठान और नामों का बर्णन करो। इस पर कुन्दबल्ली ने आँख के इशारे से ललिता आदि सखियों को इंगित कर कहना आरम्भ कियाः- ॥६३॥

पश्यैतास्ते कृतार्च्चायां वाञ्छा-दाने समुत्सुकाः ।
स्वयमागत्य दिक्पाल-मूर्त्तीः स्व स्व-दिशि स्थिताः ॥६४॥
विशाखा शाङ्करी मूर्तिर्ललिता शातमन्यवी ।
शौचा सुदेविका तुङ्गविद्या दाण्डधरी तथा ॥६५॥
चित्रा नैशाचरी रङ्गदेवी प्राचेतसी स्मृता ।
सादागती त्विन्दुलेखा धानदी चम्पकालिका ॥६६॥
श्रीरूपमञ्जरी सेयं वैधात्री निपुणाग्रतः ।
रसोल्लासकरी दक्षा शैषी सानङ्गमञ्जरी ॥६७॥
सदा स्वार्थे त्वद्धिताढ्या एता दिक्पालमूर्त्तयः ।
सन्त्युन्मुखास्त्वदर्च्चायै त्वयाच्चर्या फलसिद्धये ॥६८॥
तास्तां रूषा पामरि कारय त्वं धृष्टेऽमुना स्वप्रिय-देवरेण ।
स्वमूर्त्ति-पूजामिति: भर्त्सयन्ती पश्यन्नसावर्च्चितुमुत्ससर्प ॥६९॥

यह देखो सब दिक्पाल इस यज्ञ का फल देने के हेतु ललिता आदि सखियों का रूप धारण कर अपनी अपनी दिशाओं में आसन जमाये बैठे हैं। इसमें कौन दिक्पाल किसका रूप धारण किये हुए है सो कहती हूँ, सुनो:—विशाखा शंकर है; ललिता इन्द्र है, सुदेवी अग्नि है, तुंगविद्या यम है; चित्रा नैऋत्य है; रंगदेवी वरुण है; इन्दुलेखा वायु है; चम्पकलता कुबेर है; और जो पहले से ही लीलारास में निपुणा है वही रूपमञ्जरी ब्रह्मा है एवं अनङ्गमञ्जरी अनन्तदेव है ॥६४-६७

अब कुन्दलता राधिका से कहती है, हे सखि! ये सब दिक्पाल रूपा सखियाँ सदा अपने कार्य्य साधन के निमित्त और तुम्हारी भलाई के ही यहाँ आई हैं और तुम्हारी पूजा ग्रहण करने को खड़ी हैं, इस लिये वाञ्छित फल प्राप्ति के हेतु इनकी पूजा करो ॥६८॥

तदागति-सशङ्कास्ताः सावधानाः स्वरक्षणे ।
पश्यन्त्यो यान्तमन्यां तं ददृशुः स्वस्व-सन्निधौ ॥१००॥
यां यां प्रतीयाय स चञ्चलाक्षीं सा सापगच्छन्त्यमुनावरुद्धा ।
कृतार्द्ध-पूजापि पलायितालि- साहाय्यतोऽभून्मिषतो हठाद्वा ॥
सकाकु-विनयात् कापि साटोप-तर्ज्जनात् परा ।
अपेतान्यां विधयान्या संव्यान-त्यागतोऽपरा ॥१०२॥
तासां मुखं सस्मित-रोद-हेलं संफुल्ल-भुग्नारुण-चञ्चलाक्षम् ।
वीक्ष्येप्सितां प्राप मुदां स चित्रं विघ्नाहते कर्म्मणि यत्फलाप्तिः ॥

तब ललिता आदि सखियाँ कहने लगीः-हे नीच, निर्लज्जे कुन्दलते तुम अपनी ही पूजा अपने देवर से क्यों नहीं करा लेती हो। श्रीकृष्ण सब सखियों को क्रोधयुक्त देख उन सबकी पूजा करने के लिये उनपर द्रुत वेग से टूट पड़े ॥६६॥

सखियाँ यह देख कि कुन्दलता के निर्देशानुसार श्रीकृष्ण हम लोगों की पूजा के लिये समीप आ रहे हैं तब वे अत्यन्त चिन्तिता हो अपनी आत्म रक्षा के लिये सावधान हो गई। प्रत्येक सखी श्रीकृष्ण को अपने समीप ही आते देखने लगी ॥१००॥

श्रीकृष्ण जिस जिस सखी के निकट जाते हैं वही भागने लगती है किन्तु कोई २ अवरुद्ध हो जाने पर अन्य सखी की सहायता पा भागने का प्रयत्न करती है ॥१०१॥

कोई दैन्य वाक्यों द्वारा उनकी विनती करती है कोई कोई वाद विवाद करती है और कोई अपनी ओढ़नियाँ छोड़ पलायन कर जाती है ॥१०२॥

सब सखियों के इस प्रकार बच कर भागने से यद्यपि श्रीकृष्ण की कामना की तृप्ति न हो पाई तब भी उनके रोदन

इतस्ततस्तां प्रपलाय्य राधा-मासाद्य दुर्गं परितः स्थितानाम् ।
तासां स्फुरच्चञ्चल-दृक्चकोर्य्यः कृष्णाननेन्दौ तृषिता निपेतुः ॥१०४
आसाद्य दृप्यद्वृषभानुजां श्रियं तासां प्रफुल्लानि मुखाम्बुजानि सः।
समीक्ष्य धृष्णाङ्मधुसूदनस्तदा पिपासयासीदुपसर्त्तुमुद्यतः ॥१०५
उल्लङ्घ्य राधां महसोत्पतिष्णुस्तया रुषा हुङ्कृतितो निरुद्धः।
स्तब्धः पुरोऽस्याः सभियेव तिष्ठन्न्यधाद्दृशं कुन्दलताननेस्वाम् ॥

मिश्रित हास्य विनोद और अवहेलना युक्त सुन्दर मुख और रक्तबर्ण नेत्रों के दर्शन कर उनको महा आनन्द प्राप्ति हो गई ॥

यदि च श्रीललिता आदि सखियाँ इधर उधर भागकर रक्षा पाने के लिये श्रीराधा के चारों ओर इकट्ठी हो गई हैं तथापि उनके नेत्र-रूपी चकोरी श्रीकृष्ण के चन्द्र-रूप मुखामृत का पान करने लगी ॥१०४॥

ज्येष्ठ मास के सूर्य का एक नाम बृषाभानु भी है। उस महीने की धूप की कान्ति को बृषभानुजा कहते हैं। उसी बृषभानुजा द्वारा जिस प्रकार कमल खिलता है उसी प्रकार श्रीबृषभानु–राजा की कन्या श्रीराधिका का आश्रय पा सब सखियों के सुन्दर कमलमुख बिकसित हो उठे। खिले हुए कमल को देख मधुलोभी भ्रमर जिस प्रकार अपनी तृष्णा को नहीं रोक पाता है उसी प्रकार मधुसूदन श्रीकृष्ण की रस-पिपासा सखियां के पद्म रूप मुख का देख प्रबल हो गई और उनके समीप जाने के लिये वे आतुर हो गये ॥१०५॥

और श्रीराधिकाजी की परवाह न कर सखियों के ऊपर झपट पड़ने की चेष्टा करने लगे किन्तु श्रीराधा ने बल पूर्वक एक डाँट फटकार के साथ आगे बढ़ने से रोक दिया। श्रीकृष्णजी आश्चर्य्य चकित हो बिचार करने लगे कि यह आशय

श्रीचैतन्य-पदारविन्द मधुप-श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टबरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽयं नवमः समाप्तिमगमन्मध्याह्न-लीलामनु ॥९॥

❀ अथ दशमः सर्गः ❀

अथेङ्गितज्ञा किल कुन्दबल्ली सर्व्वैष्टदानङ्गमखक्रियायाम ।
विघ्नाद्विषीदन्तमिवाभ्युपेत्य स्वयं विषण्णेव तदाह कृष्णम ॥१॥

क्या है। पहिले तो हमको ऐसा करने के लिये उत्साहित किया और अब डाँट डपट कर रही हैं। बास्तव में श्रीराधिका की हुँकार श्रीकृष्ण को अचम्भित करने की एक चाल थी और हुआ भी ऐसा ही। वे भय से कुन्दलता की ओर देखने लगे जिसका अर्थ था कि बताओ यह मामला क्या है ॥१०६॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरण कमलों के मधुपान में भ्रमर के समान श्रीरूप-गोस्वामीजी की सेवा के फल स्वरूप, श्री-रघुनाथदासगोस्वामी द्वारा प्रेरणा किया हुआ, श्रीमत् जीव-गोस्वामी के संसर्ग से उत्पन्न एवं श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी के वरदान के प्रभाव से प्रकाशित श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य की मध्याह्नलीला का नवम सर्ग समाप्त हुआ ॥९॥

पशुपतिरसि यद्वो लीलया कामनाशः
क्रतुहतिरपि तस्माद्देवता-कर्म्मनाशे।
कथमिह फललब्धिस्तत्त्यजाश्वन्यधर्म्मं
प्रणय-परवश ! त्वं स्वीयधर्म्मं विधेहि ॥२॥
श्रां सर्व्व-शङ्करतया शिवमूर्त्तितश्च
प्राज्ञोऽपि मां किल महेश्वरमामनन्ति।

कुन्दलता श्रीकृष्ण के उस समय के भावों को समझ गई कि वे अपनी सर्व-सिद्धि दाता कंदर्प यज्ञ में विघ्न होने पर दुःखी है। वह उनके समीप गई और खेद भरे शब्दों में कहने लगी:- ॥१॥

हे पशुपति कृष्ण ! जिस प्रकार पशुपति महादेव ने अपने तीसरे-नेत्र--ज्वाला से कामदेव को भस्मीभूत कर दिया है उसी प्रकार आज तुमने भी पराक्रम लीला दिखलाते हुए बृन्दावन की महारानी श्रीराधिका को उलघँन (अवज्ञा) कर कामदेव को नष्ट कर दिया है। उसके साथ साथ उसकी यज्ञ भी तो नष्ट हो गई है। यज्ञ नष्ट होने पर देवताओं की कृपा और शुभ-कार्य्य की हानि होती है। इसी कारण दिक्-पालों के बरदान से भी वञ्चित रहे। जानते नहीं बृन्दाबन में प्रेम का ही राज्य है। यहाँ अहंकार कैसे टिक सकता है। अतः अब तुम भी अन्य धर्म्म त्यागकर पशुपति धर्म्म का ही सहारा लो अर्थात् जिस प्रकार महादेव ने पार्वती में अपना आधा अङ्ग समर्पण किया है तुम भी ललिता आदि सखियों में अपना अङ्ग समर्पण करो ॥२॥

श्रीकृष्ण कहने लगे:-सखी: ? हमको स्मरण आया कि हम जैसे सब लोगों के सुख का विधान करते हैं वे हमको शिव

१०)

स्वप्रेयसीं प्रति निजाङ्ग-समर्पणाख्यं
तत्तस्य धर्म्ममपि नित्यमहं करोमि ॥३॥
किन्तु स्ववामवपुरङ्गमनेन दत्तं
पूर्व्वाङ्गपूर्व्वमखिलाङ्गमहं ददामि ।
यत् प्रेमवश्य-सुविदग्ध-वदान्यताभ्यः
कीर्त्तिस्ततोऽपि बिपुला मम लालसीति ॥४॥
ततः स्वस्माच्छङ्कमानां सावधानामपि प्रियाम् ।
अलक्षितमुपेत्याह क्रोड़ीकर्त्तु कृतोद्यमः ॥५॥
एह्येहि गौरि ! त्वमिदं शरीरं गृहाण मे चन्द्रक-शेखरस्य ।
इत्यालपंस्तां परिरब्धुमुत्कः कृतापयानां स हठाद्दधार ॥६॥

कह कर पुकारते हैं। इसलिये अब हम वही धर्म्म अव-लम्बन करते हैं जो महादेव ने किया है ॥३॥

हे सखी ! महादेवजी ने तो अपनी पत्नि शंकरी को केवल अपना बाँया अंग ही दान किया है मैं तो अपनी प्रेयसी को अपना समस्त अङ्ग प्रदान करूँगा। ऐसा करने से हमारी प्रेमाधीनता, रसिकता और दानशीलता आदि गुण महादेवजी की अपेक्षा अधिक ख्याति प्राप्त करेंगे ॥४॥

अब श्रीकृष्ण यह देख कि प्रिया शंकाकुल और साव-धान हो गई है, चुपके से उनके समीप जा गोद में उठाते हुए कहने लगेः–॥५॥

हे गौरी ! आओ, मैं चन्द्रशेखर (महादेव) हूँ, हमारे शरीर को अङ्गीकार करो, इस प्रकार कहते कहते उनको आलि-ङ्गन करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो डर के कारण भागती हुई श्रीराधिका को पकड़ लिया ॥६॥

सगद्गदं भर्त्सयन्ती सेयं सस्मित-रोदनम।
तस्मात् कथञ्चित विश्लिष्य सेयं तस्थौ तदग्रतः ॥७॥
मुखपरिमल-लुब्धस्यालिवृन्दस्य कर्णा-
न्तिकमनु पततः सा झङ्कृति-त्रस्तचेताः।
तदनु चकित-चञ्चद्दृष्टिभङ्गीर्दधाना
स्वयमपगत-धैर्य्या सस्वजे प्राणनाथम ॥८॥
ततः सखीनां स्मित-जातलज्जा कृतप्रयत्नापि ततोऽपसर्त्तुम।
तेनातिगाढं हसता गृहीता बभौ पयोदे स्थिर-चञ्चलेव ॥९॥
ईर्षा-त्रपा-निर्वृति वामताभि-र्दृग् देवताभिर्ललनाग्रहैः सा।
आविष्टवाङ्मानस-विग्रहासीत स्वचेष्टया लोकयतां सुखाय ॥१०॥

तब श्रीराधिका मुसकराती हुई और साथ ही साथ रोने जैसी चेष्टा करती हुई गद्गद्वाणि से श्रीकृष्ण को भर्त्सित करते करते किसी तरह उनसे अपना हाथ छुड़ा सामने खड़ी हो गईं ॥७॥

उस समय श्रीराधिका के कमल-रूप मुखारविन्द से निकली सुगन्धि का पान करने के लोभ से मुग्ध-भ्रमर उनके कानों के समीप आ गुञ्जारने लगे। उनके आक्रमण से बचने के हेतु इधर उधर भागती हुई स्वयं प्रियतम के बाहुपाश में जा पहुँचा ॥८॥

इस पर सब सखियों को हास्य करते देख श्रराधिका अत्यन्त लज्जा अनुभव करती हुई श्रीकृष्ण से मुक्ति पाने की चेष्टा करने लगी किन्तु उनके गाढ़ आलिंगन से छुटकारा न पा सकीं और काले-बादलों में बिजली की भाँति शाभायमाना दिखाई देने लगी ॥९॥

सशपथ-नुति-निन्दा-तर्जनाक्षेप-दैन्यं
स्मित-रुदित-विमिश्रं श्लिष्टमेषा लपन्ती ।
प्रिय-दृढ़-भुजबन्धं मोचयन्ती कराभ्यां
भृशमतनुत सालीवृन्द-कृष्णस्य तुष्टिम ॥११॥
तयोर्द्दृढालिङ्गनतः सुतृप्ताः कम्पादिसम्पन्निचिताः समीक्ष्य ।
सखीमुर्दोत्फुल्लमुखीर्निकुञ्जे नान्दीमुखीं सा बदति स्म वृन्दा ॥१२
आश्चर्यं हरिणा राधा गाढ़मालिङ्गिता चिरम ।
तद्सङ्गति-युक्तापि निर्वृतासीत् सखीततिः ॥१३॥

स्त्रियों के शरीर में जैसे किसी एक उपदेबी के प्रवेश होने पर वह देबी उस स्त्री को जैसे चलाती, कहलाती और कराती है वह उसी प्रकार करती है, श्रीराधिका के शरीरमें भी ठीक उसी प्रकार एक ही समय लज्जा, असम्मति, द्वेष और गुप्त हर्ष (ये समस्त उपदेवता) मन और बाणी द्वारा प्रकट होने लगे, जिनको देख सब सखियाँ और श्रीकृष्ण परमानन्द लाभ करने लगे ॥१०॥

श्रीराधिका की इस समय की दशा बड़ी बिचित्र थी। वह बल प्रयोग द्वारा उनके भुज-बन्धन से मुक्त होने की चेष्टा करते हुए श्लेष बाक्यों द्वारा उनकी भर्त्सना कर रही थी ॥११॥

प्रिया प्रियतम के इस प्रकार गाढ़ आलिंगन से महानन्द को प्राप्त सखियाँ भी प्रफुल्लित हो पुलकायमाना हो गईं। यह देख लीला दर्शन के हेतु श्रीबृन्दादेवी नान्दीमुखी से कहने लगी:-॥१२॥

हे नान्दीमुखि ! कितने आश्चर्य्य की बात है कि श्रीकृष्ण केवल श्रीराधिकाजी को आलिंगन किये हुए हैं, सखियों में से

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टेऽस्मिन् स्पर्श-लालसा ।
स्पर्शेऽस्य सेर्ष्या-बाम्यं तच्चित्रमासां विचेष्टितम् ॥१४॥

नान्दीमुखी तामवदद् बनेश्वरीं लोकोत्तराणां व्रजसुभ्रुवां सदा ।
कृष्णैकसौख्यार्थ-शरीर-चेतसां तत्रात्र चित्रं किल चेष्टितं यतः ॥१५
सख्यः श्रीराधिकाया व्रजकुमुदविधोर्ह्लादिनीनाम-शक्तेः
सारांश-प्रेमवल्ल्याः किशलयदल-पुष्पादितुल्याः स्वतुल्याः ।
सिक्तायां कृष्णलीलामृत-रसनिचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां
जातोल्लासाः स्वसेकाच्छतगुणमधिकं सन्ति यत्तात्र चित्रम् ॥१६॥
विभुरपि सुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः
क्षणमपि न हि राधाकृष्णयोर्या ऋते स्वाः ।

किसी को छुआ तक भी नहीं है तो भी उन सबके अङ्ग में श्रीराधा के समान कम्प-पुलकादि आनन्द बिकार उदय हो गये हैं ॥१३॥

इसके अतिरिक्त और विचित्रता देखिये-इन लोगों की यदि श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हो पाते हैं तब उत्कण्ठा से पागल हो जाती हैं। दर्शन पाने पर उनके स्पर्श की इच्छा करती हैं और जब स्पर्श होता है तब मान कर बैठती हैं अर्थात् असम्मति दिखलाने की चेष्टा करती हैं ॥१४॥

यह बात सुन नान्दीमुखी कहने लगीः-इन लोगों की चेष्टा सांसारिक होते हुए भी लोकातीत है। यह दूसरों की समझ से बाहर है। इनमें आत्मसुख की गन्ध तक भी नहीं है। इनका शरीर, मन और बाणि सदा श्रीकृष्ण को सुखी करने में ही तत्पर है यही कारण है कि वे उनके सुख को भली प्रकार समझती और आस्वादन करती हैं। उस सुख का अनुभव करते करते इनमें भाव-बिकार उदय हो जाते हैं ॥

प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः
श्रयति न पदमासां कः सखीनां रसज्ञः ॥१७॥
राधा काञ्चनवल्ली फुल्ला कृष्णस्तु फुल्ल-तापिञ्छः।
अनयोः सङ्गम-लक्ष्मीः सुखयति नहि कं सचेतनं लोकम् ॥१८॥
आसां विशुद्ध-प्रणयार्द्र-चेतसां तात्पर्य्यमस्यैव सुखे न चात्मनः।
वाम्यं हि कान्तस्य सुखाय सुभ्रुवा-मतस्तदुन्मीलति तस्य सङ्गमे ॥

और श्रीराधिका का सुख तो इन लोगों का स्वाभाविक सुख ही कहा जा सकता है, कारण ब्रजरूप कुमुद को सींचने वाले चन्द्र-रूप श्रीकृष्ण की मूर्त्तिमती आनन्दशक्तिस्वरूपा हमारा श्रीराधिकाजी ही तो उनकी लीलाओं में प्रेम-कल्प लता का स्वरूप हैं और सब सखियाँ उस लताके फूल, पत्ते, और कलियाँ हैं। जब प्रेम रस-रूप बादल उस राधारूप लता में लीला रूप वर्षा करता है, तब ही तो फूल-कली रूपा सखीगण का शरीर प्रसन्नता आदि से खिल जाता है, इसमें आश्चर्य्य की क्या बात है, यह तो उनका स्वभाविक गुण है १६

हे वृन्दे ! सर्वव्यापी ईश्वर जिस प्रकार चिच्छक्ति के बिना पूर्ण नहीं होता है उसी तरह अति महान् स्वप्रकाश और सुख-स्वरूप श्रीराधा-कृष्ण का भाव सखियों के बिना क्षण-मात्र लिये भी रसयुक्त नहीं हो सकता है। अतः कौन ऐसा रसिक होगा जो इन सखियों के पद का आश्रय ग्रहण न करेगा ॥१७॥

श्रीराधिका तो प्रफुल्ल काञ्चन-लता रूप हैं और श्रीकृष्ण कुसुमित तमाल-वृक्ष स्वरूप हैं, भला इन दोनों के परस्पर मिलन की शोभा से कोन प्राणी है जो सुखी न होता हो ॥१८॥

अथेप्सितैतद् दृढ-बाहु-वक्षः-स्पर्शोत्थितानन्द-भरापि राधा।
बाम्योत्थ वैमत्यमिवाचरन्ती सा भर्त्सयन्ती ललितामबादीत् ॥२०

स-कुसृति-हरिदूत्या कुन्दवल्ल्या मिलन्ती
कपटिनि ललिते त्वं मामिहानीय धृष्टे !
शठकुल-गुरुहस्ते नेत्रभङ्ग्या निधाय
कलयसि खलभर्त्तुर्धाष्ट्यं नृत्यं तटस्था ॥२१॥

इन ब्रजयुवतियों का बिशुद्ध प्रेम है, वे सदा उसी प्रेम में मत्त रहती हैं। इनकी समस्त कामनायें श्रीकृष्ण को ही सुखी करने में होती हैं, आत्मसुख की बासना इनमें लेश मात्र भी नहीं है। श्रीकृष्ण-मिलन के समय इनमें जो वामता (असम्मति) प्रकाश पाती है वह भी श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिये ही होती है। इसी कारण इन ब्रजाङ्गनाओं के साथ श्रीकृष्ण का मिलाप होने पर उनमें वामता उदय हो जाती है ॥१६॥

इसी हेतु तो श्रीराधिका श्रीकृष्ण के दृढ़ बाहु-पाश में आबद्ध होने पर और बक्षस्थल के स्पर्श से भी मन में तो अत्यन्त सुख अनुभव करती हैं किन्तु ऊपर से वामता भाव दिखलाती हुई ललिता सखी को तिरस्कार कर कह रही हैं:-॥२०

कुन्दलता तो श्रीकृष्ण की निर्लज्जा दूती है ही। वह तो अच्छा बुरा सब कुछ कर सकती है किन्तु हे कपटिनी ललिते तुमने भी उसके साथ साठ गाँठ करके सूर्य्यपूजा के बहाने हमको घर से बाहर कर फूल तोड़ने के छल से और कृष्णकुण्ड में स्नान का उपदेश दे यहाँ लाकर शठकुल गुरु इस धूर्त्त श्रीकृष्ण के हाथों में डाल दिया है। अब खड़ी हमारा उपहास कर रही है। इसके हाथों से छुड़ाना तो

प्रखरा यदभून्मृद्वी मृदुनालिङ्गितामुना ।
न तच्चित्रं यदासीद्वां गुणयोः परिवर्त्तनम् ॥२२॥
हृष्टेव रुष्टा ललितामुना व्यधात् सम्वामुद्यत्स्मित-गर्भ-तर्ज्जनम् ।
सतीव्रत-ध्वंसन-धृष्ट-भूपते विधातुमारब्धमिदं नु किं त्वया ॥२३॥
स्वसखीं पृच्छ ललिते किमियं कर्त्तुमुद्यता ।
बलात् साङ्गेन संवेष्ट्य मदङ्गं यात्मसाद्व्यधात् ॥२४॥
पुन्नाग ! त्वां माधवीयं स्वयं यत् फुल्ला स्वाङ्गैर्वेष्टते युक्तमेतत् ।
त्वं यत्तां तैर्वेष्टसे तन्न युक्तं वल्लया वृक्षो वेष्ट्यते नामुनासौ ॥२५॥

दूर रहा इस धूर्त्त शिरोमणि का निर्लज्ज नृत्य देख प्रसन्न हो रही है ॥२१॥

हे ललिते ! इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है कि मृदुभाषी श्रीकृष्ण के साथ मिलकर तुम्हारी प्रखरता मृदु हो गई है और श्रीकृष्ण की मृदुता तुम्हारे मिलने से प्रखर हो गई है अर्थात् तुम दोनों के इन गुणों का परिवर्त्तन हो गया है ॥२२॥

श्रीकिशोरीजी के यह बचन सुन ललिता यह जान कि "श्रीकृष्ण-स्पर्श से श्रीराधिका को सुख होगा" अन्तर हृदय में तो हर्ष को प्राप्त हुई किन्तु कपट रोष दिखलाते हुए उनको ताड़ना करने लगी कि हे धृष्टराज ! सती-व्रत नाशक तुम यह कैसा आचरण कर रहे हो जो श्रीराधिकाजी को इस प्रकार छेड़ रहे हो ॥२३॥

उस पर श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे सखी इसमें हमारा तो अपराध नहीं है तुम अपनी सखी से ही पूछो वही तो बलपूर्वक हमारे अङ्ग को अपने अङ्ग से लिपटाये हुए हैं ॥२४॥

यह सुन ललिता ने कहा कि हे कृष्ण ! खिली हुई माधवी-लता स्वरूपा हमारी सखी श्रीराधा यदि पुन्नाग-वृक्ष स्वरूप

मयाप्यस्यै दत्तामङ्गमनयाप्यात्मसात्कृतम ।
का ते हानि: पुनर्नैतदादातुं शक्यते मया ॥२६॥
इयं क्रूरा शूरा जयति ललिता क्रोध-वलिता
यश: श्वेतामेतां विसृज शठ ! तां स्वां च शठताम् ।
निजाभिध्यामिद्धामलिपक ! सुसिद्धां स्वपुरत:
प्रजावत्यां सत्यां त्वयि च रतिमत्यां विरचय ॥ ७॥

पुरुष-श्रेष्ठ तुम से जो लिपटी हुई है यह ठीक ही तो है। यह तो लता का स्वभाव ही है कि वह वृक्ष से लिपटती है। ऐसा तो कहीं देखने में नहीं आता है कि वृक्ष लता को लिपटता है। तुमने जो अपने अङ्ग को उनसे लिपटा रक्खा है यह तो उचित नहीं है। उन्होंने तो अपना कर्त्तव्य पालन किया है ॥२५

श्रीकृष्ण कहने लगे कि हम तो अपना अङ्ग श्रीराधिकाजी को दान कर चुके हैं। उन्होंने ही तो हमको वेष्टन कर रक्खा है। शास्त्र का वचन है कि दान की हुई वस्तु लौटाने में पाप होता है अत: अब हम किस प्रकार अपने अङ्ग को उन से पृथक कर सकते हैं ॥२६॥

यह सुन ललिता क्रोध-युक्त वाणि द्वारा अपने वक्षस्थल पर अंगुली धारण कर श्रीकृष्ण से कहने लगी-जानते नहीं मेरा नाम ललिता है। हमारे क्रोध, क्रूरता और शौर्य को तुम भली प्रकार जानते हुए भी हमारे ही सामने पवित्र पतिव्रता श्रीराधिका के साथ अपनी प्रसिद्ध शठता का आचरण कर रहे हो। शीघ्र उनसे अलग हो जाओ। अब तुम्हारी यह शठता यहाँ नहीं चलेगी। अरे दुष्ट! भ्रमर के समान अपनी इस कामुकता को अपने भाई की स्त्री कुन्दवल्ली के साथ पूर्ण करो ॥२७॥

ललितायाः पुरो राधां वातोऽपि स्प्रष्टु मक्षमः ।
तत्त्यजामूं नचेदस्माद्धाटी-शाटीं निचोलय ॥२८॥
इत्यालपन्त्यां त्वरितं रुषास्या-मग्रे सरत्यां ससखीकुलायाम् ।
कम्पाश्रु-रोमाञ्च-मुखैश्च भावै-रानन्दजैः सोऽप्यभवद्विहस्तः ॥२९॥
कान्ताङ्ग-सङ्गज-सुखेन विमोहितेऽस्मिन्
भीतोऽयमित्यवगते ललिता-भियान्यैः ।
आदाय कम्पित-करान्मुरलीं स्खलन्तीं
सा निर्गता झटिति विश्लथ-बाहुबन्धात् ॥३०॥
निर्गत्य तस्यां स्वपटाञ्चलेन सङ्गोपयन्त्यां मुरलीं प्रयत्नात् ।
आगत्य तस्याः पुरतो विशाखा कृष्णेन संलापमसौ व्यधत्त ॥३१॥

हमारे समक्ष बायु की भी क्षमता नहीं कि इनका अङ्ग स्पर्श कर सके। इस लिये शीघ्र इनका परित्याग करो नहीं तो ठीक किये देती हूँ ॥२८॥

ऐसा कहते कहते सरोष-बदना ललिता अन्य-सखियों सहित श्रीकृष्ण के सामने जा पँहुची। श्रीकृष्ण भी यह सब देख आनन्द विभोर हो पुलकायमान हो गये अर्थात् उनमें अश्रु, कम्प और रोमाञ्च भावों का उदय हो गया ॥२९॥

श्रीराधिका के अङ्ग-स्पर्श के कारण श्रीकृष्ण का शरीर बेवश हो गया था। उनके दोनों हाथ कम्पित हो गये। मुरली छूटकर नीचे गिर गई। श्रीराधा भी उसी समय उनके बाहु-बन्धन से मुक्त हो गई और अबसर देख मुरली उठाली। सब सखियाँ यही समझी कि ललिता के भय से ही उन्होंने श्रीराधा को छोड़ दिया है ॥३०॥

बन्धन मुक्त होने पर श्रीराधा ने मुरली अपने अञ्चल

हे कृष्ण दोर्विम्ब-विधुन्तुद ! त्वं भ्रान्तोऽसि या ते प्रसभं गृहीत्वा।
चन्द्रावलीयं न हि पश्य तारा राधाभिधान्योऽपि च तादृशोऽस्याः॥
अस्याद्वैता विशाखाहमनुराधा त्वियं परा।
इयं जेष्ठा धनिष्ठेयं चित्रेयं भरणी त्वियम् ॥३३॥
अन्या वा कति मे गण्या या चैकास्तीन्दुलेखिका।
सापि तद्ग्रहणायोग्या तत्त्वं चन्द्रावली व्रज ॥३४॥

में छिपाली। उसी समय बिशाखा-सखी राधा को अपनी आड़ में कर श्रीकृष्ण के साथ कथोपकथन करने लगी ॥३१॥

वह कहने लगी कि हे कृष्ण !—तुमने जो चन्द्ररूपा श्री-राधा को राहु रूप अपनी दोनों भुजाओं में ग्रास कर रक्खा है यह तो तुम्हारा भ्रम है। यह श्रीराधा नहीं है। यह तो चन्द्राबली है। यह जो राधा नाम का तारा विराजमान है, इसकी ओर देखो—यह अथवा अन्य इसी के समान सखी रूप तारागण तुम्हारे आलिङ्गन के अयोग्य हैं। भाव यह है कि—राहु केवल चन्द्रमा को ही ग्रास करता है तारागण को नहीं। यहाँ चन्द्राबली (गोवर्द्धनमल्ल की स्त्री) और उसकी सखियों को ही ग्रहण करने की उसकी योग्यता है। राधा और उसकी सखियाँ तो तारा रूपा हैं इसलिये ग्रहण करने अयोग्य हैं।३२॥

दूसरी तारा (सखी) कहने लगी:—मैं बिशाखा हूँ। जैसी राधा हैं वैसी ही मैं भी हूँ। मेरा नाम तारा है। और यह अनुराधा, धनिष्ठा, जेष्ठा, चित्रा और भरणी सबही तारा हैं ॥३३॥

और कहाँ तक नाम बताऊँ। एक इन्दुलेखा है। वह भी तुम्हारे ग्रहण करने योग्य नही है क्यों कि वह तो

१०)

विशाखे सर्व्वसुखदा सत्यं त्वं शाङ्करीतनुः ।
वाग्वज्रभीषणा मूर्त्तिर्ललिता शातमन्यवी ॥३५॥
असौ विशाखे सुलभां विहाय चन्द्रावलीं तां वहुधोपभुक्ताम् ।
सुदुर्लभां वाञ्छति भानवीयां श्रियं रसास्वाद-विशेषलिप्सुः ॥३६॥
भोगः क्रमेण तारासु सदा राहोर्विराजते ।
कौतुकादिन्दुलेखा मप्यपूर्व्वा स जिघृक्षति ॥३७॥
इत्यालपन् श्रीहरिरिन्दुलेखामालिङ्गितुं तत्सविधं जगाम ।
दृष्ट्वान्तिके तं चकितापयान्ती साप्युच्चलद्भ्रूः स्मितपूर्व्वमाह ॥३८॥

एसा रेखामात्र ही है। राहु-रूप तुम तो पूर्ण चन्द्र ही ग्रहण करते हो इस लिये चन्द्रावली के समीप ही जाओ ॥३४॥

यह सुन श्रीकृष्ण कहने लगेः-हे विशाखे। तुम तो हर समय हर प्रकार से सुख देने वाली हो। शाङ्करी तनुधारी अर्थात् कल्याणकर शिवमूर्त्ति स्वरूपा हो। और यह ललिता शातमन्यवी अर्थात शतमन्यु इन्द्र-मूर्ति के समान है इसी से तो इसके सब वाक्य वज्र समान भयङ्कर हैं ॥३५॥

हे विशाखे। यह चाहे जो कुछ भी हो, रसास्वाद लोभी यह राहु अनायास प्राप्त और सब प्रकार से भोग विलास युक्ता चन्द्रावली को त्याग करके दुष्प्राप्य इस भानु-श्री अर्थात् वृषभानुसुता श्रीराधा की ही वासना करता है ॥३६॥

सखी विशाखे और सुनोः- इस राहु की भोग-वस्तु यद्यपि समस्ततारा समूह से ही परम शोभा पाती है किन्तु मनोरञ्जन के विचार से इन्दुलेखा को भी ग्रहण करने की कामना रखता है ॥३७॥

इतना कह कर ज्योंहि श्रीकृष्ण इन्दुलेखा को आलिङ्गन करने के हेतु आगे बढ़े त्योंहि वह चकित हो दूर हट गई

धृष्टापगच्छ हे राहो न ते योग्येन्दुलेखिका ।
पूर्णां चन्द्रावलीं याहि भुङ्क्ष्व तारां क्रमेण वा ॥३६॥
तेनालक्षितमागत्य गृहीता ललिताब्रवीत् ।
अनुराधा न ते लभ्या बिशाखा-भोगमन्तरा ॥४०॥
स्पृष्टा विशाखाप्यथ साब्रवीत्तं राधोपभोगाद्भवता बिशाखा।
भुक्तैव तत् किं पुनरेषि धृष्ट ! ज्येष्ठां बिहाय क्रम-लभ्य-भोगाम् ॥४१
ज्येष्ठाप्यलक्षितं स्पृष्टा क्लिष्ट रुष्टा तमब्रवीत् ।
चित्रा-भोगं बिना धृष्ट ! क्लिष्टोऽन्यासां तवाक्रमः ॥४२॥

और भ्रूभंगी सहित हँसते हँसते कहने लगीः-॥३८॥

अरे धृष्ट राहु, तुम यहाँ से दूर हो। इन्दुलेखा की लालसा व्यर्थ है, वह तुम्हारे योग्य नहीं है। उसी पूर्ण-चन्द्राबली के पास जाओ अथवा समस्त तारागण के एक एक करके उपभोग करो ॥३६॥

यह सुन श्रीकृष्ण ने चुपके से ललिताजी को पकड़ लिया। इस पर वह कहने लगी कि अरे कृष्ण ! यथाक्रम प्राप्त श्री-विशाखा के भोग किये विना तुम श्रीराधा को नही पा सकते हो ॥४०॥

ललिता की यह कथा सुन श्रीकृष्ण ने विशाखा को ग्रहण कर लिया। वह कहने लगी-अरे कृष्ण, राधा को भोग करने पर हमारा भी भोग हुआ ही समझो क्यों कि मैं और राधा अभिन्न है। हे धृष्टराज क्रम प्राप्य धनिष्ठा को त्यागकर यहाँ क्यों चले आये-वहीं जाओ- ॥४१॥

तव श्रीकृष्ण ने अज्ञात-भाव से आकर धनिष्ठा को स्पर्श किया। इस पर वह रुष्ट हो अप्रकाशित भाव द्वारा कृष्ण से कहने लगीः-अरे मूर्ख ! चित्रा का भोग किये विना अन्यान्य

सहसा विधृता चित्रा तमाहापैहि लम्पट ।
ग्रहाणां क्रमतो भोगस्ताराणामुत्क्रमतो न हि ॥४३॥
तुङ्गविद्याऽब्रवीच्चित्रे राहोनात्र व्यतिक्रमः ।
वक्रातिचारगत्यापि ग्रहाणां क्वचिदाक्रमः ॥४४॥
साप्याह तुङ्गविद्या त्वं तुलाराशिस्ततोऽमुना ।
आक्रान्तायां तु चित्रायां पीड़िताशु भविष्यसि ॥४५॥
तुङ्गविद्याह तं स्पृष्टा धृष्ट ! किं रङ्गदेविकाम् ।
आदौ पीड्यां तुलाराशिं हित्वा मां त्वं जिघृक्षसि ॥४६॥

समस्त सखियों के प्रति तुम्हारा यह आक्रमण केवल दुखदाई ही होगा, अर्थात् तुम्हारी अभिलाषा सफल न हो सकेगी ॥४२॥

यह सुन तब श्रीकृष्ण ने सहसा चित्रा को धारण कर लिया। वह कहने लगी:- अरे लम्पट ! यहाँ से दूर हटो-ग्रह में जितने भी तारे होते हैं उन सब का भोग तो यथाक्रम से ही होता है ॥४३॥

अब तुंगविद्या कहने लगी:-अरी चित्रे ! यहाँ तो राहु कोई उलटी बात नहीं कर रहा है। क्या वक्र और द्रुत चाल से ग्रहों पर आक्रमण नहीं होता है ॥४४॥

इस पर चित्रा कहने लगी कि अरि तुंगविद्ये तुम तो तुलाराशि में हो, इसलिये हमारे ऊपर आक्रमण होने से तुमको भी शीघ्र ही कष्ट उठाना होगा ॥४५॥

तब श्रीकृष्ण ने तुङ्गविद्या को स्पर्श किया। वह कहने लगी-अरे धूर्त्त राहो पहिले ग्रहण करने योग्य तुला-राशि रंगदेवी का त्याग कर तुम हमको धारण करने के इच्छुक क्यों होते हो ॥४६॥

सापि स्पृष्टाह तं राहो तं कन्याराशि-भागकृत् ।
पूर्ण-दृष्टां मीनराशिं चम्पवल्लीं प्रपीड्य ॥४७॥

साप्याशु विधृताप्याह धूर्त्तेमां कुम्भराशिकाम् ।
सुदेवीं त्वरितं याहि यतस्ते व्युत्क्रमा गतिः ॥४८॥

स्पृष्टा सुदेवी तं प्राह मधुसूदन ते स्पृहाम् ।
सर्व्वां काञ्चनवल्लीयं प्रफुल्ला पूरयिष्यति ॥४९॥

सा गृहीतावदत् कृष्णचकोरात्र किमागतः ।
स्फुरच्चन्द्रमुखीमासां स्वतृष्णा-शान्तये व्रज ॥५०॥

उस पर उसको छोड़ उन्होंने रङ्गदेवी का स्पर्श किया-वह कहने लगी:-अरे कपटी कामुक तुम तो कन्याराशि का भोग कर चुके हो इस हेतु अब पूर्ण-दृष्टा मीनराशि चम्पकलता का शीघ्र जाकर भली प्रकार भोग करो-॥४७॥

तब श्रीकृष्ण ने सहसा जाकर चम्पकलता को धारण किया । वह कहने लगी-अरे धूर्त्त अब तुम्हारी चाल (गति) का क्रम उलट पलट हो गया है इस कारण इस कुम्भराशि स्वरूपा सुदेवी के समीप शीघ्र गमन करो-॥४८॥

उसपर श्रीकृष्ण ने सुदेवी को ग्रहण किया-वह बोली-अरे मधूसूदन यह सामने खिली हुई काञ्चनलता ही तुम्हारी समस्तकाम को पूर्ण करेगी-॥४९॥

तब श्रीकृष्ण ने सुदेवी को त्यागकर काञ्चनलता का स्पर्श किया-वह बोली-अरे चकोर स्वरूप कृष्ण ! तुम यहाँ क्यों आये अपनी तृष्णा की पूर्त्ति के हेतु तारा-मण्डल के बीच जो प्रफुल्ल चन्द्रमुखी श्रीराधा विराजमान हैं उनके समीप जाओ ॥५०॥

अलक्षितं साप्यमुना गृहीता चुचुम्बिषुं तं विमुखी जगाद ।
त्यजान्यजायां शठ वंशिकां तां निज-प्रियां चुम्ब चुचुम्बिषा चेत् ॥
स चिरात् स्वकरादपच्युतां मुरलीं तामवधार्य्य तद्गिरा ।
क्व गतेति विलक्षितःक्षणं स्वदृशं कुन्दलतानने न्यधात् ॥५२॥
सापि तं चलदृग्भङ्ग्या राधिकां तामदर्शयत् ।
तद्विज्ञाय तया वंशी तुलस्यां गुप्तमर्पिता ॥५३॥
सा तां प्रयत्नात् पिहितां विधाय
स्थिता विशाखा-ललितादि-पश्चात् ।
कृष्णोऽपि राधां समुपेत्य नाव-
हिर्वापुरेनामिदमाललाप ॥५४॥

तव श्रीकृष्ण ने सहसा चन्द्रमुखी श्री राधिका को ग्रहण कर लिया और ज्योंहि उनका मुखारविन्द चुम्बन करना चाहा त्यों हि उन्होंने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया-वे कहने लगी-अरे शठ! यदि चुम्बन की ही तुम्हारी इच्छा है तो अपनी प्रिय स्त्री वंशी का चुम्बन करो-पराई स्त्री के साथ ऐसी धृष्टता क्यों कर रहे हो ॥५१॥

श्रीराधिका के यह वाक्य सुन श्रीकृष्ण को अपनी मुरली की याद आई। हाथ में मुरली न देख वे क्षणकाल के लिये चकित हो गये। फिर कुन्दलता की ओर नेत्रभंगी द्वारा पूछने लगे-॥५२॥

कुन्दलता ने भी चञ्चल नेत्रों द्वारा श्रीराधा की ओर ही संकेत कर दिया यह देख श्रीराधिका ने चुपके से वंशी तुलसी सखी को दे दी ॥५३॥

तुलसी सखी वंशी को यत्न पूर्वक छिपाकर विशाखा

मनो विशुद्धं चलमप्यदृश्यं कटाक्ष-कामाङ्कुश-शृङ्गविद्धम् ।
बिधाय पाटच्चरि ! मे हरन्त्या न दृश्य-वंशी-हृतिरद्भुता ते ॥५५॥
वध्नामि बाहुपाशैस्त्वां लुण्ठाम्यंशुक-भूषणम् ।
नयामि कुञ्ज-कारायां स्मर-भूपेऽर्पयामि च ॥५६॥
राधाप्यसारण-भावविद्धा सावज्ञमालोक्य हरिं चलन्ती ।
वंशी-विचारच्छलतो निरुद्धा निवारितेनाप्यमुना गृहीता ॥५७॥

और ललिता सखी के पीछे जा खड़ी हुई-श्रीकृष्ण भी उसी समय श्रीराधिका के समीप गमन कर उनको धारण करने की कामना से कहने लगे ।५४॥

हे चौरिणी—हमारा मन कामादि-क्षोभ से रहित एवं निर्मल है। हमारे सब सखा और गौएं सर्वदा आनन्दमय हैं। इसी हेतु तुमने हमारे चञ्चल और अदृश्य मनको अपने अंकुश रूप काम-कटाक्ष नेत्रों द्वारा विद्ध करके हमारी मूर्त्तिमती वंशी का हरण किया है। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। हम निश्चय के साथ कहते हैं कि तुम ही ने हमारी वंशी चुराई है ॥५५॥

इसलिये अब मैं तुमको अपनी दोनों भुजाओं के पाश में बन्धन करूँगा और तुम्हारे सब वस्त्राभूषण उतार कुञ्जरूप कारागार में बन्दी करूँगा। तत्पश्चात् महाराज कन्दर्प के सम्मुख समर्पण कर दूँगा ॥५६॥

श्रीकृष्ण के इस प्रकार परिहास युक्त बचन सुन श्रीकिशोरी सम्यक् भावावेश को प्राप्त हो अवज्ञा दर्शाती हुई उनको बर्जन तर्जन करने लगी कि हमको छूना मत छूना मत। ऐसा कहते कहते उस स्थान से दूर हटने लगी, किन्तु निवारण करने पर भी श्रीकृष्ण ने वंशी खोजने के बहाने उनको

हरिस्तामाह चौरि त्वं वृथा किं चेष्टसे तव ।
त्यागो वंश्या न मे यावत्तावद्दोर्बन्धनान्न सः ॥५८॥
मृषा रुषारालचलाक्षि-चिल्ली-लतं समुद्यत्स्मितगर्व्वितास्यम् ।
हरेः पुरस्तावदुपेत्य तूर्णं साटोपतर्ज्जं ललितावदत्ताम् ॥५९॥
पराङ्गना सङ्गमपूत-मूर्त्ते सतीव्रत-ध्वंसन याहि याहि ।
स्नातां पवित्रां रवि-पूजनार्थं स्पृष्ट्वा च्छलोक्त्या कुरु माऽपवित्राम्॥
उन्मादितः स्वाधर पायनैर्यया त्वं धृष्टयासीः सुमनःसरोवरे ।
वंशी तया ते शठ ! शैब्यया हृता न मन्यसे चेत्तु लसीह साक्षिणी॥

अपने बाहु पाश में आवद्ध कर ही लिया ॥५७॥

और कहने लगे-अरी चौरिणि-हमारे बाहु-पाश से छुटकारा पाने का वृथा श्रम क्यों कर रही हो। जब तक हमारी वंशी नही दे दोगी तब तक बन्धन मुक्त नहीं हो पाओगी ॥५८॥ इसी बीच श्रीललिता बनावटी क्रोध द्वारा तर्जन गर्जन करती हुई श्रीकृष्ण को ललकार कर कहने लगीः-॥५९॥

हे, "परस्त्री के प्रसंग से पवित्र हो गया है जो, ऐसे तुम"-सती स्त्री के व्रत को नाश करने वाले यहां से दूर हट जाओ। हमारी स्वामिनीजी ने सूर्य्यपूजा के निमित्त अभी स्नान किया है, इस कारण छल करके इनका स्पर्श कर अपवित्र न कर देना। श्लेषार्थ यथा— "हे सती के व्रत को ध्वंस करने वाले तुम यहाँ से जाना मत-जाना मत। तुम तो रवि के समान दोनों नेत्रों के प्रकाशक और आनन्ददायक हो। रविरूप तुम्हारी पूजा के हेतु आई हुई इस परमपवित्रा राधा को अपने स्पर्श से पवित्र करो। यद्यपि स्नान करके यह पवित्र हो गई हैं तथापि तुम्हारे स्पर्श से और अधिक पवित्र हो जायेंगी" ॥६०॥

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु।
शैव्यया ह्रियते वंशी साध्वी राधा तु दुष्यते ॥६२॥
तया दृशः प्रेरणया निदिष्टां कृष्णे यियासौ तुलसीमभीष्टाम्।
राधापयाता दयितोपरोधात् सौधाकरी मूर्त्तिरिवाम्बुवाहात् ॥६३
सापीङ्गितज्ञा लघु रूपमञ्जरी–करेऽर्पयित्वा मुरलीमतकियम्।
ततोऽपसर्त्तुं विहितोद्यमामुना बलाद्गृहीतोत्पुलकास कम्पिता॥
निधाय कुब्जीकृत-पाणिशाखा निजानने सात्रुवतातिदीना।
हा हा कृपालो त्यज मामयोग्यां निर्म्मञ्छनं यामि तवास्मि दासी॥

अरे शठ–तुम तो शैब्या के अधरपान से उन्मत्त हो गये हो। तुमको पता नहीं उस ही शैब्या ने तो कुसुमसरोवर पर तुम्हारी वंशी चुरा ली है। यदि तुमको इसका विश्वास न हो तो तुलसी से पूछो कि यह बात सत्य है अथबा असत्य ॥६१॥

दुर्जन मनुष्य जो बुरा काम करता है उनका प्रभाव साधु-जनों पर पड़ता है। वंशी की चोरी तो तुम्हारी शैव्या ने की और लाञ्छन लगा हमारी सरल स्वभावा श्रीराधा को ॥६२॥

इस समय ललिता-सखी ने आँखों के संकेत से श्रीकृष्ण को यह बतला दिया कि तुम्हारी वंशी तुलसी के पास है। इस पर ज्योंहि वंशी पाने के निमित्त वे अपनी वाञ्छित शैव्या के निकट जाने लगे त्योंहि, श्रीराधा बादलों में छिपे चन्द्रमा के समान उनकी कोख से बाहर हो गई ॥६३॥

तब तुलसी भी ललिता का इस प्रकार संकेत करना देख शीघ्र ही वंशी श्रीरूपमञ्जरी को दे भागने की चेष्टा करने लगी किन्तु श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक उनको रोक लिया। इस समय उनका प्रत्येक अंग पुलकित और कम्पायमान हो रहा था ॥६४॥

१०)

वंशी न मय्यस्ति यदर्थमाग्रहः शैव्याकरे साद्य मयैव लोकिता ।
इत्यालपन्ती चलदृष्टि-संज्ञया सासूचयत्तां प्रति रूपमञ्जरीम् ॥६६॥
यावद्विहाय तुलसीं मधुसूदनोऽसौ
तां मञ्जरीं विदित-वेणु-मरन्द-गन्धाम् ।
आयाति तावदियमिङ्गित-पण्डिताशु
वंशीं निधाय ललितामनु साधु तस्थौ ॥६७॥
कृष्णोऽपि तां तूर्णमलक्षितागतिः
स्वबाहुपाशेन निबद्धय सत्वरः ।
वंशीं विचिन्वन् कुच-पट्टिकान्तरे
तामाह सा तस्करि ! ते क्व गोपिता ॥६८॥

उन्होंने अपने दोनों हाथ अपने मुँह पर रख लिये और अत्यन्त दीनता से कहने लगी—हे कृपालो—मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, आपकी बालाई लेती हूँ, मुझे छोड़ दो मैं तो आपकी दासी हूँ ॥६५॥

जिस वंशी के लिये आप इतने बेचैन है वह मेरे पास नहीं है। मैंने आज ही शैव्या के हाथ में देखी है। इतना कह आँखों के संकेत से श्रीकृष्ण को बता दिया कि रूपमञ्जरी के पास है ॥६६॥

तब श्रीकृष्ण तुलसी को छोड़ रूपमञ्जरी की ओर दौड़े किन्तु वह शीघ्रता से वंशी ललिताजी को दे सरल-भाव से सामने खड़ी हो गई मानो कुछ जानती ही नहीं हो ॥६७॥

इस पर श्रीकृष्ण अलक्षित-गति से शीघ्र रूपमञ्जरी के समीप पहुँच, उसे अपने बाहुपाश में धारण कर उसकी अँगिया के भीतर हाथ डाल वंशी खोजते हुए कहने लगे:-अरि तस्करी बता तो हमारी वंशी कहाँ है ॥६८॥

साप्यब्रवीत्तं विनिवारयन्ती लब्धैव चोर्य्या मयि साद्य वंशी ।
दिष्ट्या भवान् पूर्णमनोरथोऽभूद् गत्वानयैवाह्वय गोपनारीः॥६६॥
निजाभिमर्शेन पराङ्गनातते:
सतीव्रतं दूषयितुं त्वमुत्सुकः ।
स्वयं विनिन्हुत्य कुताऽपि वंशिकां
तन्मार्गण-व्याजमुपाश्रितोऽधुना ॥७०॥
ततो दृशास्मै ललितां प्रदर्श्य सा
तद्बाहुबन्धाच्छ्लिथलाद्विनिर्गता ।
कृष्णोऽपि स स्वागति-शङ्कया रह-
स्तां कुन्दवल्ल्यर्पित-वंशिकां ययौ ॥७१॥

श्रीरूपमञ्जरी अपने को इस प्रकार बाहु-पाश में आबद्ध देख श्रीकृष्ण के बाहु बन्धन से पृथक् होने की चेष्टा करते करते कहने लगी:-अरे मूढ़-क्या मैं तस्करी हूँ ? क्या मेरे पास से तुम वंशी पा सके ? जाओ-दूर-हटो-यह अपना परम सौभाग्य समझो जो आज तुमने वंशी खोजने के बहाने हमारी आंगिया में हाथ डाल हमारी कुचाओं को स्पर्श कर एवं हमारे आलिंगन द्वारा अपनी मनोकामना पूर्ण की है ॥७६॥

अरे शठ-इस वंशी के द्वारा ही पर रमणियों को बुला कर तुम उनके सतीत्व को नष्ट करने में बड़े ही उत्सुक रहते हो-अतः अपनी यही अभिलाषा पूर्ण करने के निमित्त ही तुमने स्वयं अपनी वंशी कहीं छिपा दी हैं और उसकी खोज के बहाने ही तुम यहाँ आये हो ॥७०॥

इसके उपरान्त श्रीरूपमञ्जरी ने नेत्र सञ्चालन द्वारा श्रीकृष्ण को ललिताजी की ओर संकेत कर दिया और इस अवसर में स्वयं उनके बाहु-पाश से अपने को मुक्त कर लिया। कुन्द-

उपागतं तं ललिताह कोपना हुं दूरतस्तिष्ठ किमर्थमागतः ।
वंशी यदीयं मयि नैव विद्यते धाष्ट्र्येन चेत्तत् फलमाश्ववाप्स्यसि ॥
चिन्तामणीनां चयमन्तिके स्थितं पदापि या नाभिमृशन्त्यवज्ञया ।
राधा-सखीभिस्तव वंशनालिका किमर्थमाभिर्वत सा हृता शठ ॥
सच्छिद्रया नीरसया कठोरया
ययानिशं व्याकुलितं जगत्त्रयम ।
सा स्वामिनो यत् मुरली करादूगता
वृत्तं बहूनां तदिदं सुमङ्गलम ॥७४॥
स्वस्थान-सन्दानित-नीवि-कुन्तला:
कुर्व्वन्तु कर्म्माणि सुखं गृहेऽबलाः ।

बल्ली इस शंका से कि श्रीकृष्ण उनके समीप आ रहे हैं भय-भीता हो गई-इसी बीच श्रीकृष्ण ललिता के पास पहुँचे ॥७१॥

श्रीललिता उनको अपने समीप आता देख ललकार कर क्रोध भरे स्वर में कहने लगीं कि हमसे दूर रहना। जिस वंशी के लिये हमारे समीप आने धृष्टता कर रहे हो वह हमारे पास नहीं है। यदि और आगे बढ़ने को साहस किया तो शीघ्र ही इसका फल पाओगे ॥७२॥

अरे शठ-जिस श्रीराधा की सखियाँ पास पड़ी हुई मणियों को भी अपने पैरों से स्पर्श करने में अपनी मान-हानि समझती हैं वे क्या तुम्हारी बाँस की वंशी की चोरी करेंगी ॥७३॥
वह छिद्रवाली अर्थात् दोषयुक्त, नीरस और काष्ठ की जिस मुरली के स्वर से त्रिभुवन व्याकुल रहता है क्या वह मुरली तुम्हारी ही है? चलो-यह अच्छी बात ही हुई जो वह खो गई। अनेक लोकों का मङ्गल तो होगा ॥७४॥

स्वैरं हरिण्योऽपि चरन्तु स्वप्रियाः
सरन्तु तूर्णं सरितः सरित्पतिम् ।।७५।।
शीतार्त्त-नग्नाम्बुनिमग्नकन्यका-
गणस्य बासांसि हृतानि यत्त्वया ।
तेनाचिरात्ते मुरली कराद्‌गता
प्राप्नोति दुःखं पर-दुःखदो हि यः ।।७६।।
हस्तमात्रायता शुष्का सरन्ध्रा वंशकाष्ठिका ।
हा हन्त गोकुलेशस्य सर्व्वस्वं केन वा हृतम् ।।७७।।
व्याजाद् बिषण्णामिब तं प्रसमीक्ष्य कृष्णं
साबज्ञहास-ललिता-बचनावरुद्धम् ।

जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। अब युवतियाँ इसकी ध्वनि सुन बिकल तो न होंगी और केश चोली बन्धन कर गृह-कार्य्य में मन लगायेंगी। हरिणियाँ अपने अपने प्रियतम के साथ इच्छानुसार तृण भोजन करेंगीं, नदियाँ अपने पति समुद्र से मिलेंगी ।।७५।।

हे कृष्ण-तुमने शीतपीड़िता, नग्न और बालिकाओं के चीर हरण किये है, इसी पाप के कारण तुम्हारी वंशी खो गई। जो मनुष्य दूसरों को दुःख देता है उसको निश्चय ही दुःख भोगना पड़ता है ।।७६।।

हाय हाय कितने दुःख का बिषय है जो हाथ-भर लम्बी एक सुखी बाँस की नली जिसमें अनेक छिद्र अर्थात् दोष ही दोष है वह खो गई। हमारे श्रीमहाराज गोकुलनाथ की यही तो सब कुछ सम्पत्ति थी सो वही चोरी हो गई हाय हाय किसने चुराली ।।७७।।

श्रीराधिकामनु निधाय रहोऽस्य वंशी
माकूतमत्र् वत कुन्दलताभ्युपेत्य ॥७८॥
सोत्कण्ठ-वराटिकार्हमपि यन्मूल्यं न सा जर्जरा
याता मस्कर-पल्लिका तव करादुद्यात्स्वमस्त ते मङ्गलम् ।
का वा हानिरियं विषीदसि कथं पुत्रोऽसि गोपेशितु-
स्त्वामेता विहसन्ति हन्त मुदिताः अत्वा म्रियेऽहं ह्रिया ॥७९॥
सोऽप्याह तां कुन्दलतेऽनभिज्ञा वंशी-गुणानां यदिदं ब्रवीषि ।
चित्रं न तद्यन् स्वगुणाः प्रकाश्यते यथानयासु त्वयि न क्वचित्तथा ॥

कुन्दलता ने देखा कि ललिता ने अवज्ञा और परिहास युक्त वाक्यों द्वारा श्रीकृष्ण को अत्यन्त दुःखित कर दिया है तब उन्होंने चुपचाप वंशी राधा के पास रख दी और कपट महानुभूति दिखलाती हुई श्रीकृष्ण के समीप जा कहने लगी कि हाय हाय इनकी वंशी किसने चुराली ॥७८॥

इतने दुःखी क्यों हो रहे हो। खो गई तो क्या हानि हुई। तुम तो गोप महाराज के पुत्र हो, दूसरी मिल जायेगी। एक मामूली बाँस की नली ही तो है। आधकौड़ी के बराबर भी तो इसका मूल्य नहीं है। देखते नहीं यह समस्त व्रज-गोपियाँ तुम्हारा कैसा उपहास कर रही हैं। मैं तो मारे लज्जा के मरी जा रही हूँ ॥७९॥

यह सुन श्रीकृष्ण उससे कहने लगे कि हे कुन्दलते ! इस वंशी के गुणों का तुमको पता नहीं है। इस वंशी ने अपने समस्त-गुण इन गोपिकाओं में प्रकाश कर दिया है। तुमको अभी तक कोई गुण नहीं दिखलाया है। इसी कारण तो ऐसी बातें कर रही हो—इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ॥८०॥

या या यदेच्छा मम जायतेऽन्त-र्मयाप्यसाध्या किल हेलयासौ।
तदैव तां तां कुरुते सुसिद्धां नारायणस्येव चिदाख्य-शक्तिः ॥८१॥
सर्व्वशक्तियुता सेयं मम सर्व्वार्थ-साधिका।
अलौकिकीं शक्तिमस्या विदन्ति राधिकादयः ॥८२॥
ललिताह कथं वंशीं न विद्मः कुट्टनी-नृपाम्।
इमां तन्नीति-कुशलां षिड्गस्य तव वल्लभाम् ॥८३॥
सुधापारी-नारी-हृदय-करि-वारीयमनिशं
जगद्योषा-दोषामल-सुकृत-मोषातिनिपुणा।
रमा-गौरी-सौरी-मुखयुवति-चौरी त्रिजगति
प्रसिद्धा सिद्धा तेऽद्भुतगुण-समृद्धा मुरलिका ॥८४॥

अरि कुदन्लते-इस वंशी के अधिक गुणों का तुमसे और तो क्या बखान करूँ, जब जैसी हमारी इच्छा उत्पन्न होती है श्रीनारायण की चिच्छक्ति के समान यह हमारी समस्त कामनाओं को अनायस ही पूर्ण करती है॥८१॥

इस लिये सकल शक्तिशालिनी यह वंशी हमारी समस्त कामनाओं को परिपूर्ण करती रहती है। श्रीराधिका आदि गोपाङ्गनाएँ इसकी अलौकिक शक्ति भली प्रकार जानती हैं॥८२॥

श्रीकृष्ण के यह बचन सुन श्रीललिता कहने लगी:-अरे कृष्ण-तुम्हारी यह वंशी कुट्टनियों की नीति में विशेष चतुरा है। जैसे तुम कामुक हो भला तुहारी वल्लभा वंशी के विषय में हम क्यों न जान पायेंगी अर्थात् हम सब कुछ जानती हैं॥८३॥

तुम्हारी यह मुरली अमृत के समान गुणवती गोपरमणियों के हृदय रूप हस्ति को वन्धन में लाने में चतुरा है। जितनी भी युवतियाँ इस संसार में हैं उनकी निर्दोष एवं सु

अवददथ स ललिता खलु चण्डी
कुटिलवचनदृढ़-कण्टकदुर्गा ।
अपहरति च मुरलीं मम शाठ्या-
द्रुत परिवदति च तामुत माञ्च ॥८५॥
इत्याभाष्य हरौ तस्याः संव्यानान्तं जिघृक्षति ।
सापसृत्याब्रवीद्भुग्नभ्रूलतं सस्मिताननम् ॥८६॥
सैवास्मि ललिता कृष्ण बहुधा कलिता त्वया ।
चलिता वलितालीभिः शठता फलिता न ते ॥८७॥

निर्मल पुण्यराशि की चोरी करने में आपकी यह वंशी निपुणा है। साधारण स्त्रियों की तो बात ही क्या कही जाये, रमा और सूर्य्यपत्नि संज्ञा तक के मन को हरण करने में सदा तत्पर रहती है, इसलिये हे कृष्ण तुम्हारी सर्वसिद्धा यह मुरली बिचित्र गुण सम्पन्ना है अर्थात् विपरीत दोषों से परिपूर्णा है ॥८४॥

ललिता के यह वाक्य श्रवण कर श्रीकृष्ण कहने लगे कि इसी बाचाल, कुटिल एवं हमारे मार्ग में कण्टक रूपा ललिता ने ही हमारी मुरली चुराई है, और अब हम दोनों की निन्दा पर तुली है ॥८५॥

इतना कहते कहते जब श्रीकृष्ण ललिता का आँचल पकड़ने का प्रयास करने लगे वह शीघ्रता से कुछ दूर हट गई और भ्रू चढ़ा उपहास करती हुई हँसते हँसते कहने लगी-॥८६

अरे मूढ़-जिस ललिता से तुम भले प्रकार परिचित हो मैं वही तो हूँ। लो मैं तो सब सखियों सहित अब यहाँ से जा रही हूँ। स्मरण रखना तुम्हारी दुष्कामना फलवती न होगी ॥८७॥

इत्युदीर्य्य ललितामपयान्तीं तां निगृह्य वसने स जगाद ।
वंशिका-वितरणं न विना ते यानमद्य सुलभं स्वगृहाय ॥८८॥
त्वया चेन्न हृता वंशी कथं भीतया पलाय्यते ।
शोधयित्वा निजाङ्गानि यथेष्टं गच्छ तिष्ठ वा ॥८९॥
ततः सांशुकमाकृष्य बक्रदृष्ट्याह वीक्ष्य तम् ।
अङ्गानि स्वप्रजावत्याः काममत्त! विचारय ॥९०॥
वंश्यस्माभिर्नैव नीता न दृष्टा नोज्झस्यौग्र्याच्चेत्तथापि त्वमस्मान् ।
दास्ये मूल्यं कुन्दवल्ली-प्रदिष्टं तच्चेन्नेष्टं तत्सदृक्षां ततोऽन्याम् ॥९१

ऐसा कह कर ज्योंहि वह जाने लगी त्योंहि श्रीकृष्ण ने उनका पल्ला पकड़ रोक लिया और कहने लगे बिना मुरली दिये यहाँ से जा न सकेगी ॥८८॥

हाँ—यदि तुमने वंशी न चुराई होती तो डर से भागती क्यों? अपने समस्त अङ्ग की तलासी कराने के पश्चात् जहाँ तुम्हारी जाने की इच्छा हो चली जाना—अर्थात् जब तक मैं स्वयं तुम्हारा प्रत्येक अङ्ग निरीक्षण नही कर लूँगा तब तक जाने न दूगाँ ॥८९॥

तब ललिता ने झटके से अपना वस्त्र छुड़ा लिया और बक्र-दृष्टि से कहने लगी—अरे कामान्ध अपनी भ्रातृजाया कुन्दलता के अङ्ग को जाकर देखो।

अरे चोरी कैसी, हमने तो वंशी देखी तक नहीं। यदि इतने पर भी क्रूरता के साथ हमको छोड़ना नहीं चाहते हो तब कुन्दलता से पूछो वह इसका उचित मूल्य बतादे हम वही दे देगें, और यदि मूल्य लेना पसन्द न हो तब इसी मुरली के सदृश अन्य बाँस की नली तुमको मिलेगी ॥९१॥

१०)

मल्लीभृङ्ग्यौ श्रीपुलिन्दात्मजे नः सख्यौ शैलेन्द्रालये मद्गिरा ते ।
दास्येते ते जर्ज्जरां छिद्रमुक्ता-मार्नायैकां पर्विकां कीचकस्य ॥९२॥

पुलिन्दानां कन्या मयि परमधन्या रतियुष-
स्तृणाग्रास्मत्पादाम्बुज-घुसृण-लेप-क्षतरुजः ।
गिरेर्गुञ्जाधातून् भृशमुपहरन्ति स्वसहितान्
मदीयास्ता दास्यः कथमु तव सख्यः समभवन् ॥९३॥

वंशीं हरसि मे मामप्यवजानासि यत्नतः ।
निवध्य दण्डयामि त्वां कोऽसौ रक्षति रक्षतु । ९४॥

हे कृष्ण !-गिरिवर गोवर्द्धन में रहने वाली मल्ली और भृङ्गी नाम की पुलिन्द-कन्यायें हमारी सखियाँ हैं, उनको कह कर हम एक नवीन और छिद्र रहित बाँस की नली मँगवा देंगी ॥९२॥

ललिता के मुख से यह बचन सुन "मल्ली और भृङ्गी हमारी सखियाँ हैं" श्रीकृष्ण बिचार करने लगे-"अहो कहीं इन्होने ही तो हमारी वंशी चुरा कर समस्त वन बासियों को अपने अपने अधीन कर नहीं लिया है"। फिर कातर-स्वर से कहने लगे-पुलिन्द की कन्यायें परम धन्या हैं। वे तो हमारे प्रति बहुत प्रेम करती हैं। हमारे चरणों का कुङ्कुम जो तिनको में लग जाता है उसे उठाकर अपनी आँखों और कुचाओं पर लेप कर कामपीडा को शान्त करती हैं। गोवर्द्धन पर्वत पर पैदा हुई गुञ्जा और नाना-प्रकार की धातुएं ला ला कर हमको देती हैं। अरी ललिते ये तो हमारी दासियाँ हैं, तुम्हारी सखियाँ किस प्रकार हुईं यह तो बताओ ॥९३॥

हे ललिते-चाहे जो भी कुछ हो-तुमही ने तो हमारी वंशी

ललितां पृष्ठतः कृत्वा विशाखा तत्पुरः स्थिता ।
नीचैरुपदिशन्तीव सस्मितं सा तमब्रवीत् ॥९५॥
प्रगतार्थीनामर्थो नष्टोद्देशक-सहायतो लभ्यः ।
युक्त्या मार्गय तत्त्वं न ह्यौग्रयेण क्रिया-सिद्धिः ॥९६॥
अबदच्चम्पकवल्ली नष्टोद्देश्यर्थलोलुपः सुतराम् ।
बंशैक-पर्व्विकायै बहुधनहानिः कथममुना क्रियताम् ॥९७॥
तुङ्गविद्याह मुग्धे त्वं मर्म्मज्ञा नासि तच्छृणु ।
वंश्येव यस्य सर्व्वस्वं किं न दद्यात् स तत्कृते ॥९८॥

चुराई और तुमही हमारी अबज्ञा कर रही हो। इसलिये अब तुमको बन्धन कर दण्ड दूँगा। देखता हूँ कौन तुम्हारी रक्षा करता है ॥९४॥

यह सुन विशाखा-सखी ललिता को पीछे ढकेल श्रीकृष्ण के सामने आ खड़ी हुई और धीर स्वर से उपदेश करने लगी॥९५

हे कृष्ण !- जिनके बस्तू हरण होता है उनको यह पता हो जाये कि हमारी बस्तु कहाँ और किसके पास है तब ही तो मिल सकती है। इसलिये तुम यही उपाय अबलम्बन करने किसी ऐसे व्यक्ति का सहारा लो जो तुम्हारी मुरली का पता जानता हो। तभी प्राप्त कर सकते हो अन्यथा नहीं ॥९६॥

यह सुन चम्पकलता कहने लगी-जो मनुष्य खोई हुई बस्तु की खोज करता है समझो वह बड़ा लोभी है। श्री-कृष्ण को उचित है कि एक साधारण बाँस के टुकड़े के पीछे अधिक धन हानि न करें ॥९७॥

इसके बाद तुंगविद्या कहने लगीः-अरि मूढ़े चम्पकलता तुम कुछ भी समझ नहीं पा रही हो-मैं जो कहूँ वह सुनो- इस कृष्ण का सर्वस्व धन यह वंशी ही है। अतः इसके पाने

चौरे नष्टोद्देशकस्य प्रसादात् लब्धे ग्राह्यं वित्तमात्मीयमादौ।
पश्चान्नष्टोद्देशिनेऽपि प्रदातुं दण्ड्यादस्माद्भूरि कृत्वेति नीतिः॥९९
विशाखाह वद स्वामिन्! यन्नष्टोद्देशिने त्वया।
देयश्चौरे तु यो दण्डस्तज्ज्ञात्वाख्यामि ते हितम्॥१००॥
अङ्गस्रङ् मणिमाले करसहं फलञ्च चुम्बकं रत्नम्।
परमपि दास्याम्यस्मै यो मे वंशीं समुद्दिशति॥१०१॥
हर्तुर्हराम्यम्बर-रत्नभूषणे तारुण्य-रत्नं च घटद्वये स्थितम्।
दोःपाशबन्धं स्मरदण्डनाय तं निकुञ्ज-कारामनुवेशयामि च॥१०२

के निमित्त वे क्या नहीं कर सकते हैं अर्थात् यथेष्ट दान करेंगे॥९८॥

वंशी का पता लगाने वाले की कृपा से यदि चोर पकड़ा जावे तब पहले उस चोर के पास से अपनी हरण की गई वस्तु का ग्रहण कर लिया जावे! फिर चोर के पास उचित धन ले-पता बतलाने व्यक्ति को उपहार दिया जावे एसी नीति प्रसिद्ध है॥९९॥

विशाखा तब कहने लगी-अरे धनाढ्य कृष्ण! पहिले यह तो बतलाओ कि पता लगाने वाले को क्या पारितोषिक दोगे एवं चोर को क्या दण्ड मिलेगा। यदि यह बतला दोगे तो मैं तुम्हारे हित-साधन में सहायक हूँगी॥१००॥

श्रीकृष्ण कहने लगे:-जो हमारी वंशी का पता बतायेगी मैं उसको अपने गले की फूलमाला, मणिमाला, कमरंगा फल, चुम्बक-रत्न इत्यादि प्रदान करूँगा। श्लेषार्थ—उसे आलिगंन करूँगा, नख और दाँतो से आघात करूँगा दोनों हाथों से कुचा मर्दन करूँगा और इसके अतिरिक्त और अनेक विलास सुख पहुँचाऊँगा॥१०१॥

साप्याह योग्यमेवैतद् गोपेन्द्रतनयस्य ते ।
वंशीञ्च हस्तगां विद्धि यत्त्वं न कृपणायसे ॥१०३॥
वंश्युद्देशं कुन्दवल्ल्येव साक्षात् जानात्येकाहञ्च तस्याः सकाशात् ।
मय्युद्देशः क्लेशकारी कृतः स्या-दत्त्वोत्कोचं तां ततः पृच्छ यत्नात् ॥
अथाह सा कुन्दलतां प्रहृष्टा दिष्ट्यागतस्ते सखि ! लाभदिष्टः ।
उद्दिश्य वंशीं निज-देवराय सुदुर्लभोत्कोचमिमं गृहाण ॥१०५॥

और जिसने हमारी वंशी चुराई है उसके बसन, रत्न, आभूषण और दोनों कुचाओं में भरे यौवनरत्न का हरण करूँगा। फिर कामदेव महाराज का उचित दण्ड दूँगा अर्थात अपनी दोनों भुजाओं के पाश में बन्धन कर निकुञ्ज रूप कारागार में ले जाऊँगा ॥१०२॥

यह सुन विशाखा कहने लगीः—क्या महाराज नन्दबाबा के पुत्र को यही शोभा देता है। जब तुम स्वयं अपने मुख से ही धन दान के बिषय में इस प्रकार कृपणता दिखलाते हो तब तो वंशी मिलना कठिन है ॥१०३॥

केवल एक कुन्दबल्ली को ही इस रहस्य का ठीक ठीक पता है। उन्ही के द्वारा मुझे भी कुछ पता चला है। मैं निश्चय करके किसी को नही बतला सकती। इसलिये हमारे बताये मार्ग पर चलने से कुछ लाभ नही होगा, कुन्दलता को कुछ घूँस देकर उसी से मालूम करो ॥१०४॥

तब विशाखा हँसते हँसते कुन्दलता से कहने लगीः— सखि—तुम्हारे भाग्य में कुछ लाभ होना है। इस अपने देवर कृष्ण की वंशी का पता बतादो, बदले में सुदर्लभ घूँस पावोगी ॥१०५॥

कुन्दवल्ल्या विशाखायां लग्नायां श्रवमीश्वरी ।
इङ्गितज्ञा न्यधाद्वंशीं निभृतं तुलसी-करे ॥१०६॥
साकूतं पश्यति ततः कुन्दवल्ल्या मुखं हरौ ।
साब्रवीत्तां विशाखेऽहं न चौरं वेद्मि ते शपे ॥१०७॥
जानीयां चेद्विनोत्कोचमुद्दिशामि स्वयं हि तम ।
देवृस्वं यन्ममैव स्वं नाहं यूयं यथा पराः ॥१०८॥
वेत्सि हि चौरं त्वमिह मुरलयाः स्वीकुरु रत्नानि च दिश तत्ताम् ।
यद्यनुकूला त्वमिह सखि ! स्या-त्तर्हि च सा स्व-प्रभु-करगा स्यात् ॥
गृहाण पूर्व्वमुत्कोचं वंशिकां वा समुद्दिश ।
वंशिकोत्कोचयोर्लाभे युवयोः प्रतिभूरहम ॥११०॥

इस प्रकार परिहास करते करते विशाखा ने कुन्दलता के कानों में धीरे से कुछ कहा। श्रीराधा इसको जान गई और अलक्षित भाव से वंशी तुलसी को दे दी ॥१०६॥

श्रीकृष्ण इस समय कुन्दलता के मुख की ओर देखने लगे। वह उनका अभिप्राय कहने लगी—अरि विशाखे मैं तुम्हारे शपथ ले कहती हूँ कि मुझे पता नहीं कौन चोर है ॥

तुम लोग इनसे जितनी दुरामत रखती हो मैं नहीं रखती हूँ। देवर का धन तो हमारा ही हुआ। यदि मुझे वंशी का पता होता तो बिना कुछ लिये ही बता देती ॥१०८॥

सखी विशाखे—मुझे विश्वास है कि तुम मुरली-चोर को जानती हो। इसलिये बतला क्यों नहीं देती, किसके पास है। श्रीकृष्ण के बतलाये हुए समस्त रत्न तुमही को मिलेंगे। यदि तुम चाहो और चोर का नाम बतलाने का अनुग्रह करो तो उनको वंशी प्राप्त हो जायेगी ॥१०६॥

कृष्णोऽपि कुन्दलतिका-नयनेङ्गितज्ञः
स्वौत्सुक्यमुत्प्रकटयन्निज-वंशिकाप्त्यै ।
पार्श्वगतः शित-कटाक्ष-शरैः प्रियायाः
स्तब्धो भवन्ननुगया स तया बभाषे ॥१११॥
निजश्यामरसो वंश्यां यस्त्वया न्यस्यतेऽत्र सः ।
विश्वं कृष्णरुचिं कुर्वन् भाति विन्दुतया स्थितः ॥११२॥
हृत्वा ते राधया वशी विन्दुच्याबाद्वशीकृता ।
विन्दुः स्व-चिवुके लग्नोऽप्यज्ञातत्वान्न गोपितः ॥११३॥

यदि घूँस पहिले ही लेना चाहती हो तो मिल जायेगी अथवा लेने के पहिले ही पता बतलाओगी तो तुम्हारी घूँस प्राप्ति और श्रीकृष्ण की मुरली-प्राप्ति का भार मैं अपने ऊँपर लेती हूँ ॥११०॥

कुन्दलता का संकेत पा श्रीकृष्ण मुरली पानेकी आतुरता प्रकाश करते हुए श्रीप्रिया के समीप जाने लगे किन्तु उनके कटाक्ष-बाण द्वारा विद्ध हो स्तब्ध हो गये। पीछे खड़ी कुन्दलता तब श्रीकृष्ण से कहने लगीः-॥१११॥

हे कृष्ण ! तुम जो इस मुरली में अपने श्यामरस भर देते हो वही रस इस संसार को श्यामरसमय अर्थात् शृंगार रस में उन्मत्त कर देता है। तात्पर्य्य-इसकी ध्वनि सबको तत्पर कर देता है अथवा रासलीला की अभिलाषा की अत्यधिक उत्पन्न कर देता है। पुनः जो श्यामरसमय कान्ति समस्त विश्व को श्याम-कान्ति में रंगकर आज श्रीराधिका की चिवुक में विन्दु-रूप से शोभित है ॥११२॥

हे कृष्ण-तुम्हारी वंशी पर यह विन्दु न होने के कारण वह श्रीराधा के बश में आ गई है। मणि और औषधादि

(१०

वंश्या मुद्रां विन्दुमेनं त्वयादौ दिष्टचा दृष्टं स्वाधरेणाहराशु ।
पश्चाज्जित्वा न्यायतस्तां गृहीत्वा दण्डोत्कोचावप्यमूं दण्डयोक्तौ ॥
सिद्धैव सा मुरलिका तव राधिकायां
तां त्वं गृहाण न हि वा मम नात्र हानिः ।
उत्कोचमर्थयति मां त्वरितं विशाखा-
मुष्यै प्रतिश्रुत-धनं बितराग्रतो मे ॥११५॥

से युक्त व्यक्ति किसी के बश में नही आता है किन्तु इनके नष्ट होने पर वह तेजहीन हो जाता है और दूसरों के अधीन हो जाता है। जैसे मणि निकल जाने पर अश्वत्थामा प्रभाव शून्य हो गया था। इसी प्रकार परम औषधि रूप विन्दु न होने से तुम्हारी मुरली अधीनता को प्राप्त हो गई है। परन्तु असावधानता के कारण श्रीराधाजी अपनी चिवुक में अंकित विन्दु छिपा न पाई और केवल वंशी को ही गोपन कर लिया ॥११३॥

हे कृष्ण-यह बड़े ही सौभाग्य की बात हुई जो तुमने पहिले अपनी वंशी के विन्दु को श्रीराधा की चिवुक में लगा हुआ देख लिया। अब तुम शीघ्र जाकर अपने अधरों द्वारा उस बिन्दु को ग्रहण करो। इसके बाद अपने पता देने वाले को प्रति-श्रुत घूँस और चोर को दण्ड देना। इस समय तो तुम श्रीराधा को दण्ड देकर पता देने वाले के लिये उनके अंग-माल्य, मणिमाला और भूषण इत्यादि हरण कर लो ॥११४॥

तुम्हारी यह सिद्धा मुरली श्रीराधा के पास ही है। अब तुम उनसे लो या न लो यह तुम्हारी इच्छा। हमारी इससे कोई हानि नहीं है, किन्तु इसका अनुसन्धान देने वाली विशाखा

मुद्रामादौ वंशिकाया गृहीत्वा दास्याम्यस्मै त्वत्कृतोत्कोचमाशु ।
पश्चाद्वंशीं दत्तामुत्कोचमेतां कारा-कुञ्जे दण्डयाम्यत्र रुद्धा ॥११६
इति ब्रुवाणं दयितान्तिकागतं कृष्णं समीक्ष्याधर-दंशनोद्यतम् ।
तं वारयन्ती ललिता मृषा रुषा मध्यं तयोरेत्य जगाद सस्मितम् ॥
मित्रार्च्चना नादृय कृतानयास्याः क्षतेन मालिन्यमहो विधातुम् ।
हठात् प्रवृत्तोऽस्यपयाहि किन्ते भीतिर्न देवान्न च लोक-धर्म्मात् ॥
हरिस्तामाह हे राधे मद्दन्तानां ममापि न ।
दोषोऽयं किन्तु ते विन्दुर्यद्बहिः प्रकटं धृतः ॥११६॥

को घूँस देने का बचन मैं उसे दे चुकी हूँ, वह मुझे पूरा करना होगा। अतः यह घूँस का धन हमको दो ॥११५॥

यह सुन श्रीकृष्ण कहने लगेः—मैं पहले अपनी वंशी का विन्दु जो श्रीराधिका की चिबुक पर अँकित है ग्रहण करूँगा। इसके उपरान्त तुमने जो विशाखा को देने का बचन दे रक्खा वह धन उनके पास से ले तुम्हें दूँगा। यह सब करने के बाद फिर उनको निकुञ्ज रूप वन्दीगृह में ले जाऊँगा। वहीं उनसे वंशी प्राप्त करूँगा ॥११६॥

ऐसा कह कर ज्योंहि श्रीकृष्ण अपने अधरों द्वारा श्रीराधिका के चिबुक विन्दु हरण करने को उद्यत हुए उसी समय ललिता दोनों के बीच उपस्थित हो बनावटी क्रोध कर प्रफुल्ल-वदन श्रीकृष्ण को सम्बोधन कर कहने लगीः—॥११७॥

कितने आश्चर्य्य की बात है। अरे इन्होंने अभी सूर्य्य-देव की पूजा नहीं की है किन्तु तुम हठ पूर्वक अपने दाँतों के आघात से इनको अपवित्र करने के लिये क्यों तत्पर हो रहे हो शीघ्र यहाँ से दूर हटो। क्या तुमको देव और लोक-धर्म्म का भी भय नहीं है ? ॥११८॥

चिवुकमनु वसन्नप्येष विन्दुर्भयार्त्तो
परिचित-निज-मित्रं मां समीपे समीक्ष्य।
सपदि दशन-दुर्गे संप्रविष्टोऽस्य सङ्गा-
च्छशिमुखि दशना मे दंशनास्ते वभूवुः ॥१२०॥ युग्मकम्
तां कुन्दवल्ल्याह सुचित्रकाव्ये व्यदर्शि विन्दुच्युतके स्वशक्तिः।
त्वयेर्षया साभ्यधिकामुनापि विन्द्वागमे तत्र कवीश्वरेण ॥१२१॥

इस प्रकार ललिता के निबारण करने पर श्रीकृष्ण श्री-राधा को सम्बोधन कर कहने लगे कि इस बारे में हमारा अथवा हमारे दाँतों का कोई अपराध नहीं है। अपराधिनी तो स्वयं तुम ही हो जो इस प्रकार स्पष्ट कर यह विन्दु दिखला रही हो ॥११९॥

इतना कह श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक अधर-पान द्वारा उनके चिवुक विन्दु को विलुप्त कर दिया और कहने लगेः—हे शशि-मुखि! यह विन्दु तुम्हारी चिवुक में अवश्य शोभा पाता है किन्तु अपने समान वर्ण-कान्ति-बाले अपने परिचित मित्र हमको समीप आया जान, अकस्मात् तुम्हारे भय के कारण हमारे दशन रूप दुर्ग (मुख) में छिप गया है अर्थात् अपने माधुर्य्य से हमारे दाँतों का चुम्बन करने की कामना करता है। इसी कारण इस विन्दु ने गुण से हमारे दाँत दंशन करने लगे हैं ॥१२०॥

कुन्दलता श्रीराधा से कहने लगीः— राधे-तुम कवियों में प्रधाना हो और तुमने विन्दु-च्युतक नामक चित्रकाव्य की रचना कर अपनी कविता शक्ति प्रदर्शन की है, इस ही ईर्षा से कवि-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने भी विन्द्वागम नामक चित्रकाव्य की रचना कर अपनी कविता शक्ति दिखलाई है। दशन (दाँत)

विवृत-स्वगुणोत्कर्षे गुणिनि गुणज्ञा न दोषमाद्यान्ति ।
प्रीणान्त्यस्मिंस्तस्मात् मण्डय मणिमालया त्वममुम ॥१२२॥
देवर-शिशिरगुणैर्यत् सम्प्रति सखि कुन्दवल्लि फुल्लासि ।
स्वदशन-कुसुमैः पूजय तदधरमरुणं त्वमेवास्य ॥१२३॥
रुष्टेव कुन्दलतिकावददच्युतं सा
सेयं हरेऽतिमुखरा मुखरा-सुनप्त्री ।
एषा सदैव ललिता प्रखरा त्वया सा
लभ्या कथं नु मुरली मृदु-भीरुणात्र ॥१२४॥

के स्थान में दन्शन करन (दन्ताघात) हुआ है। अर्थात् तुमके जो यह अपनी चिबुक का बिन्दु चुम्बन कराने दिया, श्री-कृष्ण ने भी चुम्बन कर लिया ॥१२१॥

और सुनो-यदि कोई गुणी अपने गुण की उन्नति करे तो गुणि-व्यक्ति उनमें कोई दोष नहीं समझता है वरञ्च सन्तुष्ट होता है। इसलिये तुमको चाहिये कि श्रीकृष्ण को अपनी मणि-माला इत्यादि देकर विभूषित करो, अर्थात् अपने अधरों पर उनको दन्ताघात करने दो ॥१२२॥

इस पर श्रीराधा कहने लगी-हे सखि ! कुन्दलते-इस समय तुम जो अपने देवर श्रीकृष्ण के पवित्र-गुणों पर इतनी प्रसन्न हो तव उनके अरुणवर्ण अधरों की अपने दन्तरूप पुष्पों द्वारा पूजा क्यों नहीं कर लेती ॥१२३॥

तव कुदलता कुछ कुछ क्रोधयुक्त बचनों द्वारा श्रीकृष्ण से कहने लगी- यह सुन्दरी राधा मुखरा की धेवती (दौहित्री) है, इस कारण यह भी बड़ी बाचाल है। इसकी सखी ललिता भी बड़ी प्रखरा (तीक्ष्ण-स्वभावा) है। किन्तु तुम्हारा स्वभाव मृदुल है। साथ ही साथ तीक्ष्ण भी तो है, तव क्या

एताः प्रगल्भाः कुटिला बह्वस्त्वं मृदुरेकलः ।
संरक्ष्य वस्त्रालङ्कारं तदितः स्वसखीन् व्रज ॥१२५॥
परपुरुष-गृध्नु-चित्ता धर्म्माधर्म्मग-विचार-रहिताश्च ।
मामपि तन्निज-सङ्गे कृतार्थयितुमुद्यता एताः ॥१२६॥
यासां स्वधर्म्म-निष्ठानां साध्वीनाममलात्मनाम्
बालेन देवरेणापि सम्भाषणमसाम्प्रतम् ॥१२७॥
ता नः संदूषयन्त्येता दुरुक्त्या यामि तद्गृहम् ।
दत्त्वा मोचय मां बन्धाद्विशाखायै प्रतिश्रुतम ॥१२८॥ युग्मकम्

तुम यह नहीं जानते कि इस समय मुरली किस प्रकार प्राप्त की जाकती है। यदि तुम निर्भयता से साहस करोगे तब ही पा सकते हो अन्यथा नहीं ॥१२४॥

और देखो–यह सब गोपियाँ अति साहसी और कुटिला हैं। ये लोग संख्या में भी अधिक है। तुम सरल स्वभाव के हो, अकेले हो, एक मुरली ही तुम्हारा सम्बल था वह भी चली गई। अब तुम अपने वस्त्राभूषण तो बचाओ, कहीं इनसे भी हाथ न धोना पड़े। उचित यही है कि गोचारण के लिये सखाओं के समीप प्रस्थान करो ॥१२५॥

ये सब गोपियाँ परपुरुष-गामिनी हैं। धर्म्म अधर्म्म का इनको विचार नहीं है। हमको भी अपना ही जैसा बनाना चाहती है ॥१२६॥

हे कृष्ण! मुझ सरीकी निर्मल, अपने धर्म्म में निष्ठ, पतिव्रता स्त्रियाँ अपने बालक देवर से भी बात चीत करना अनुचित जानती हैं किन्तु ये दुष्टा गोपियाँ हमको भी बदनाम कर रही हैं। इस लिये मैं तो घर जा रही हूँ। विशाखा को देने के लिये में जो बचन दे चुकी हूँ वह तुम पूरा कर देना

ततो हसन्नाह हरिर्विशाखा-मेह्येहि रत्नानि गृहाण साध्वि !
इतीरयंस्तां परिषष्वजेऽसौ सख्यो हसन्त्यः परिवव्रुरेनम् ॥१२६॥
ताभिस्तदास्मिन् कलहायमाने कोलाहले प्रोच्छलिते च राधा ।
प्रयत्न-सम्मूकित-भूषणा सा प्रविश्य कुञ्जान्तरभून्निलीना ॥१३०॥
तावत् सशङ्का तुलसी तु वंशीं वृन्दान्वितं कुञ्जमगाद्गृहीत्वा ।
वृन्दाप्युपादाय करात्ततोऽस्या निधाय वंशीं हृदि तामवादीत् ॥
वंशोत्तंसा वंशिकेऽसि त्वमेका सद्वंशानां क्षुद्रवंशोद्भवापि ।
या लीलानां हेतुरेतादृशाना-मासीद्राधा-कृष्णयोरद्भुतानाम् ॥१३२

जिससे मुझे इस बन्धन से छुटकारा मिले ॥१२७-१२८॥

यह सुन श्रीकृष्ण हँसते हँसते विशाखा से कहने लगे:- साध्वि !-शीघ्र आओ और रत्न ग्रहण करो। यह कहते कहते ही उनको आलिंगन कर लिया। अन्य सब सखियों ने भी इस समय हँसते हँसते श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया॥

जिस समय श्रीकृष्ण सखियों के साथ इस प्रकार कलह और कोलाहल कर रहे थे श्रीराधा अबसर पाकर चुप-चाप जिससे आभूषणों का शब्द न हो वहाँ से हट गईं और कुञ्ज में जा छिपी ॥१३०॥

तब तुलसी जिसके पास वंशी थी वह भयभीता हो उस कुञ्ज में चली गई जहाँ श्रीवृन्दा विराजमान थी। तुलसी से वंशी ले उन्होंने अपने वक्षस्थल में छिपा लिया और कहने लगी:- १३१॥

अरि वंशिके तुम एक साधारण बाँस की नली हो किन्तु उत्तम वंश वालों के सत्संग से तुम भी श्रेष्ठा हो गई। क्यों नहीं, तुम्हारे ही कारण तो श्रीराधा-कृष्ण की ऐसी लीला देखने को मिली ॥१३२॥

ततः सखीहास-बिलोल-नेत्रा सगद्गदं कृष्णमधिक्षिपन्ती ।
तद्बाहुबन्धान्निविड़ात् प्रयत्नान् निर्गत्य रोषादवदद्विशाखा ॥१३३॥
न स्मः स्वीयास्त्वत्कृतौ वा सहाया ग्राह्यं वित्तं ते कथं नः परस्य ।
तस्मादर्थोद्देशिकायै निजायै देह्येतत्त्वं भ्रातृपत्न्यै शठेश ॥१३४॥
कुन्दालि त्वं किं प्रगल्भापि मुग्धा
जाता कस्माद्यत् स्वदेवुर्धनं स्वम् ।
हित्वा मौग्ध्यादन्यदीयं चिकीर्षु-
र्मालिन्यं नस्तेन किम्वा किरोषि ॥१३५॥
तामब्रवीत् कुन्दलता विशाखे ददात्यसौ वो वरसुद्विजाभ्यः ।
धनं वदान्यो निजधर्म्म-वृद्ध्यै निषिद्धय पापं किमहं विदध्याम् ॥

सखियों का उपहास से किञ्चित् खिन्न हो विशाखा इधर उधर चञ्चल नेत्रों द्वारा दृष्टि-निक्षेप करने लगी और गद्गद्कण्ठ से श्रीकृष्ण को बुरा-भला कहते हुए कठिनता से उनके बाहु-पाश से मुक्ति पासकी। फिर क्रोधित-स्वर में कहने लगी:-॥१३३

अरे शठराज!-हम लोग तुम्हारे आत्मीय नहीं है। तुम्हारे किसी काम में सहायक नही हो सकता है। तुम तो पराये हो, तुम्हारा यह धन हम कैसे ग्रहण कर सकती है। जाओ, इस धन की लोभिनी उसी अपने भाई की स्त्री कुन्दलता को यह आलिंगन रूप धन देकर सन्तुष्ट करो ॥१३४॥

इसके बाद कुन्दलता को सम्बोधन कर विशाखा कहने लगी:-तुम निर्लज्जा होते हुए भी क्यों मूर्खा बन गई जो देवर का धन त्याग दूसरों को देने की इच्छुक हो रही हो। ऐसा धन लेकर क्या हम मलिन न हो जायेगीं ॥१३५॥

यह सुन कुन्दलता विशाखा से कहने लगी:-श्रीकृष्ण तुम लोगों को श्रेष्ठ-ब्राह्मणी समझ दान देना चाहते हैं। भला

चेत् प्रीतिदानमस्येदं किं भीताः स्थः प्रतिग्रहात् ।
गृहीत्वा द्विगुणं कृत्वा यूयं वितरताचिरात् ॥१३७॥
चित्राब्रवीद्धनमिदं निजवेतनत्वात्
स्वयं सखि त्यजसि किं परकीयबुद्धया ।
आढ्यास्यनेन न कृतिस्तव चेत् स्वसख्यै
स्वअस्याग्रतः सर्पादि दापय कुन्दवल्ल्यै ॥१३८॥
पुनः कौन्दयब्रवीच्चित्रे स्वरत्नं दीयतेऽमुना ।
नाङ्गीकुरुत चेत् कास्य हानिस्तत् स्वगृहे स्थितम् ॥१३९॥
कृष्णादानं प्रदानन्ते क्षुद्राम्वेतासु नोचितम ।
सुकलः सुकलायां त्वं राधायां तत्तदाचर ॥१४०॥

मैं मना करके क्यों पाप की भागी बनूँ ।१३६॥

और यदि यह समझती हो कि तुमसे प्रेम करने के कारण यह दान दे रहे है, तव लेने में भय अथवा सँकोच कैसा? लेकर इसका द्विगुण लौटा दो ॥१३७॥

यह सुन चित्रासखी विशाखा से कहने लगीः-यह धन तो तुमको वेतन के रूप में दिया जा रहा है, इस कारण तुम्हारा ही है। तुम तो परकीय विचार की हो फिर इसको त्याग क्यों रही हो। इससे तो तुम्हारी समस्त कामनायें पूर्ण होगी। किन्तु यदि इस धन से तुम्हारे किसी कार्य्य की सिद्धि नहीं होती है तव इस कुन्दवल्ली को जो तुम्हारे आगे खड़ी है क्यों नहीं दे देती ॥१३८॥

इस पर कुन्दलता ने उत्तर दियाः-हे चित्रे-श्रीकृष्ण अपना ही धन तो दे रहे हैं। यदि तुम लोग लेना नहीं चाहती हो तो इनकी इसमें क्या हानि है । इनका धन इन्हीं के पास रहेगा ॥१३९॥

अन्विष्य तामथ दृशा हरिरप्यपश्यन्
कुत्राप्युवाच ललितां क नु गोपितासौ ।
चौरी त्वया कुटिलया स्वसखी पुरो मे
आनीयतामितरथा त्वमिहासि दण्ड्या ॥१४१॥
साप्याह प्रतिभूर्नाहं का जानाति क सा गता ।
कुरु राज्यं तयात्र त्वं योग्यया याम्यहं गृहम् ॥१४२॥
एकाब्रवीत् सा स्वगृहं प्रयाता पराब्रवीत सूर्य्य-समर्च्चनायै ।
अन्याब्रवीन्मानस-जाह्नवीं ते स्पृष्टाऽपवित्रा पुनराप्लवाय ॥१४३॥

इसके बाद वह फिर श्रीकृष्ण से कहने लगी:—इन नीच स्त्रियों के साथ तुम्हारा यह लेना देना उचित नहीं है। जब तुम्हीं दाता एवं भोक्ता हो तब इसका (दात्री—भोक्ता) श्री-राधा के साथ ही यह लेन देन क्यों नहीं करते हो अर्थात् उनका दिया हुआ तुम भोगो और तुम्हारा दिया वह भोगें ॥

यह सुन श्रीकृष्ण चारों ओर दृष्टि—पात कर श्रीराधा को ढूढँने लगे किन्तु वे कहीं दिखलाई न पड़ीं। तव ललिता को सम्बोधन कर कहने लगे:—"अयि ललिते—तू बड़ी ही कुटिला है, बतातो उस चौरिणी सखी को कहाँ छिपा दिया है। उसको शीघ्र हमारे सामने ला नहीं तो सारा दण्ड ही भोगना पड़ेगा ॥१४१॥

उसपर ललिता ने उत्तर दिया:—"मुझे क्या पता वह कहाँ चली गई अब तुम अपनी राज्य—करण योग्या राधा को ले यहाँ राज्य करो, मैं तो घर चली" ॥१४२॥

तब कोई एक सखी कहने लगी:—'वह तो घर चली गई है'। दूसरी बोली, 'सूर्य्यदेव की पूजा करने गई है'। तीसरी कहने लगी—'नही नहीं तुमने जो उनको छू लिया था इससे वह

इत्यालीभिः प्रलब्धोऽसौ पश्यन् कुन्दलताननम् ।
तया दृशा निकुञ्जाय प्रेरितस्तं प्रविष्टवान् ॥१४४॥
तस्मिन् प्रविष्टेऽथ निकुञ्ज-गह्वरं चतुर्षु सख्योऽथ सकुन्दवल्लिकाः ।
बद्ध्वा लता-पाशचयैः कवाटिका-द्वारेषु कुञ्जाङ्गन एव ताः स्थिताः ॥
कान्तं वीक्ष्यान्तिकायान्तं सापसर्त्तुं कृतोद्यमा ।
अलब्ध-निर्गमा द्वार्षु तल्पं नीतामुना बलात् ॥१४६॥
स्मरदाव-प्रतप्तोऽसौ राधा सुरतरङ्गिणीम् ।
रहो लब्ध्वा यथावाञ्छं रेमे कृष्ण-मतङ्गजः ।१४७॥
नावीकञ्चुकमुक्तिरोधविचलद्दोस्स्वनत्कङ्कणा
वंशीं मे दद देहलं मम मम मेत्युल्लसद् गद्गदाः ।

अपने को अपवित्र हुआ जान दूसरी बार गंगा-स्नान करने गई है' ॥१४३॥

इस प्रकार सखियों द्वारा उपहास किये जाने पर श्रीकृष्ण कुन्दलता के मुख की ओर ताकने लगे और उसका संकेत पाकर निकुञ्ज में प्रवेश कर गये ॥१४४॥

श्रीकृष्ण के कुञ्जगृह में प्रवेश के बाद, कुन्दलता आदि समस्त सखियों ने सारे लता-द्वार बन्द कर दिये और आप आँगन में खड़ी हो गईं ॥१४५॥

श्रीराधिका अपने प्रियतम को निकट आया जान भाग खड़ी हुई, किन्तु द्वार तक भी न पहुँच पाई थीं कि श्रीकृष्ण ने उनको बल पूर्वक उठा शैय्या पर ले लिया ॥१४६॥

मत्त-हाथी जिस प्रकार दावानल की ताप से दग्ध हो इच्छानुसार जल विहार करता है, उसी प्रकार कृष्ण रूप मत्तहाथी दावानल से दग्ध हो एकान्त में श्रीराधिका रूप मन्दाकिनी को लाभ कर इच्छानुसार उनके साथ रमण करने लगे ॥१४७॥

तारुण्यादि-घनात्मसात्कृतिसु संरक्षोद्‌गतव्यग्रता
उद्यद्धाष्ट्‌र्य-भटापसारितधृतिह्रीवामताद्यालयः ॥१४८॥
आविर्भूत-मिथोऽतिपौरुष-लसद्‌गाढ़-प्रयोगोत्सवाः
सीत्काराञ्चित-कण्ठकूजित-सरत्-पीयूष-धारोत्कराः।
अन्योन्याग्रह-नर्म्मपूर्व्वक-कृताकल्पादि-शोभा द्वयो-
राधामाधवयोर्जयन्ति मधुराः कुञ्जे रहःकेलयः ॥१४९॥

विलास क्रीड़ा के समय जब श्रीकृष्ण श्रीराधिका की अँगिया की ग्रन्थी खोल उसे उतारने का प्रयास करने लगे तब श्रीराधा हाथों से उनको ऐसा करने से निवारण करते लगी। इस छीना-झपटी में उनके हाथों में जो आभूषण थे वे सब बजने लगे। उस समय श्रीकृष्ण उनसे अपनी वंशी माँग रहे थे और 'वंशीं मे देहि' वाक्य के बजाय कामावेग के कारण स्वरभंग होने से, उनके मुख से केवल 'दद देहि' बाक्य ही निकलने लगा। इसके उत्तर में श्रीराधिका भी'वंशी मयि नास्ति' के बदले में, उल्लास के कारण गद्‌गद् स्वर में 'मम ममा मा" वाक्य का ही उच्चारण करने लगीं। इस क्रीड़ा में श्रीराधा-कृष्ण की परस्पर-व्यग्रता (व्याकुलता) उदित होती जा रही थी अर्थात् दोनों इतने अधिक निलज्जता को प्राप्त हो गये थे कि सब सखियों का धैर्य्य, भय और लज्जा समस्त देख दूर हो गया। जिस रमणकेलि में एक दूसरे के अतिशय पौरुष व प्रगाढ़ आशक्ति के प्रयोग में महा-आनन्द उत्पन्न करते हो, जिस विलासक्रीड़ा में नायिका की सिसकारी (सीत्कार) रूप अमृतधारा वह रही हो और जिस विलासक्रीड़ा में परस्पर के आलिंगन में परिहास के साथ नख-चिह्न सम्भोग-रूप भूषण शोभा पा रहे हो, ऐसी श्रीराधा-कृष्ण की मधुर-

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽगाद्दशमस्तदालिसुखकृन्मध्याह्नलीलामनु ॥१०॥

❀ अथ एकादशः सर्गः ❀

नान्दीमुखीमनुसृताथ सभां सखीना-
मागत्य तां मुरलिकां हृदि निन्हुवाना ।
वृन्दाब्रवीत् क नु गतौ ब्रजकाननेशौ
सख्यो निवेद्यमिह नावनयोः पदेऽस्ति ॥१॥

निकुञ्ज निर्जन-विलासलीला की जय हो ॥१४८-१४६॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरण कमलों के मधुपान में भ्रमर के समान श्रीरूपगोस्वामिजी की सेवा के फल स्वरूप और श्री-रघुनाथदासगोस्वामि द्वारा आदेश की हुई व श्रीमत् जीव-गोस्वामि के सत्संग से उत्पन्न व श्रीरघुनाथभट्ट-गोस्वामि और श्रीगोपालभट्टगोस्वामि महोदय के प्रयास से निर्मित और जो बाद में श्रीकृष्णदास कविराज द्वारा विस्तार पूर्वक वर्णन की हुई, "गोविन्दलीलामृतकाव्य की" दशम सर्ग लीला समाप्त हुई। यह मध्याह्नलीला श्रीकृष्ण को, समस्त सखियों को और विशेषकर श्रीराधिका को सुख देती है ॥१०॥

इस समय श्रीवृन्दादेवी मुरली को अपने बक्षस्थल में

११)

ता ऊचुरेतौ स्मरसार्व्वभौम- पार्श्वं प्रयातौ कलहायमानौ ।
किं तन्निवेद्यं बद तत् सुगोप्यं चेद्‌गच्छतं निष्कुट-पट्टगेहम् ॥२॥
वृन्दाह नैतद्भवतीषु गोप्यं राधा-मनःप्राण-बपुःसमासु ।
निवेदनीयं सचिवास्त्ववश्यं किन्त्वीशयोः सन्निधिराजितासु ॥३॥
क्रीड़ावसानमवधार्य्य ततः समन्ता-
द्‌द्रष्टुं तयोर्निधुवनान्त-विलासमुत्काः ।
आगत्य कुञ्जमनु मुक्तकवाटवन्धा-
श्छिद्रेषु दत्तनयनाः परितः स्थितास्ताः ॥४॥

छिपाये नान्दीमुखी को साथ ले जहाँ अन्य सखियाँ बैठी थीं वहाँ गईं और उनसे पूछने लगीं कि इस समय वृन्दाबनेश्वरी श्रीराधिका और वृन्दाबनेश्वर श्रीकृष्ण कहाँ हैं। उनके श्रीचरणों में हमारा कुछ निवेदन है ॥१॥

सखियों ने कहा कि वे दोनों तो आपस में लड़ते झगड़ते (कलह करते) कन्दर्पमहाराज के पास गये हैं। तुम लोगों को क्या निवेदन करना है हमसे कहो ? यदि कोई गुप्त-वार्त्ता हो तब इस बन में वह जो उत्तम कुञ्जशाला है वहाँ चली जाओ। दोनों वहीं विराजमान हैं ॥२॥

उस पर वृन्दादेवी कहने लगीः—हे सखियों—तुम लोग तो मन-प्राण और देह से श्रीराधिका के ही समान हो, भला तुम से भी कुछ छिपाया जा सकता है किन्तु जब तुम लोग उनके समीप चली जाओगी हम वहीं निवेदन कर देंगी ॥३॥

सखियाँ यह जान कि अब तो श्रीराधा-कृष्ण की बिलास-क्रीड़ा समाप्त हो गई है इस गोपनीय-लीला का शेष-दर्शन करने की अभिलाषा से कुञ्ज में पहुच गईं और किबाड़ खोल कुञ्ज घर के छिद्रों में से झाँकने लगीं ॥४॥

आम्रेडितः स्वाङ्ग-विभूषणाय तत् कर्त्तुं प्रवृत्तोऽनया निवारितः।
समुच्छलद्विभ्रमया तदप्यमुं विभूषयन्नास तया स भूषितः ॥५॥
स पुण्डरीकाच्छदलेऽथ कौङ्कुमद्रवेण काञ्चित् प्रतिलिख्य पत्रिकाम्।
दधच्छिरोवेष्टनके स्वके प्रिया-मुदिष्ट याबो वहिरित्यभाषत ॥६॥
सखी-त्रपा-कुण्ठित-निर्गमेच्छां चौरीमिव न्याय-जितां गृहीत्वा।
करे बलात् फुल्ल-विलोचनोऽसौ कुञ्जालयात् प्राङ्गणमाससाद ॥७॥
सङ्कुचत्फुल्लनयनौ प्राणप्रेष्ठौ पुरःस्थितौ।
हृष्यन्त्यः परिवार्य्यालयः सखीमाहुः ससम्भ्रमम् ॥८॥

श्रीराधिका उस समय अपने वस्त्राभूषण धारण करने के हेतु दो तीन बार श्रीकृष्ण से पहिनाने को कहने लगी, किन्तु उनके ऐसा करने पर निबारण करने लगी। कारण, विलास के बाद सब बस्त्राभूषण स्थान–च्युत हो गये थे जिससे भ्रम वश कुछ सँकुचित हो गईं, किन्तु निबारण करने पर भी श्रीकृष्ण न माने और सब ठीक ठीक पहिना दिये। श्री-राधिका ने भी श्रीकृष्ण को अपने हाथों से विभूषित कर दिया ॥५॥

इसके बाद श्रीकृष्ण ने एक सफेद निर्मल कमल–पत्र के ऊपर कुँकुम से पत्र लिख अपनी पाग में रख लिया और श्रीप्रिया से बाहर चलने को कहने लगे ॥६॥

श्रीराधा लज्जा के कारण सखियों के समीप जाने में कुछ सँकोच करने लगी किन्तु श्रीकृष्ण, चौरिणी की भाँति उनका हाथ पकड़ निकुञ्ज घर से बाहर आँगन में ले आये ॥७॥

तब विचारमग्ना, सँकुचितनेत्रा प्राणप्रियतमा श्रीराधा को एवं प्रफुल्ललोचन प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण को अपने सामने आया देख सब सखियाँ प्रसन्न हो दोनों को चारों ओर से

११)

मुञ्चन्त्या नः कुत्र यातं भवत्या
नास्माभिश्चान्विष्य लब्धा कुतोऽपि ।
धृष्टेनासीत् कामुना वा प्रसङ्गो
जातास्माद्यो भाग्यतो नाभिभूतिः ॥९॥
निशम्य तासां परिहास-भङ्गीं निशाम्य चासौ रति-लक्षणानि ।
कान्तं निजालीः प्रतिसूचयन्तं ह्रियेर्ष्यया चोच्चलिता तदासीत् ॥१०
कान्तं हसन्तं कुटिलीकृतभ्रू-श्चलाधरा गद्गद-रुद्धकण्ठी ।
सा तर्ज्जनी-चालनया ततर्ज्ज स्वालीर्हसन्तीरवदच्च भङ्ग्या ॥११॥
गृहोन्मुखीं कर्षथ वस्त्रकर्षं लीनां क्वचित्सूचयथाथमुष्मै ।
सङ्गे स्थितां खेदयथामुना मां सङ्गः कथं वोऽथ मया विधेयः ॥१२

घेर खड़ी हो गईं और श्रीराधा से कहने लगीं:—॥८॥

अयि निर्लज्जे—हम लोगों को छोड़ तुम कहाँ चली गई थी। हम सब ढूढते ढूढते हार गईं तुम्हारा पता ही न चला। यह धूर्त्त कृष्ण तुमको कहाँ मिला। खैर यह जो कुछ भी हो हमको इससे क्या प्रयोजन। हमको तो प्रसन्नता इस बात से हुई कि तुमने इससे हार नहीं मानी। यह हमारा सौभाग्य ही है ॥९॥

सखियों के इस प्रकार परिहास-पूर्ण वाक्य सुन श्रीराधा लज्जा अनुभव करने लगी एवं यह देख कि उनकी निज सखियों के अंग पर श्रीकृष्ण द्वारा प्रदान किये रति-चिह्न प्रकाश पा रहे हैं, तब ईर्षा के वशीभूत हो, वहाँ से चले जाने को उद्यत हुईं ॥१०॥

श्रीकृष्ण यह देख हँसने लगे। तब श्रीराधा कम्पित एवं अवरुद्ध गद्गद-स्वर में तर्जनी अँगुली द्वारा उनको ताड़ना करने लगी एवं सखियों को भी हास्य करते देख कहने लगीं ॥११

युष्माभिरीरित-सुमत्त-भुजङ्गवर्य्या-
न्मां चञ्चलात् सपदि कण्टक-बल्लि-सख्य:।
स्पर्शोत्सुकादपसृतां चकितां ररक्षुः
कुञ्जाश्च रक्त-सित-सच्छतपत्रिकाश्च ॥१३॥ व्याजोक्तिः
कुन्दवल्ल्यवदत् सत्यं राधे ते नानृतं वच:।
यत्तन्निरोधजं चिह्नं कृष्णाङ्गे दृश्यते स्फुटम् ॥१४॥

हे सखियो—मैं जब घर जाने को कहती हूँ तब तुम लोग मेरा आँचल पकड़ रोक लेती हो, तुमसे जब छिपकर रहना चाहूँ यब तुम लोग इन श्रीकृष्ण को हमारा पता बतला देती हो और यदि तुम्हारे साथ रहती हूँ तब तुम लोग मेरा उपहास करती हो। अब तुम ही कहो हमारी तुम्हारी कैसे निभ सकती है ॥१२॥

श्रीराधा कहने लगी—सखियो—तुम्ही तो इस धूर्त्त, कामुक, चञ्चल, मतवाले और हमारे स्पर्श के अभिलाषी कृष्ण को हमारे समीप भेजती हो। मुझे तो इससे बहुत ही भय लगता है। इससे बचने के लिये ही तो में कुञ्जघर में छिप जाती हूँ। वहाँ के लाल सफेद कमल और कण्टक लतायें सखियों जैसी मेरी रक्षा करती हैं। यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है। जहाँ केवल छल से वास्तवार्थ का आच्छादन किया जाता है एवं प्रकृतार्थ बक्ता के तात्पर्य्य में रह कर निषेध का भजन करता है वह व्याजोक्ति है ॥१३॥

इस पर कुन्दलता कहने लगी—राधे—तुम सत्य कहती हो, इसमें तनिक भी झूँठ नहीं है। तुम्हारी सत्यता का प्रमाण इसी से सिद्ध है कि इसको निबारण करते समय तुमने जो इस अंग पर नख आदि से आघत किये हैं उसके चिह्न इसके

तीक्ष्णैः स्वकण्ठकनखैश्च दुलाभिराभि-
स्त्वद्गोपनाय वपुरस्य लता-सखीभिः ।
आचोटितं सखि ! तदौपयिकं तदेत-
च्चित्रन्त्विदं तदधिकं यदिदं तवापि ॥१५॥
रूपकेण विभावनया सङ्गतिः वेति सन्देहसङ्करः
गोपाङ्गनागण-रतेरतिलम्पटस्य
चन्द्रावलेधृ तिरुरस्यलमस्य युक्ता ।
यत्त्वं बिभर्षि हृदि तामहितामपीदं
चित्रं परं सखि ! वदात्र च तत्र हेतुम् ॥१६॥शब्दश्लेषः

शरीर पर दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥१४॥

किन्तु एक बात तो अत्यन्त आश्चर्य्य में डालने वाली है कि इन रक्षा करने वाली सखी--रूपा लताओं ने श्रीकृष्ण का अंग क्षत-विक्षत किया, उचित ही हुआ, परन्तु इन्होंने तो तुम्हारा अंग भी उनसे (कृष्णसे) कहीं अधिक क्षत-विक्षत कर दिया है । ऐसा क्यों ? यहाँ रूपक के साथ असङ्गति अथबा बिभाबना के साथ असङ्गति इस प्रकार भावना है । अतः सन्देह सङ्कर अलङ्कार है । उपमान तथा उपमेय का एक-रूपता रूपक है । कारण-रूप क्रिया के अभाव में जो फल प्राकट्य है उसको बिभाबना कहते हैं । एकाधार में कार्य्य, कारण वर्त्तमान है दोनों सम काल में ब्यक्त हो उसको असं-गति कहते हैं । भिन्न भिन्न अलङ्कार की एक ही साध विद्य-मानता में एक प्रधान अपर अप्रधान उसको संकर कहते हैं ॥१५

जो लम्पट कृष्ण ब्रज-गोपियों के साथ रति-क्रीड़ा करता रहता है उसी के बक्षस्थल पर नख छिह्न रूप चन्द्र-श्रेणि अर्थात् चन्द्राबली नाम की ब्रजाँगना ही धारण किये जाने

तामाललाप ललिता कुरु माऽत्र शङ्कां
पुंसः परादतिचलाद्भय-विद्रुतानाम् ।
स्पर्शोत्सुकाद्वपुषि साध्वि कथं सतीनां
दारिद्र्यमस्तु वन-कण्टकज-क्षतानाम् ॥१७॥ व्याजोक्तिः
प्रत्यङ्गानां वर्णनं श्रोतुमस्याः द्रष्टुं चास्यं भाव-शावल्यरम्यम् ।
नानोपायांश्चिन्तयत्युक्त ईशे स्वालीं हास्याद्वर्णयामासुराल्यः ॥१८॥
समाधिः

योग्य है। तुम उसी चन्द्रावली से द्वेष रखती हो। यही कारण है तुमको हर समय उसी का ध्यान रहता है। अयि राधे-विचित्र बात तो यह है कि कण्टक लताओं से तुम्हारी देह छिन्न कैसे हुई। इसका कारण तो बताओ। एक शब्द का यदि अनेकार्थ प्रतिपादित होता है उसको शब्दश्लेष कहते हैं। यहाँ चन्द्राबलीशब्द से नखक्षतश्रेणी एवं चन्द्रावली नामक व्रजरमणी है१६॥

उस पर ललिता कुन्दलता से कहने लगी:-अयि साध्वी, इसमें आश्चर्य्य की कौनसी बात है। आलिंगन के इच्छुक मतवाले पर पुरुष से बचने के लिये भयभीता सती-नारी का अङ्ग कण्टकमय लताओं से स्पर्श होने में क्षत-विक्षत हो ही जाता है। यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है ॥१७॥

उस समय श्रीकृष्ण की श्रीराधा के प्रत्येक अङ्ग का वर्णन सुनने में और उनके उस समय के रमणीय चन्द्रमुख का दर्शन करने की इच्छा हुई जब कि समस्त भाव उनके मुखारविन्द पर क्रमशः एक के बाद दूसरा उदय हो। कर्त्ता का यत्न के बिना तथा कारणान्तर सहायता के हेतु यदि कर्म्म अनायास से सिद्ध होता है तो उसको समाधि अलङ्कार कहते हैं

तृप्त्यै मुरारेरथ राधिकाया माधुर्य्य-कर्पूर-सुवासितां स्वाम् ।
विधातुकामाः कविता-रसालां तया निषिद्धाः कुटिलभ्रुवापि ॥१६
संफुल्ल-गोविन्द-मुखारविन्द-मन्दस्मिता-मन्द-मरन्द-सिक्ताः ।
तदिङ्गितज्ञाः क्रमतश्चलाक्षीं तां वर्णयन्त्यो जहसुर्वयस्याः ॥२०॥
युग्मकम्

भङ्ग्याथ कुन्दवल्लीं तां वर्णयन्त्य इवालयः ।
अप्रस्तुत-प्रशंसाया विषयं स्वसखीं व्यधुः ॥२१॥
ततः सा ललितावादीत् पश्यताल्यो विभर्त्त्यसौ ।
मधुसूदन-सम्भोग-चिह्नानि कुन्दवल्लिका ॥२२॥
सश्लेषाप्रस्तुतप्रशंसा

यहाँ समाधि अलङ्कार है । ॥१८॥

श्रीकृष्ण का अभिप्राय समझ सब सखियाँ उनकी तृप्ति के निमित्त कविता रूप रसाला में प्रस्तुत श्रीराधा के माधुर्य्य रूप कर्पूर एवं श्रीकृष्ण के मुख रूप सुमधुर कमल के मकरन्द को मिलाकर उनके निवारण करने पर भी, क्रमशः हँसते हँसते श्रीराधा का वर्णन, करने लगीं ॥१६–२०॥

सब सखियाँ इस समय आलोचना तो राधा की करनी चाहती है किन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं । इस कारण अपनी सखी राधा को सम्बोधन न कर कुन्दबल्ली को पुष्पलता रूप में सामने कर उनकी (राधा की) वर्णना करने लगी ॥२१॥

ललिता कहने लगीः- हे सखियो, देखो यह कुन्दलता मधुसूदन (भ्रमर) के सहबास से उत्पन्न हुए सम्भोग चिह्न अपने अङ्ग पर धारण किये हुए है । इस श्लोक में श्लेष युक्त अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है, प्रासङ्गिक कथा में अप्रासङ्गिक का कथन अप्रस्तुत प्रशंसा है ॥२२॥

भुवि शिवलिङ्गानीन्दोर्वलितान्येकैकया कलया।
मन्येऽस्याः कुचशम्भू ता दधतस्तज्जिगीषया प्रचुराः ॥२३॥
रूपकोत्प्रेक्षा-व्यतिरेकैः सङ्करः

हास-विकास-श्रीरदपंक्तिः।
कृष्णमुदे सा प्राह विशाखा ॥२४॥
क्षयिष्णुं तं हित्वा शश-जठरमिन्दुं मितकलं
सदा पूर्णानङ्का विगणित-कलानामघभिदः।
कलाभिर्वह्वीभिः करनख-विधूनां निजतनू-
मलञ्चक्रेऽस्याः किं स्तन-गिरिश-लिङ्गद्वयमिदम् ॥२५॥
रूपकोत्प्रेक्षा-व्यतिरेकैः सङ्करः

अब श्रीललिता श्रीराधा का बर्णन करती हुई कहने लगीः-
हे सखियो पृथिबी में चन्द्रमा की एक ही कला से युक्त सब शिव-लिंग विराजमान हैं किन्तु हमारी सखी राधा के कुचरूप दो शिव संसार के समस्त शिव लिङ्गों को जीतने की कामना से कई अधिक चन्द्रकला धारण किये हुए हैं। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा तथा व्यतिरेक इन तीनों का सङ्कर है। उपमेय का उत्कर्ष के लिये उपमान के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा है। गुण एवं दोष के द्वारा विलक्षण व्यतिरेक है ॥२३॥

इसके बाद विशाखा-सखी, जिसके दाँतों की पंक्तियाँ हँसते समय बड़ी ही मनोहर लगती हैं, श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के हेतु कहने लगीः-॥२४॥

श्रीराधा के दोनों स्तन-रूप शिवलिंग मानो सीमित कलाबाले और घटने बढ़ने बाले कलङ्क युक्त चन्द्रमा का त्याग कर श्रीकृष्ण के सर्वदा परिपूर्ण मण्डल और अक्षयकला युक्त हाथ और नखरूप चन्द्रमा को धारण कर अपने को विभू-

साभाषत तद्वाक्-तृप्ता तनुमध्या ।
कृष्णं सुखयन्ती श्रीचम्पकवल्ली ॥२६॥
क्वि नागरङ्गार्पित-लास्यलाञ्छने पदाम्बुजे वीक्ष्य हरेः कराम्बुजे ।
तत्स्पर्द्धयाऽस्याः कुच-नागरङ्गके मुदा न्यधत्तां नटनैः क्षतानि ॥२७

श्लेषरूपकोत्प्रेक्षाः

स्त्रीषु श्रेष्ठा ।
चित्रा चख्यौ ॥२८॥
चित्रा कनकलतेयं श्यामतमालाश्रिता स्फुटं धत्ते ।
पक्वं श्रीफल-युगलं तच्चलशाखोपशाखिकोल्लिखितम् ॥२६॥

उत्प्रेक्षातिशयोक्तिभ्यां संसृष्टिः

षित कर रहे है। अर्थात् क्रीड़ा-विलास के समय श्रीराधाजी की दोनों कुचाओं पर जो नख चिह्न श्रीकृष्ण ने अँकित किये थे वे कोटि चन्द्रमाओं की कान्ति को भी लज्जित कर रहे थे यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा एवं व्यतिरेक इन तीनों का सङ्कर है ॥२५॥

विशाखा की यह बातें सुन कोमलांगी चम्पकलता बहुत प्रसन्न हुई और श्रीकृष्ण का हर्षोल्लास बढ़ाती हुई कहने लगी ॥२६

श्रीकृष्ण के दोनों कर-कमल, उनके दोनों चरण कमलों को कालीयनाग की नाट्यशाला में नृत्य करते देख, उनसे प्रतियोगिता करने के लिये, नारंगी फल के सदृश श्रीराधा की दोनों कुचाओं पर सहर्ष नृत्य करके आघात कर रहे हैं। यहाँ श्लेष, रूपक तथा उत्प्रेक्षा है ॥२७॥

अब स्त्रियों में श्रेष्ठा चित्रा-सखी कहने लगी ॥२८॥

यह मनोहर कनकलता श्यामतमाल वृक्ष का आश्रय ले उसकी शाखाओं से लिपटी है। इसमें दो पके हुए श्रीफल जो साखाओं द्वारा क्षत विक्षत हो गये हैं स्पष्ट दिखाई दे

सभां प्रीणयन्ती सखीं लज्जयन्ती।
स्ववाण्या कवीशावऽदत्तुङ्गविद्या ॥३०॥

अस्या लसत्तनुवनीमनु भाति काम-
गम्भीर-वेदि-गजराट् यदिहास्य भातः।
कुम्भौ मिषेण कुचयोर्हरि-पाणिजन्म-
कामाङ्कुश-क्षतशतौ मदलेप-चित्रौ ॥३१॥

रूपकानुमानापह्नुतिश्लेषाणामन्योन्याङ्गाङ्गिभावात् साङ्कर्य्यम्

रहे हैं। भावार्थ—श्रीराधा—रूप कनकलता श्रीकृष्ण रूप तमाल-वृक्ष से लिपटी हुई है। श्रीकृष्ण की नख—रूप शाखायें उनकी दोनों कुचाओं को क्षत विक्षत किये हुए हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति द्वारा संसृष्टि है। उपमान के द्वारा ग्रस्त उपमेय का निरूपण अतिशयोक्ति है। क्रिया-प्रधान शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार से उत्पन्न संसृष्टि है ॥२६॥

इसके बाद कवियों में श्रेष्ठा तुंगविद्या श्रीकृष्ण आदि सभासद्‌गण को सन्तुष्ट करने के हेतु और श्रीराधा को लज्जित करने के अभिप्राय से कहने लगी ॥३०॥

आहा—श्रीराधा के मनोहारी तनुरूप वन में "गम्भीरवेदी" हस्ति (जिस मत्त हाथी को रक्तश्राव एवं चर्म्म मांस—छेदन होने पर भी चेतना न हो उसे गम्भीरवेदी कहते हैं) विराज-मान है। इस कारण इनके इस तनुरूप वन में इस हाथी के दोनों कुम्भ दो कुचाओं के छल से श्रीकृष्ण के नखरूप कामरूपी अँकुश—द्वारा सैकड़ों आघात पड़ने पर और मृग-मद के लेप द्वारा चित्राँकित हुए अत्यन्त शोभा प्रकाश कर रहे हैं, अर्थात् श्रीराधा की दोनों कुचाएँ श्रीकृष्ण के नख-

(१)

विराजत्-सुदन्तोल्लसत्सोमराजी ।
ततोऽतिप्रमोदाज्जगादेन्दुरेखा ॥३२॥
अस्यां सुरतरङ्गिण्यां कृष्णोऽक्रीडन्मतङ्गजः ।
तत्करास्फालनाक्लिष्टोल्लिखितौ स्तन-कोरकौ ॥३३॥

श्लेषोत्प्रेक्षासंमिश्रक-रूपकम्

कृष्ण-कर्णौ सुधा-पूर्णौ रचयन्ती स्वया गिरा ।
वारितापि दृशा सख्या रङ्गदेवी जगाद सा ॥३४॥
तरुणिम-मणिपूर्णौ मुद्रितौ हेमकुम्भौ
निभृतमुरसि धात्रा गोपितौ वाढ़मस्याः ।

द्वारा क्षत-विक्षत हुई शोभा पा रही हैं। यहाँ रूपक, अनुमान, अपन्हुति एवं श्लेषों का अन्योन्य अङ्गाङ्गिभाव से साङ्कर्य्य है। साध्य-साधन सद्भाव में अनुमान की भाँति अनुमान है, प्रकृत अर्थ का अन्य प्रकार करना अपन्हुति है।।३१।।

इसके पश्चात् इन्दुलेखा, जिसके दाँतों की पंक्ति पूर्णचन्द्र की कान्ति को भी लजाती है हर्ष सहित कहने लगीः—॥३२॥

इस देवसरी(गङ्गा) में श्रीकृष्ण रूप मत्त-हस्ति ने क्रीड़ा की है। इसी हेतु इनके स्तन–रूप कमल नाल उनके कर द्वारा क्लिष्ट अर्थात् क्षत विक्षत हो गये हैं। यहाँ श्लेष एवं उत्प्रेक्षा संमिश्रक रूपक है ॥३३॥

इसके आगे रंगदेवी, श्रीराधा के नेत्र-भंगी द्वारा निवारण करने पर भी श्रीकृष्ण के कानों को अमृत-रस के स्वाद से परिपूर्ण करने के हेतु, कहने लगीः—॥३४॥

विधाता ने श्रीराधा के वक्ष-स्थल में दो स्वर्ण कलश जिनमें यौवन मणियाँ भरी हुई हैं और जो ऊपर से चित्रा-

नखर-खनक-चौरैर्लुब्ध-कृष्णोरितैस्तै-
स्तत इत इव खातौ तत्र कर्त्तुं सुरङ्गम् ॥३५॥

रूपकोत्प्रेक्षाभ्यामतिशयोक्तिः

गिरिधर-तृप्त्यै शशिवदनां ताम् ।
तदनु सुदेवी परिहसति स्म । ३६॥
वनप्रिय-प्रियां वित्त सुवर्ण-दाड़िमीमिमाम् ।
पीतांशुक-नखक्षुण्णं दधतीं सत्फलद्वयम् ॥३७॥

रूपकश्लेषाभ्यामतिशयोक्तिः

स्वावसराप्तया तामथ हृष्टा ।
चन्द्रमुखी सा वर्णयति स्म ॥३८॥

कित है निर्जन-स्थान में छिपा रक्खे हैं, किन्तु लोभी चोर (श्रीकृष्ण) ने अपने नख-रूप खुदाई करने वाले के द्वारा उन दोनों कलसों (कुचा) को आघात करके क्षत विक्षत कर दिया है। यहाँ रूपक उत्प्रेक्षा द्वारा अतिशयोक्ति अलङ्कार है॥३५॥

इसके बाद सुदेवी, चन्द्रमुखी श्रीराधा का उपहास करती हुई श्रीकृष्ण की तृप्ति के निमित्त कहने लगीः-॥३६॥

अयि सखियों-यह जो पीले वर्ण की सुवर्ण-दाडिमी (अनारवृक्ष) है इसमें दो पके हुए उत्तम अनार लगे हैं। यह दोनों फल तोते ने अपने नखों से क्षत विक्षत कर दिये हैं। यह दाड़िमी (वृक्ष) वनप्रिय कोयल (श्रीकृष्ण) की प्रियतमा है। इसका दूसरा अर्थ है-स्वर्ण-दाडिमी स्वरूपा गौरांगी श्रीराधा की दोनों कुचाओं को श्रीकृष्ण रूप तोते ने अपने नखों से उनको क्षत विक्षत कर दिया है। यही राधिकाजी उन वन-प्रिय कृष्ण की प्रियतमा हैं। यहाँ रूपक एवं श्लेष के द्वारा अतिशयोक्ति है ॥३७॥

लोकोत्तरा हाटकदाड़िमीयं फले दधानापि पृथगयदाभ्याम् ।
सुपक्व-बीजान्यलि-विक्षतेन पिधाय धत्ते कुसुम-द्वयेन ॥३६॥

व्यतिरेकातिशयोक्तिः

नारीणां मूर्द्धन्या ।
श्रीज्येष्ठा सावादीत् ॥४०॥
अस्या दृगञ्जनालेपात् पक्वजम्बू-फलायते ।
कृष्णाधरेऽस्मिन् दन्तोऽस्या बुभुक्षित-शुकायते ॥४१॥

लुप्तोपमाकाव्यलिङ्गे

जब ललिता आदि आठों सखियाँ श्रीराधाजी का वर्णन कर चुकी तब अवसर पा चन्द्रमुखी नाम की सखी कहने लगी॥३८

यह सुवर्ण-दाड़िमी अलौकिकी है। इसमें जो दो फल (अनार) लगे है उनके सब बीज पृथक् है, जिनको भ्रमर-गण ने दंशित कर फलों को दो फूल सदृश आवरण से ढक दिया है। दूसरा अर्थ—स्वर्णदाड़िमी रूपा श्रीराधा दो दाड़िम फल (अनार) के समान कुचायें धारण किये हुए है जिनके समस्त बीज-रूप दन्त(दाने)श्रीकृष्ण के दन्ताघात एवं अधरोष्ठ द्वारा आवरण किये हुए हैं। यहाँ व्यतिरेक एवं अतिशयोक्ति है ॥३६॥

इसके बाद स्त्रियों में शिरोमणी ज्येष्ठा नाम की सखी कहने लगी:—४०॥

इन श्रीराधा के नेत्रों में अञ्जन लगाने के लिये श्रीकृष्ण के अधर पके जाम फल की भाँति कार्य्य करते हैं और श्री-राधिका की दन्त-पंक्ति श्रीकृष्ण के अधरों के लिये क्षुधार्त्त सुआ पक्षी की भाँति काम करती है। यहाँ लुप्तोपमा एवं काव्य-लिंग अलङ्कार है। यथा कथञ्चित् साधर्म्म्य का नाम उपमा है। जहाँ पदार्थ हेतु एवं वाक्यार्थ हेतु से कार्य्यसिद्धि होती

भ्रु वेरिता हृदीशेन वारितापि हृशेशया ।
राधां तां काञ्चनलता स्पष्टवर्णमवर्णयत् ॥४२॥
नाभिर्लोमावलिरुरसिज द्वन्द्वमास्यं विभाति
श्रीराधायामिति विधिकृता पश्यतां भ्रान्तिरेषा ।
सत्यं सान्द्रामृतमय-सरस्येकनालोत्थमब्ज-
द्वन्द्वं शश्वत् कर-परिचयैर्मीलयन् दीव्यतीन्दुः ॥४३॥ अपह्नुतिः
सा मृगीलोचना ।
माधवी व्याहरत् ॥४४॥
नाभिः कुण्डं त्रिवलि-विततिर्मेखला चावलग्नं
वेदिर्लोमावलिरपि जुहूः श्रीकुचौ भद्रकुम्भौ ।

है वहाँ काव्यलिंग अलङ्कार है॥४१॥

तब काञ्चनलता नाम की एक सखी श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के निमित्त श्रीराधा के निवारण करने पर भी आलोचना करने लगी ॥४२॥

आहा-श्रीराधा की नाभि में एक अकृत्रिम कुण्ड है, इसके ऊपर रोमाबली है, उसके ऊपर दो स्तन हैं और उनके ऊपर मुखमण्डल शोभा पा रहा है। इस नाभिकुण्ड का दर्शन करने से लोगों को ब्रह्मा की रचना में भ्रम हो जाता है। क्यों कि इस सुधाकुण्ड में एक नाल के सहारे दो मनोहर कमल खिले हैं जिनको मानो चन्द्रमा अपने हाथ के स्पर्श से बार बार मुद्रित कर क्रीड़ा कर रहा है। यहाँ अपन्हुति अलङ्कार है॥४३॥

इस के बाद मृगलोचना माधवी कहने लगीः-॥४४॥

श्रीराधा ही श्रीकृष्ण की यज्ञशाला स्वरूपा हैं। इनकी नाभि उस यज्ञशाला का होमकुण्ड है, ऊपर की तीन उदर-

११)

कामो यज्वा भुजघनगलौ पीठशङ्खौ बकारे-
श्रित्ताकृष्टिः फलमिह बभौ यज्ञशालास्य राधा ॥४५॥ रूपकम्
भानोः कन्यां धन्यामेताम् ।
सा पश्यन्ती वासन्त्याख्यत् ॥४६॥
भ्रूरोमाल्यौ धनुरसिलते श्रीकटाक्षाः पृषत्का
बाहू पाशौ गल इह दरः श्रीनितम्बो रथाङ्गम् ।
दीव्यद्गण्डौ कनक-फलके श्रीनखाश्चाङ्कुशाः श्री-
राधा भाति स्मरनरपतेः शस्त्रशाला विशाला ॥४७॥ रूपकम्
तद्वाक्तृप्ता ।
वृन्दाऽवादीत् ॥४८॥

रेखायें इसकी मेखला हैं, मध्यभाग वेदी है, रोमाबली जुहू है, दोनों स्तन मङ्गलमय कलश हैं, कामदेव यज्ञकर्त्ता है, नितम्ब पीठ (आसन) है, कण्ठ शङ्ख है और श्रीकृष्ण का आकर्षण इस यज्ञ का फल है । यहाँ रूपक है ॥४५॥

अब वासन्ती नाम की सखी वृषभानुनन्दिनी, धन्या श्रीराधा की ओर उपहास करती हुई कहने लगीः-॥४६॥

श्रीराधा कामदेव-महाराज की विशाल शस्त्रशाला की भाँति शोभायमाना हैं । इनकी दोनों भ्रू मानो धनुष है, रोमावली खड्ग है, नयन कटाक्ष बाण सदृश हैं, दोनों भुजायें मानो नागपाश हैं, गला शङ्ख है, मनोहर पीठ चक्र है, दोनों गण्ड मानो फलक हैं और नखून श्रेणी अँकुश के तुल्य हैं। यहाँ रूपक है ॥४७॥

यह बातें सुन श्रीवृन्दादेवी बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीः-॥४८॥

राधायाः सुतनुः सुधा-सुरधुनी बाहू विषे सत्स्तनौ
कोकौ श्रीमुख-नाभि-पाणि-चरणाः पद्मानि चक्रालकाः।
रोलम्बा मधुर-स्मितञ्च कुमुदं नेत्रे तथेन्दीवरं
रोमाली जलनीलिकेह लसति श्रीकृष्ण-हृत्कुञ्जर ॥४९॥ रूपकम्
पुनः कृष्णेङ्गितज्ञास्ताः श्लोकैरेकैकशः पृथक्।
वयस्यां वर्णयामासुः प्रेम्णा ताः ललितादयः ॥५०॥
शङ्खार्द्धेन्दु-यवाब्ज-कुञ्जर-रथैः सीराङ्कुशेषु-ध्वजै-
श्चाप-स्वस्तिक-मत्स्य-तोमर-मुखैः सल्लक्षणैरङ्कितम्।
लाक्षावर्म्मितमाहवोपकरणैरेभिर्विजित्याखिलं
श्रीराधा-चरणद्वयं सुकटकं साम्राज्य-लक्ष्म्या बभौ ॥५१॥
स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षारूपकश्लेषैः साङ्कर्य्यम्

श्रीराधा का समस्त शरीर अमृतमय गंगाजी के समान है, दोनों भुजायें कमल नाल हैं, पवित्र स्तन दो चक्रवाक हैं, शोभनीय मुखारविन्द, नाभि हस्त व चरण सब कमल हैं, घुँघराले बाल भ्रमर स्वरूप हैं। मधुर मुसकान कुमुदिनी के प्रफुल्ल पुष्प के समान है। दोनों नेत्र नील कमल हैं, रोमावली शैवाल है और जिसमें श्रीकृष्ण के हृदय-गजराज शोभायमान है। यहाँ रूपक है ॥४९॥

इसके बाद श्रीकृष्ण का यह अभिप्राय समझ कि श्री-राधा के रूप का बर्णन किया जाये, ललिता आदि सब सखियाँ पृथक् पृथक् श्लोक द्वारा उनके रूप-माधुर्य्य का वर्णन करने लगीं'—॥५०॥

श्रीराधा के चरण-युगल, जिनमें नूपुर शोभायमान है, शंख, अर्धचन्द्र, यव, पद्म, हस्ति, रथ, लाँगल, अंकुश, बाण, ध्वज, धनु, स्वस्तिक, मत्स्य और तोमर इत्यादि आयुधों से

यत्कान्त्या लवनाच्छ्रियः किशलये या पल्लवाख्यां न्यधात्
पद्माख्यां नलिने विधाय मलिनीभावं निशा कोकवत् ।
शोकात् कोकनदाभिधां विलपनैरक्तोत्पले चेत्यसौ
सा राधा भुवि तत्पदद्वयमिदं केनोपमेयं भवेत् ॥५२॥ व्यतिरेक:

अपूर्व्वा श्रीराधाचरण–नखचन्द्रावलीरियं
सदा पूर्णा भान्ती हरि-हृदि निरङ्कारुण-रुचि: ।
समुत्फुल्लं तस्येन्द्रिय-कुमुदवृन्दं विदधती
हठाच्चन्द्रावल्या विरचयति या विस्मृतिमपि । ५३॥

रूपक–विरोध-व्यतिरेक-श्लेषा:

चिन्हित हैं, मानो एक प्रशस्त सेना शिविर के समान हैं। यहाँ स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, रूपक एवं श्लेष का सांकर्य्य है ॥५१॥

श्रीराधा के दोनों चरण-कमलों की उपमा रक्तकमल अथवा उसके पल्लव आदि से तो दी नहीं जा सकती है क्योंकि कमल दोष-युक्त है वह रात्रि में चक्रवाक की भाँति दुखी रहता है। श्रीराधा के चरण दोष रहित हैं। तव फिर ऐसी कौनसी वस्तु है जिससे उनके चरणों की उपमा दी जाये अर्थात् वे इतने उत्ताम हैं कि इनकी तुलना नहीं की जा सकती है। दोनों चरणों की कान्ति रक्तपद्म के नवीन कोमल पत्रों की शोभा का छेदन कर मलिन करा रही है, रात्रि में पद्म मलीन होता है, तथा चक्रवाक आर्त्तनाद करते रहते हैं। रक्तकमल का नाम कोकनद है, अत: उसका नाम सार्थक होता है। यहाँ व्यतिरेक अलंकार है ॥५२॥

आहा-श्रीराधा की नख–चन्द्रावली अत्यन्त अद्भुत है। चन्द्रावली (चन्द्र–श्रेणि) सकलंक है, यह अकलंक एवं अरुण

तारुण्ये नवराज्ञि नीति-शिथिले राधा-वपुःपत्तने
वक्षोजद्वय-दस्युना स-जघनेनाक्रम्य मध्यं बलात्।
पौष्कल्यं निखिलं हृतं त्रिवलिभिः फुत्कारभीत्या गुणै-
र्बद्धा स्थापितमित्यवेत्य भयतो गुल्फौ निलीय स्थितौ ॥५४॥
रूपकोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः

स्वस्थित्यैव स्तम्भित-स्वर्णरम्भा-
स्तम्भारम्भे दीव्यतोऽस्याः सुजङ्घे।
धात्रानङ्गोष्णार्त्त-कृष्णेभ-शीत
च्छायाशाला-स्तम्भतां लम्भिते ये ॥५५॥ रूपकोत्प्रेक्षे

कांति युक्त हैं। यही कारण है कि श्रीराधा श्रीकृष्ण के हृदय में पूर्णरूप से दीप्तिमाना हो उनके हृदय रूप कुमुद को प्रफुल्लित कर सहसा उनकी चन्द्राबली को अपनी आभा में विलुप्त कर रही हैं। यहाँ रूपक, विरोध, व्यतिरेक एवं श्लेष अलङ्कार हैं ॥५३॥

इसके बाद सखियाँ श्रीराधा के यौवन का बर्णन करने लगीं:-जिस प्रकार तरुणावस्था रूप नवीन-राजा की नीतियाँ शिथिल हो जाती हैं उसी प्रकार श्रीराधा के अंग के दोनों स्तन और दोनों जङ्घा रूप चोरों ने उनके अङ्ग के मध्य भाग (कमर) का बलपूर्वक आक्रमण कर उनकी समस्त स्थूलता को अपहरण करलिया है और फुत्कार के भय से उस मध्य देश को तीन उदर रेखाओं द्वारा बाँध दिया है यह पता लगने पर दोनों ऐड़ियों ने अपने को छिपा लिया है। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है ॥५४॥

सखी आगे कहने लगी कि श्रीराधा की दोनों जँघायें सुबर्ण-केले के खम्भ के समान शोभायमान हैं। विधाता ने

अस्या मिषात् प्रसृतयोर्मदनाय हैमा-
लानद्वयं विधिरदादमुनार्थितः किम् ।
यत् कृष्णचित्त-मदमत्त-गजं स चास्मिन्
तन्माधुरी-सुदृढ़-शृङ्खलया ववन्ध ॥५६॥

रूपकोत्प्रेक्षापह्नुत्यनुमानानि

जानु-द्वयं न तदिदं वृषभानुजायाः
कामस्य ते कनक-सम्पुटिके सुगुप्ते ।
यत् कृष्ण-हृन्नयनरत्नमनेकयत्नैः
संमुष्य सोऽयमनयोर्मुमुदे निधाय ॥५७॥

अपह्नुति-रूपकोत्प्रेक्षानुमानानि

कामदेव रूप मतवाले ग्रीष्म-ऋतु की ताप से पीड़ित कृष्ण गजराज के शीतल छाया में बैठने के लिये इनकी रचना की है। यहाँ रूपक एवं उत्प्रेक्षा है ॥५५॥

और उस कामदेव की ही प्रार्थना पर क्या विधाता ने श्रीराधा की दोनों जँघाओं का निर्माण हस्तिबन्धन स्वरूप दो खम्भों के रूप में किया हैं? जिससे वही मदन श्रीराधा की दोनों जँघाओं-की माधुर्य्यरूप सुदृढ़-शृङ्खला (जँजीर) द्वारा श्रीकृष्ण के हृदयरूप हस्ति को बन्धन में रख सके। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति एवं अनुमान अलङ्कार हैं ॥५६॥

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा के दो जानु, जानु नहीं हैं, यह तो कन्दर्प महाराज के दो सुवर्ण-निर्मित दौने हैं जिनमें वे श्रीकृष्ण के हृदय और नेत्र रूप रत्नों को अपहरण कर रक्खे हुए हैं। यहाँ अपन्हुति, रूपक, उत्प्रेक्षा, एवं अनुमान अलङ्कार हैं ॥५७॥

त्वचि कठिन-करेभ्यः पद्मिनां भीः कवेः स्या-
ज्जलमय-कदलीनां ह्रीश्च काण्डादसारात् ।
हरि-करभ-विलासायास-लभ्ये तदस्या
निरुपम-मधुरे ते सक्थिनी केन तुल्ये ॥५८॥ व्यतिरेकः

मनोज्ञं श्रीगोवर्द्धन-कटकमञ्चन्न लभते
मुदं यः कालिन्द्याः पुलिन-गुण-लीला-स्मरणजाम ।
न तत्रत्यां चास्याः पुलिनमनुविन्दन्नघरिपु-
र्नितम्बं सोऽस्यास्तां समलभत पश्यन्न् भयजाम ॥५९॥
सन्देहरूपक-लुप्तोपमाः व्यतिरेकः

श्रीकृष्ण अपने दोनों हाथों को हाथी की सूँड की भाँति मोड़कर श्रीराधा की दोनों उरू को धारण किये हुए हैं। इस की उपमा किसके साथ दी जाये। यदि हाथी की सूँड से तुलना करते हैं तब हस्ति की बिशेषता होती है और यदि कदली बृक्ष से करते हैं तब उस में तो पानी की अधिकता के कारण उसका तना कमजोर होता है इससे इसको लज्जा और भय दोनों होते हैं अतः इससे भी तुलना नही हो सकती है यही कारण है कि श्रीराधा के उरू तुलना रहित है। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार हे ॥५८॥

जो श्रीकृष्ण मनोहर श्रीगोवर्द्धन पर्वत के नितम्ब (नीचे-की भूमि) देश का भ्रमण करते हुए कालिन्दी पुलिन के गुण और लीला का स्मरण कर हर्ष को प्राप्त नहीं होते हैं और कालिन्दी-पुलिन में भ्रमण करते हुए भी गोवर्द्धन पर्वत के नितम्ब की उत्पत्ति (जन्म) का स्मरण कर प्रसन्न नहीं होते हैं, बही श्रीकृष्ण श्रीराधा के नितम्ब का दर्शन कर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् श्रीराधा के साथ पुलिन और

राधा-श्रोणिरियं समा न पुलिनैः सत्या कवेर्गीरियं
यद्वेणी-यमुना तदेव पुलिनं काञ्ची मराली-ततिः।
नो चेत्तत्र हरेर्मनोनटवरं श्रीरासलास्यं कथं
स्वाभिर्वृत्ति-सखी-नटीभिरनिशं कुर्वन्न विश्राम्यति ॥६०॥

रूपकानुमान-व्यतिरेकाः

वीर्योन्मत्तैर्मदकरितनुस्थूलता-हस्तकुम्भै-
मैत्रीं कृत्वा शठगुरु-नितम्बोरु-वक्षोज-चौरैः।
पौष्कल्यं मे हृतमिति भय-क्रोध-शोकादिवास्या
दुःस्थं मध्यं त्वरितमकरोत् सिंह-मध्येन सख्यम् ॥६१॥ रूपकोत्प्रेक्षे

पर्वत की लीलाओं का स्मरण करके प्रसन्न होते हैं। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है ॥५६॥

"श्रीराधा की कटि यमुना-पुलिन की समान है" ऐसा कबिलोगों का कथन है। निश्चय ही यह सत्य है, क्योंकि श्री-राधा की वेणीरूपा यमुना उनकी कमर के मध्य तक विराजमाना है, इनकी कटि यमुना-पुलिन के सदृश है जिसमें चन्द्रहार (मेखला) हँसनियों की पंक्ति के समान है। यदि यह बात ठीक न होती तो श्रीकृष्ण रूप नट अपनी नटीरूपा राधा के साथ निरन्तर रास-नृत्य क्रीड़ा करते करते क्यों नहीं अघाते हैं। यहाँ रूपक, अनुमान एवं व्यतिरेक अलङ्कार हैं ॥६०

शठगुरु रूप तीन चोरों "कटि, उरू और स्तन" ने यथा-क्रम मत्त-हस्तियों के प्रकाण्ड शरीर, शुण्ड, और मस्तक के साथ साठ गाँठ किये हुए हैं ऐसा अनुमान कर श्रीराधा की कटि ने भय, क्रोध और शोक के कारण हस्तियों को वध करने वाले सिंह की कमर के साथ मित्रता जोड़ ली है। भावार्थ यह है कि-श्रीराधा की कमर केहरी की कटि के समान

अस्या नितम्ब-स्तनयोर्दरिद्रयोः
सन्धिं विधायाहृत-मध्य-सम्पदोः ।
पश्चाद्विधिर्वीक्ष्य कलिं प्रलुब्धयो-
श्चकार सीमां त्रिवलिच्छलेन किम् ॥६२॥ उत्प्रेक्षापह्नुती

बाल्यमित्र-विरहाद्वलग्नं क्षीणतामुपगतं प्रसमीक्ष्य ।
भङ्ग-भीति-विधुरो विधिरस्याः किं त्रिधा वलि-गुणैः प्रबबन्ध ॥६३
उत्प्रेक्षा-रूपके

सुधासरस्यां कनकाब्जिनीदलं भृङ्गालिफुल्लाब्ज-विराजदन्तरम् ।
किमेतदाभाति न किन्तु राधिक तुन्दं सरोमावलिनाभिभूषितम्॥६४
निश्चयानुसन्देहः

है । यहाँ रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥६१॥

आरम्भ में श्रीराधा की कटि और स्तन दोनों की बड़ी दीनावस्था थी । बाद में दोनों ने आपस में बन्धुत्व स्थापित किया और उनके नितम्बदेश की समस्त सम्पत्ति हरण करली किन्तु बाँटते समय दोनों में झगड़ा हो गया । विधाता ने यह देख बह सम्पत्ति अपने अधिकार में करली और झगड़ा दूर करने के हेतु दोनों के बीच ३ उदर रेखा द्वारा सीमा निर्धारित करदी । यहाँ उत्प्रेक्षा एवं अपन्हुती अलङ्कार है ॥६२॥

अहो ! श्रीराधा के बाल्यरूप वन्धु के विरह में उनके कटि देश की क्षीणता को देख क्या विधाता ने उसके भंग होने के भय के उस कटि देश को तीन उदर रेखाओं द्वारा बाँध दिया है । यहाँ उत्प्रेक्षा एवं रूपक है ॥६३॥

क्या अमृत-सरोबर में भ्रमरों की श्रेणी और खिले कमल शोभा पा रहे हैं, क्या यह स्वर्ण कमलदल है जो शोभायमान है । नहीं नहीं ऐसा नहीं है । यह तो श्रीराधा का उदर है

चलदल-दलजाले कम्पदं हैमदीव्यत्
कमल-नवदलालौ जाड्यदं निर्जयेन।
तिलकितमिव रामश्रेणि-कस्तूरिकाभि-
स्तदिदमुदरमस्या भाति सामाज्य-लक्ष्म्या ॥६५॥

रूपक-व्यतिरेकोत्प्रेक्षा:

भृङ्गाराम्भोजमाला-व्यजन-शशिकला कुण्डल-च्छत्र-यूपैः
शङ्ख-श्रीवृक्ष-वेद्यासन-कुसुमलता-चामर-स्वस्तिकाद्यैः।
सौभागाङ्कैरमीभिर्युत-करयुगला राधिका राजतेऽसौ
मन्ये तद्व्याजमिषात् स्वप्रिय-परिचरणस्योपचारान विभर्त्ति ॥६६॥

स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षापह्नुतयः

जो रोमावली सहित नाभि द्वारा सुसज्जित हो शोभा पा रहा है। यहाँ निश्चयानुसन्देह अलङ्कार है। अर्थात् सन्देह के बाद निश्चय यह अलङ्कार है ॥६४॥

जिन श्रीराधा का उदर पीपल के पत्र को भी पराजित करता है और स्वर्ण-तुल्य शोभायमान कमल पत्र को भी लज्जित करता है वही उदर रोमावली रूप कस्तूरी द्वारा चित्रित होकर अत्यन्त शोभा पा रहा है। यहाँ रूपक, व्यतिरेक एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥६५॥

श्रीराधा की दोनों भुजाओं पर अंकित समस्त सौभाग्य-चिन्ह (जलपात्र, पद्ममाला, पंखा, चन्द्रलेखा, कुण्डल, छत्र, यज्ञ-स्तम्भ, शङ्ख, बेलवृक्ष, वेदी, आसन, कुसुम, लता, चामर और स्वस्तिक आदि) इनकी शोभा को बढ़ा रहे हैं। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण की सेवा के लिये ही श्रीराधा ने यह समस्त सौभाग्य-चिन्ह धारण किये हैं। यहाँ स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा

श्रीकामाङ्कुश-तीक्ष्ण-चारु-शिखरैर्माणिक्य-न्पूर्णेन्दुभिः
श्लिष्टाग्रार्द्ध-विभाग-गन्धफलिका-श्रेणीदलैः शोभिते ।
पद्मे चेद्भविष्यतां कचिदपि श्रीराधिका-हस्तयो-
रौपम्यं जित-पल्लवाब्जचययोः सम्प्राप्स्यतां ते तदा ॥६७॥
रूपक-व्यतिरेकातिशयोक्तयः

राधा-कराब्ज-नखरा सुखरा वकारे
वक्षस्तटी-गरुड़-रत्न-कवाटिकायाम् ।
उत्कीर्ण-चित्र-करणाय रतीशकारो-
ष्टङ्काः सुसूक्ष्मनिशिताः स्फुटमुल्लसन्ति ॥६८॥ रूपकोत्प्रेक्षे
मूलेऽधोवदनं वराटकयुगं चाग्रेऽम्बुजे बिभ्रति
नैते स्वर्णमृणालके रतिपतेर्ये पाशतामागते ।

एवं अपन्हुति अलङ्कार हैं ॥६६॥

श्रीराधा के नख काम रूप अंकुश के समान सुतीक्ष्ण हैं। मानो माणिक्य निर्मित पूर्णचन्द्र जैसे आरक्त हैं। उँगलियाँ चम्पक-कली और हाथ कमल जैसे हैं, चम्पककलिकाओं के दल में यदि कमल शोभायमान हो तब पल्लव एवं कमलों का जय करने वाला श्रीराधा के करकमलयुग कभी तुलना प्राप्त हो सकता है। यहाँ रूपक, व्यतिरेक एवं अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥६७॥

श्रीराधा के तीक्ष्ण नख श्रीकृष्ण के इन्द्रनील-मणि निर्मित वक्षःस्थल रूप क्षुद्र कपाटों पर कामदेव रूप शिल्पकार के तीक्ष्ण अस्त्रों (औजार) द्वारा चित्र बनाकर उनमें हरिद्रा रङ्ग भरते हैं । यहाँ रूपक एवं उत्प्रेक्षा है । ॥६८॥

श्रीराधा इस समय मुँह नीचा किये हुये हैं और उन

कृष्णोत्फुल्ल-तमाल-वेष्टनपटू विल्वत्कुचाधः फले
राधा-बाहुलते इमे करयुग-श्रीपल्लवं दीव्यतः ॥६९॥
सन्देह-रूपक-लुप्तोपमाः

कामार्त्ति-सिन्धुतरणाय हरेर्विधात्रा
राधा व्यधायि तरणिर्मणि-चित्रहैमी ।
उत्क्षेपणी च निहिता शुभ-रोमराजि-
र्य स्तच्च बाहु-युगलं किमरित्र-युग्मम ॥७०॥ उत्प्रेक्षारूपके

की दोनों भुजायें ऊपर उठी हैं । यह अवस्था देख एक सखी उनका वर्णन करने लगी कि किशोरी की दोनों भुजायें स्वर्ण-कमल नाल के समान हैं । इन के मूलदेश में अधो वदन रूप दो बीजकोष (पद्म चाकी) है, जिनके आगे दो कमल (कुचायें) लगे हैं ॥६९॥

वास्तव में यह कमल-नाल नहीं है यह तो रतिपति कामदेव का पाश है क्यों कि आलिंगन के समय यही तो बन्धन-कारी होती है। श्रीराधा की यही भुजायें श्रीकृष्ण रूप प्रफुल्ल तमालतरु को बन्धन में लाने के कार्य में लता रूप हैं। स्तन रूप दो बेल फल नीचे रहते हैं और बाहु पत्तों को धारण करते हैं। यहाँ सन्देह, रूपक एवं लुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥७०॥

और ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण के काम-पीड़ा रूप समुद्र को पार करने के हेतु विधाता ने श्रीराधा रूप मणि निर्मित स्वर्ण-नौका जिसमें सुन्दर रोमावली दाँड़ रूप और दोनों भुजायें जल उलीचने के पात्र रूप रचना किये हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा एवं रूपक है ॥७०॥

श्रीराधिकापार्श्व-मतल्लिके शुभे
सौन्दर्य-कन्ये वृणुतः स्म ये स्वयम् ।
माधुर्य्य-पुत्रौ हरिपार्श्व-सद्वरौ
सव्यापसव्य-क्रमवैपरीत्यतः ॥७१॥ रूपकम्

स्मरजय-लिपियुक्ता हाटकी पट्टिकेयं
किमु विधृत-मनोभू-शस्त्रिकं स्वर्णपीठम् ।
मदन-भुजग-पाशाधार-तूणं नु हैमं
न हि लसति विराजद्वेणि-राधा-सुपृष्ठम् ॥७२॥ निश्चयानुसन्देहः

सहज-विनतमंशद्वन्द्वमस्याः कवीन्द्रा
गिरिधर-कर-शश्वद्धारतो नम्रमाहुः ।

श्रीराधा की बगल स्वरूप दो प्रशस्त शौन्दर्य्य कन्याओं ने श्रीकृष्ण की बगल रूप दो माधुर्य्य प्रति-मूर्ति श्रेष्ठ बरों को विपरीत क्रम में वरण किया हुआ है, अर्थात् वाम-पार्श्व कन्या ने दक्षिण बगल बाले बर को और दक्षिण बगल बाली कन्या ने बाम बगल वाले वर को बरण किया है। भावार्थ-- श्रीकृष्ण श्रीराधा को आलिङ्गन किये हुये हैं। यहाँ रूपक अलङ्कार है ॥७१॥

अब एक-सखी श्रीराधा की कमर का जिस पर वेणी लटकी हुई है, वर्णन करती है। क्या यह कामदेव पर विजय प्राप्त करने का लिखित स्वर्ण-पत्र है, अथवा की छुरी रखने की म्यान है या कामदेव के नागपाश धारण करने का तरकस है। यह सब कुछ नहीं है, यह तो श्रीराधा की पीठ है जिसके ऊपर उनकी बेणी डोल रही है। यहाँ निश्चयानु-सन्देह अलङ्कार है ॥७२॥

मम तु मतमनुच्चैरप्यदः सर्व्वमुच्चैः
शिरसगणमतीत्योद्भाति तत्सौभगेन ॥७३॥
व्यतिरेक-विरोधोत्प्रेक्षाः

सौन्दर्य्य-लक्ष्मीरिह काव्यलक्ष्मीः सङ्गीत-लक्ष्मीश्च हरेमुदेऽस्ति।
पूर्णेति धातुर्गणनात्त रेखा-त्रयेण कण्ठः किमु भात्यमुष्याः ॥७४॥
उत्प्रेक्षा

सीमार्थमुच्चैः शिरसोर्व्विवादे वलिष्ठ-नासास्तनयोर्विधाता।
राधा-वपुर्नीवृति कण्ठमध्ये रेखा-त्रयेणैव चकार सीमाम् ॥७५॥
उत्प्रेक्षारूपके

श्रीराधा के दोनों स्कन्ध स्वभाव से ही कुछ नीचे झुके है। कारण-श्रीकृष्ण के हाथों के निरन्तर दवाव से है ऐसा कवियों का अनुमान है, किन्तु वास्तव में यह वात नहीं है। उनके दोनों स्कन्ध स्वभावतः नीचे अवश्य है वे तो उनके हाथों के निरन्तर भार को वहन करने के कारण अपने को अत्यन्त शौभाग्यशाली मानते हैं और उन समस्त रमणियों के घमण्ड को चूर्ण कर रहे हैं जो अपने को अधिक शोभाग्यशाली होने का दोष करतीं हैं। निःशेष रूप से बृन्दाबन की चन्द्रावली आदि व्रजाङ्गनाओं का, द्वारिकापुरी की महिषीगणों का, परम-व्योम की लक्ष्मी का, गौरी और शचि आदि दिव्य रम-णियों का। यहाँ व्यतिरेक, बिरोध एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥७३

आहा-श्रीराधा के कण्ठ में तीन लक्ष्मियों का वास है अर्थात् सौन्दर्य्य-लक्ष्मी, काव्य-लक्ष्मी और संगीत-लक्ष्मी। ये तीनों यद्यपि पूर्णरूप से विराजमाना हैं तथापि विधाता की गणना में आने के कारण तीन रेखाओं द्वारा सुशोभिता हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥७४॥

व्यर्थीकृता स्वरगुणैर्गहनं पिकाली
भेजे सुधा च कटुतां जड़तां ततश्री:।
यस्य श्रिया दरतांतश्च समुद्रमस्या:
केनोपमान्तु कबयस्तमिमं सुकण्ठम् ॥७६॥ दीपक-व्यतिरेकौ
यो वालार्क-विकाशि-सुप्तमधुप-स्वर्णाम्बुजैकच्छदो
विश्राम्यत्पिक–हेम-मन्दिर-गबाक्षाधो विटङ्कोऽपि य:।
तौ राधा-मदविन्दु-चारु चिवुकं दृष्ट्वा स्वसाम्योत्सुकौ
श्रीकृष्णाङ्गुलि-सङ्ग–सौभग–-गुणैर्न्यकृत्य विभ्राजते ॥७७॥
व्यतिरेक:

श्रीराधा की नासिका और स्तन दोनों का ही मस्तक खूब ऊँचा है अर्थात् प्रत्येक अपने को श्रेष्ठ कहती है। सीमा निर्धारण पर दोनों में विबाद हुआ। यह देख विधाता ने श्रीराधा के कण्ठ में तीन-रेखायें खीच सीमा-निर्धारित कर विबाद का अन्त किया है । यहाँ उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलङ्कार है ॥७५॥

श्रीराधा की कण्ठ-ध्वनि सुन कोकिल समूह अपने को व्यर्थ हुआ जान बन को चली गईं, अमृत का स्वाद तीखा हो गया, वीणा बादन की मधुरता शैथिल्यता को प्राप्त हो गई अर्थात् सुनने में भली नहीं लगती है। इनके कण्ठ की शोभा देख शँखों ने भी समुद्र की शरण ली अर्थात् छिप गये। अब कबि-लोग किस बस्तु से उनके कण्ठ की उपमा दे, अर्थात् किसी से नहीं–यह तो अनुपम है। यहाँ दीपक एवं व्यतिरेक अलङ्कार हैं। क्रिया एक परन्तु यदि कारक अनेक होता है उसको दीपक कहते हैं ॥७६॥

प्रातःकाल के सूर्य की किरणों में खिले हुए स्वर्ण तुल्य

११)

बन्धोह रैर्जीवतयास्य तत्रा प्रेमणो वहिर्विम्वतया तथास्य।
राधाधरौष्ठाविति वन्धुजीव-विम्वौ स्वयं तन्न हि साम्यमाभ्याम् ॥
रूपकव्यतिरेकौ

एक कमल पत्र पर एक भ्रमर शयन कर रहा है और एक स्वर्ण के वने हुए मन्दिर की खिड़की के बीच घोंसला वनाये एक कोकिल पक्षी विश्राम कर रहा है। यह दोनों (भ्रमर एवं कोकिल) श्रीराधा की चिवुक में कस्तूरी-विन्दु देख उसको अपने से अधिक सौन्दर्य्य रूप जान चिन्तित हो गये कि श्री-कृष्ण की अंगुली के स्पर्श से इसके सौभाग्य की सीमा नहीं है अतः अपने को तुच्छ मानने लगे। यह व्यतिरेक अलङ्कार है।

यहाँ हेम मन्दिर से तात्पर्य है श्रीराधाजी के शरीर का, गवाक्ष से मुखारविन्द का और चिवुक विन्दु से घोंसले में बिश्राम करती हुई कोकिल का। भ्रमर और कोकिल से कस्तूरी-विन्दु की विलक्षणता व्यतिरेक है ॥७७॥

वन्धुजीव अर्थात् बन्धुवर श्रीकृष्ण का जीवन स्वरूप श्रीराधा के अधर और ओष्ठ के बीच आश्रित है। जब ऐसा है तव निश्चय ही उनके अधर और ओष्ठ श्रीकृष्ण के प्रेम छाया रूप हुए। इस कारण जव स्वयं वन्धुजीव फूल और विम्वफल दोनों ही अधरोष्ठ हुए तव इन दोनों के साथ श्रीराधा के अधर और ओष्ठ की उपमा कैसे हो सकती है। यहाँ श्रीराधाजी के अधरोष्ठ का वन्धुजीव पुष्प और विम्बफल के साथ तादात्म्य हेतु रूपक है अर्थात् अध-रोष्ठ की विलक्षणता प्रधान है। इस श्लोक में रूपक एवं व्यति-रेक अलङ्कार हैं ॥७८॥

आनन्द-पूर्णामृत-सत्त्वमूर्त्तेः कृष्णस्य जीवातुतयाप्त-कीर्त्तेः।
एतावता वर्णित-सन्महिम्ना राधाधरस्यान्यगुणैः किमुक्तैः ॥७९॥
स्वभावोक्त्याक्षेपौ

राधा-दन्तान् विजित-शिखरान् फुल्ल-कुन्दाद्यमित्रान्
विश्वव्याप्तीरित-निजकरानुन्मदान् वीक्ष्य वेधाः।
द्राक् चेदोष्ठाधर-सुपिहितान्नाकरिष्यत्तदा ते
नानावर्णं जगदपि सिताद्वैतमेव व्यधास्यन् ॥८०॥
उदात्त-व्यतिरेकातिशयोक्तयः

श्रीराधा के अधर कैसे हैं:- आनन्द-स्वरूप, पूर्णामृत, सत्त्वमूर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन के लिये आधार स्वरूप है। इतनी महिमा से युक्त होने पर और अधिक गुण-वर्णन करने से प्रयोजन ही क्या अर्थात् इससे अधिक और कौन से ऐसे गुण शेष रह जाते हैं जो बर्णन करने के योग्य हैं। यहाँ स्वभावोक्ति एवं आक्षेप अलङ्कार है। किसी विषय को बोलने की इच्छा कर पश्चात् विषय के द्वारा निषेध आक्षेप है ॥७९॥

श्रीराधा की दन्त-पंक्तियों का तो वर्णन ही क्या किया जाये। पके अनारदानों के आकार दन्त-श्रेणी अपनी सुन्दरता से माणिक्य समान कुन्द-आदि फूलों को भी तिरस्कृत कर रही हैं। समस्त विश्व-मण्डल इनकी ज्योति से ज्योतिष्मान है। यदि विधाता इनको अधरोष्ठ द्वारा आच्छादन न करता तो ये समस्त रंग विरंगे ब्रह्माण्ड को शुक्लवर्णमय बना देते। यहाँ उदात्त, व्यतिरेक एवं अतिशयोक्ति अलङ्कार हैं। बस्तु का अत्यन्त समृद्धि--बर्णन उदात्त है ॥८०॥

कुन्दाकृतिर्हीररुचिर्विचित्रा श्रीराधिकाया रदकीरराजिः ।
या नित्यकृष्णाधरविम्बमात्रा-स्वादेन लेभे शिखरच्छवित्वम् ॥८१

रूपकतद्गुणौ

राधा-रसज्ञारुण-रत्नदर्वी कृष्णाय रेजे परिवेशयन्ती ।
सन्नर्म-सङ्गीत-सुकाव्य-रूपान् स्ववाग्विलासामृत-सद्विकारान् ॥८२

रूपकम्

यां कृष्ण-सत्कीर्त्ति-विदग्धनर्त्तकी
राधा स्वकण्ठे निलये न्यवीविशत् ।
चकास्ति सूक्ष्मारुण-शाटिकाञ्चलं
तस्या वहिःस्थं रसनाच्छलेन किम् ॥८३॥

रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः

श्रीराधा के दशन (दाँत) जिनकी आकृति कुन्दपुष्प के समान हैं, हीरा जैसी कान्ति से युक्त हैं और रंग विरंगे हैं, टिया पक्षियों की भाँति सदा श्रीकृष्ण के बिम्बफल सदृश अधरों के आस्वादन से पके अनार की नाईं कान्ति प्राप्त किये हुए हैं। यहाँ रूपक एवं तद्गुण अलङ्कार है। कोई वस्तु यदि अपने गुण का परित्याग कर अन्य एक उत्तम गुण का ग्रहण करती है उसको तद्गुण कहते हैं ॥८१॥

श्रीराधा की रसना रक्तवर्ण दर्वी (हाता परिवेशन पात्र) के समान है। जिस प्रकार दर्वी उत्तम उत्तम तरल खाद्य पदार्थ परिवेशन करती है उसी प्रकार श्रीकिशोरी की रसना भिन्न भिन्न स्वर के उत्तम गान एवं मधुर-वाक्य बिलासरूप अमृतमय सद् विकारों द्वारा श्रीकृष्ण को प्रसन्न करती रहती है। यहाँ रूपक है ॥८२॥

क्या श्रीराधा श्रीकृष्ण की सत-कीर्त्ति स्वरूपा बुद्धिमत्ता

श्रीकृष्ण-सत्कीर्त्त्यभिधान-नाम्नोः सुनव्य-यूनोर्मिथुनस्य धात्रा।
हिन्दोल-लीलाभिरतस्य चक्रे राधा-रसज्ञारुण-वस्त्रदोला ॥८४॥

रूपकोत्प्रेक्षे

पीयूषाब्धि-तरङ्ग-वर्ण-मधुरं नर्म्मप्रहेलीमयं
शब्दार्थोभयशक्ति-संसित रसालङ्कार-वस्तुध्वनि।
भृङ्गी-भृङ्ग-पिकी-पिकध्वनि-कलास्वध्यापकं राजते
श्रीकृष्ण-श्रवसो रसायनमिदं श्रीराधिका-भाषितम् ॥८५॥

रूपक-स्वभावोक्ती

नर्त्तकी नायिका को अपने कण्ठ में धारण किये हुए हैं ? क्यों-कि उसी नायिका की क्षुद्र रक्तवर्ण साड़ी का अञ्चल उनकी जिह्वा के रूप में वाहर प्रकाश पाता है। यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥८३॥

श्रीकृष्ण की सत्कीर्त्ति और नामरूप युबक मिथुन को झूला लीला में तल्लीन देख विधाता ने श्रीराधा की रसना को लाल-बस्त्र से अलंकृत झूला रूप में रचना किया है। अर्थात् श्रीराधा की रसना निरन्तर श्रीकृष्ण की सत्कीर्त्ति और नामोच्चार करती रहती है। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा हैं ॥८४॥

जो कण्ठ-ध्वनि अमृत रूपी समुद्र की तरंग के तुल्य है, वर्णाक्षरों के प्रयोग करने में मनोहारी है, परिहास एवं वाक् चतुरता में निपुण है, शब्द व अर्थशक्ति द्वारा रस, अलङ्कार और बस्तु-ध्वनि से युक्त है; भ्रमर-भ्रमरी; और कोकिल-ध्वनि की भी शिक्षा देने बाली है अर्थात् उससे मनोहर है। वही श्रीराधा की बाक् पटुता श्रीकृष्णजी के दोनों कर्णों को सुख देने बाली है। यहाँ रूपक एवं स्वभावोक्ति हैं ॥८५॥

प्रेमाज्य-नर्म्मालि-सिता-रसावली माध्वीक-मन्दस्मितचन्द्र-संयुता।
अस्या मृषेर्षा-मरिचान्विताद्भुता वाणी रसालोल्लसतीश-तृप्तिदा ॥
॥८६॥ रूपकम्

सुधा-सरिदियं हरेः किमु मनोमरालाश्रयः
सुधाकिरण-कौमुदी तृषित-दृक्चकोरी-गतिः।
सुधासित-घनावली सुतनु-चातकी-जीवनी
विराजति न राधिका-स्मितसुधोर्म्मिरुन्मीलति ॥८७॥
रूपक-निश्चयान्तसंशयौ

हरेर्गुणाली-वर-कल्पवल्यो राधा-हृदाराममनु प्रफुल्ला:।
लसन्ति या याः कुसुमानि तासां स्मितच्छलात् किन्नु बहिः स्खलन्ति॥
॥८८॥ रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः

श्रीराधा की वाणि स्वरूप रसाला कैसा है? इसमें प्रेम घृत है, सब अन्तरंग सखियों के व श्रीकृष्ण के प्रति नर्म्म चीनी रूपा है, रस श्रेणी मधु है, मुसकराना कपूर है और मिथ्या ईर्षा मिर्च है। ऐसे वाणि रूप रसाला से श्रीकृष्ण को पूर्ण-तृप्ति मिलती है। यहाँ रूपक अलङ्कार है ॥८६॥

इसके बाद सखी श्रीराधा के हास्य का वर्णन करने लगी:- आहा-क्या यह अमृतमयी कोई नदी है जिसके किनारे श्री-कृष्ण के मन रूप हंस का वासा है अथवा क्या यह चन्द्रमा की ज्योत्स्ना है जो कृष्ण के नयन रूप चकोर का आश्रय है अथवा क्या यह अमृतमयी स्वच्छ सफेद मेघमाला है जो श्रीकृष्ण के शरीर रूप चातक का जीवन आधार है। नहीं नहीं यह कुछ नहीं है, यह तो श्रीराधा के हास्य की तरंगमाला है जो प्रकाश हो रही है। यहाँ रूपक एवं निश्चयान्त-सन्देह अलङ्कार हैं ॥८७॥

श्रीराधावदनं सुधाक्षयसरः कृष्णार्णवं यत्ततो
निष्क्रम्याञ्चति पञ्चम-स्वर-सुधा-स्रोतस्वतीयं क्वचित् ।
सङ्गीतामृत-वाहिनी तत इतो वाणी-सुधा-निम्नगा
काप्यामोद-सुधाधुनी स्मितसुधा दिव्या नदी चान्यतः ॥८६॥

रूपकतुल्ययोगितानुमान-क्रियादीपकानि

राधाया वदनं सुमेरु-शिखरं न्यक्कृत्य विभ्राजते
यत्तस्मात् स्मित-सत्सुधा-सुरधुनी कृष्णामृताम्भोनिधिम् ।

अथवा क्या श्रीराधा के हृदय रूप उद्यान में श्रीकृष्ण की गुणावली रूप कल्पलतायें फूली हुई शोभा पारही है अथवा कल्पलताओं की पुष्पश्रेणी ही श्रीराधा के हास्य-रूप में प्रस्फुटित हो रही हैं। यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥८८॥

श्रीराधा का मुखारविन्द अमृत का अक्षय-सरोवर है जिसमें से कभी तो पञ्चम स्वर रूप अमृत-नदी का प्रवाह होता है, कभी संगीत रूप सुधा-नदी बहती है, कभी वाक्य रूप सुधा धारा निकलती है, कभी सौगन्ध्य-नदी और कभी ईषत् हास्य रूप सरिता वाहर निकलती है। फिर सबको सब कृष्ण रूप सागर में मिल जाती हैं। यहाँ रूपक, तुल्ययोगिता, अनुमान एवं क्रियादीपक अलङ्कार हैं, प्रकृत पदार्थों की एकदा उक्ति तुल्ययोगिता है। कारक का अनेक एवं क्रिया का एक प्रयुक्त होना क्रियादीपक है ॥८६॥

श्रीराधा का मुख सुमेरु–पर्वत के शिखर का भी तिरस्कार कर शोभायमान है। कारण:–पर्वत से जो अन्यान्य नदियाँ निकलती है वे सब खारे समुद्र में जा मिलती हैं किन्तु श्री–

दिव्यामोद-सुधा-सुपर्व्वतटिनी वाणी-सुधा-स्वर्णदी
सङ्गीतामृत-जाह्नवी स्वरसुधा-मन्दाकिनी चाञ्चति ॥६०॥
क्रियादीपकानुमानरूपकतुल्ययोगिता:

नयन-पथिकयात्रा-मङ्गलायाघशात्रो-
र्विधिरिह मुखपद्मं राधिकाया विधाय ।
तदधि निहित-चक्षुःखञ्जनौ वीक्ष्य लोलौ
निभृतमकृत नासा-स्वर्णदण्डे निबद्धौ ॥६१॥ रूपकोत्प्रेक्षे

हरि नयन-चकोर-प्रीतये राधिकाया
मुख-शशिनमपूर्व्वं पूर्णमुत्पाद्य धाता ।

राधा के मुख से जो हास्य-रूप, आमोद-रूप एवं स्वर-रूप सुधा दिव्य-नदियाँ प्रवाहित होती हैं वे श्रीकृष्ण रूप अमृत-सागर से मिलती हैं। यहाँ क्रियादीपक, अनुमान, रूपक एवं तुल्ययोगिता अलङ्कार हैं ॥६०॥

यात्रा के समय यदि कमल पर खँजन पक्षी बैठा मिल जाये तब यात्रा सफल मानी जाती है। यही सोच विचार कर विधाता ने श्रीकृष्ण के नेत्र रूप पथिक की यात्रा की शुभ कामना के हेतु श्रीराधा के मुख-कमल की रचना में नयन रूप दो खञ्जन पक्षी संनिवेशित कर उनको चंचल देख उन दोनों को नासिका रूप सुबर्ण-दण्ड में बाँध रक्खा है। यहाँ रूपक, एवं उत्प्रेक्षा हैं ॥६१॥

श्रीकृष्ण के नयन-रूप चकोर की प्रसन्नता के निमित्त विधाता ने श्रीराधा के मुख-रूप अपूर्व पूर्णचन्द्र की रचना कर उसमें नेत्र-रूप दो चञ्चल हरिणों को स्थापित कर उनको बाँध रखने के हेतु दोनों के पाश दो कर्ण पाश अर्थात् रज्ज

नयन-हरिण-युग्मं न्यस्य तस्मिन सुलोलं
न्यधित तदवरोद्धुं पार्श्वयोः कर्ण-पाशौ ॥६२॥ रूपकोत्प्रेक्षे
चन्द्रः कलङ्की क्षयितोऽतिविह्वल-स्तत्पादघातैर्मलिनं यथाम्बुजम्।
सुनिर्म्मलं सन्तत-पूर्णमण्डलं केनोपमेयं वद राधिकाननम् ॥६३॥
व्यतिरेकः

राधाया जित-हेमदर्पणमदं गण्डद्वयं सुन्दरं
लावण्यामृत-पूर्णितं हि कनकक्षौण्यां सरोयुग्मकम्।
यत्ताटङ्क-सुवर्ण-पद्मकलिकं कस्तूरिका-चित्र स-
च्छैवालं मकरी-विलास-वलितं कृष्णातितृष्णाहरम् ॥६४॥
रूपकानुमान-व्यतिरेकाः

(जाल) का निर्माण कर दिया है। यहाँ रूपक, एवं उत्प्रेक्षा हैं ॥६२॥

चन्द्र एक तो सकलंक है दूसरे क्षय-रोग से पीड़ित रहता है इसलिये सदा दुखी रहता है। ऐसे चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श पा कमल भी मलिन हो जाता है। अब कहीं श्रीराधा के निरन्तर परि-पूर्ण मुख-मण्डल की किसके संग उपमा की जा सकती है अर्थात् किसी के साथ नहीं। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है ॥६३॥

श्रीराधा के दोनों कपोल (गाल) स्वर्ण-दर्पण को भी लज्जित करते हैं जो अति मनोहर हैं। मानो काञ्चनमयी पृथिवी के ऊपर अति सुन्दर दो सरोवर हैं। दोनों ओर लटके हुए कर्ण-भूषण (झुमके) मानो कमल की दो कलियाँ हैं। इन पर जो कस्तूरी द्रव्य से चित्र अँकित है वे मानो सरोवर में उत्पन्न शैवाल है। मछली के आकार के कुण्डल मानो सरोवर के जलजन्तु हैं। ऐसे श्रीराधा के गण्ड रूप सरोवर श्रीकृष्ण की

११)

श्रीकृष्ण-श्रीनयन मधुपद्वन्द्व-पोषाय धाता
श्रीलावण्यामृतमय-सरस्याननं राधिकायाः ।
उत्पाद्यास्मिन् नयन-युगल-च्छद्मनेन्दीवरे द्वे
श्रीगण्डेन्दू न्यधित स तयोः पार्श्वे उत्फुल्लतायै ॥६५॥
रूपकोत्प्रेक्षापह्नुतयः

निवसति ननु राधा-भाल-शालारकान्त-
वृ ततनुरिह कश्चित् कीरराजः सतृष्णः ।
रसवदधरबिम्ब-प्रेक्षणादस्य चञ्चुः
कलयत बत नासाच्छद्मना निर्गतास्ति ॥६६॥ रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः
अस्याः सुनासा-मदनाद्भुतेषु-र्व्यालोल-चिल्लीधनुरर्पितोऽपि ।
बिवेश मुक्ताफलकाग्रकोपि द्रुतं हरेर्हृत्धृति-वर्म्मितं यः ॥६७॥
बिरोध-रूपकविशेषोक्तयः

पिपासा अर्थात् देखने की इच्छा को दूर करते हैं। यहाँ रूपक, अनुमान एवं व्यतिरेक अलङ्कार हैं ॥६४॥

विधाता ने श्रीकृष्ण के नयन रूप दो भ्रमर को पोषण करने के हेतु श्रीराधा के लावण्यामृत सरोवर रूप मुख-मण्डल में नेत्रों के छल से दो नील कमल बनाकर उनके प्रस्फुटित (खिलने) के अभिप्राय से गण्ड रूप दो चन्द्रमाओं का निर्माण कर दोनों के इधर उधर वैठा दिया है। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा एवं अपन्हुति अलङ्कार हैं ॥६५॥

आहा-देखो ! क्या कोई टिया पक्षी (तोता) श्रीराधा के मस्तक रूप पिंजरे में फँसा वैठा है ? यह शुक रसयुक्त अधर-रूप विम्बफल देख नासिका के छल से अपनी चोंच बाहर निकाले है। यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥६६

श्रीराधा की सुन्दर-नासिका मानो कामदेव का अद्भुत

अमुष्याः श्रीनासा-तिलकुसुमतूणो रतिपते-
रधोवक्त्रं पूर्णः कुसुम-बिशिखैश्चित्र-मृगयोः ।
मुखद्वारा तस्मात् स्मितचय-मिषात्तो निपतिता:
शरव्यत्वं येषामलभत हरेश्चित्त-हरिणः ॥९८॥

रूपकापन्हुतिविभावनाः

राधाया नयनाञ्जनाधर-रुचा व्याप्तं नु गुञ्जायते
नासामौक्तिकमेतदित्यविदुषां काव्यं ममैतन्मतम् ।
शश्वत् कृष्ण-बिराजि-रागि-हृदय-श्वासानिलैर्भावितं
तत्ताद्वर्णतयाशु तत् परिणतं तेषां हि तत्ताद्गुणैः ॥९९॥

लुप्तोपमा-तद्गुणौ

बाण है। इसके अग्रभाग पर फलक रूप एक मुक्ता (मोती) लगा हुआ है एवं भ्रू रूप धनुष पर सन्धान किया हुआ है। यह बाण धैर्य्य रूप कबच-धारी श्रीकृष्णजो के हृदय को विद्ध कर प्रवेश कर गया है। यहाँ विरोध, रूपक, बिशेषोक्ति अलङ्कार हैं। कारण के रहने पर भी कार्य्य की उत्पत्ति न होना विशेषोक्ति है ॥९७॥

श्रीराधा के मुख पर नासिका कैसी शोभा पारही है मानो तिल के फूल जैसा बाणाधार हो, जिसमें व्याध रूप रतिपती कामदेव के पुष्पबाण भरे हैं। इसमें से जो हास्य रूप बाण समूह बाहर निकलते हैं मानो बे श्रीकृष्ण के मन रूप मृग को अपना लक्ष्य बनाते हैं। यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं बिभावना अलङ्कार हैं। कारण रूप क्रिया का अभाव में भी फल की उत्पत्ति बिभावना है ॥९८॥

जिस प्रकार गुञ्जाफल एक ओर कृष्णवर्ण और दूसरी ओर रक्तवर्ण होता है, श्रीराधा की नासिका के अग्रभाग

नयन-युगविधाने राधिकाया विधात्रा
जगति मधुरसाराः सञ्चिताः सद्गुणा ये।
भुवि पतित-तदंशैस्तेन सृष्टान्यसारै-
र्भ्रमर-मृग-चकोराम्भोज-मीनोत्पलानि ॥१००॥ बिशेषालङ्कारः
खञ्जरतीक्ष्णा-मञ्जनलिप्तं कञ्ज-नवस्मय-भञ्जन-दृप्तम्।
शञ्जननाच्युत-रञ्जनशीलं सुमुखि ! तवाण्डजगञ्जनलीलम्॥१०१॥
अनुप्रासलुप्तोपमे

में लटका हुआ मोती भी वैसा ही दीख पड़ता है। क्या यह आँखों के काजल और होठों की लाली के कारण ऐसा ज्ञात होता है। किन्तु हमारे विचार से तो यह बात नहीं है। श्रीकृष्ण का बर्ण कृष्ण है, राधा के प्रति उनका अनुराग रक्तबर्ण स्वरूप है। यही अनुराग जब स्वाँस के साथ उनके हृदय से बाहर होता है उसी से यह मोती गुञ्जा सदृश बन जाता है। यहाँ लुप्तोपमा एवं तद्गुण अलङ्कार हैं ॥६६॥

श्रीराधा के नेत्रों की रचना करते समय विधाता ने ब्रह्माण्ड में जितने भी मधुर रस हैं उन सब को एकत्र किया और उसका सार लेकर नेत्रों की रचना की। जो असार बस्तु शेष रही उससे भ्रमर, मृगलोचन, चकोर, कमल, मीन और नीलपद्म की सृष्टि की। यहाँ बिशेष अलङ्कार है। आधार के विना आधेय की स्थिति, एक बस्तु की एक समय में स्वभावतः बहुस्थान में स्थिति, एक अत्याश्चर्य्य बस्तु के निर्माण द्वारा अन्यान्य बस्तु का निर्माण इस प्रकार त्रिविध है ॥१००॥

हे सुमुखि ! तुम्हारे काजर लिप्त नेत्र खञ्जन पक्षी को भाँति आचरण करते हैं। कमलों के बीच जो सर्वश्रेष्ठ कमल है ये नेत्र उसके गर्व को भी भँग करते हैं एवं जो श्रीकृष्ण को सुख

धाता कुण्डलमीनराज-नटयोर्दाम्पत्य-सिद्ध्यै हरे
राधाया मुख-सत्सुधा-सरसि तन्नेत्रद्वयी-व्याजत: ।
लास्यं शिक्षयितुं झषेश-तनये वाले विधायानयो:
पार्श्वे लोलतया पलायन-भिया श्रीकर्णजाले न्यधात् ॥१०२॥
रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षा:

राधाक्षिपद्मद्वय–धाम्नि तिष्ठत: सदा सृजन्तौ भ्रमर–प्रजापती ।
प्रजावलीं मानसिकीं यतोऽसकौ कटाक्षधारा–मिषतो निरेत्युत: ॥
॥१०३॥ रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षा:

भ्रुवौ तिर:प्रसारिण्यौ विष्णुक्रान्ता-लते ध्रुवम् ।
अस्या: कृष्णे ययोर्भात: कुसुमे नेत्रयोर्मिषात् ॥१०४॥ रूपकापह्नुती

कर है । इन नेत्रों की ऐसी विचित्र–लीला है जिससे मत्स्य-गण भी लज्जित हो जाते हैं । यहाँ अनुप्रास एवं लुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥१०१॥

श्रीकृष्ण के कुण्डल-रूप दो मकर मानो नट स्वरूप हैं । उनमें स्त्री-पुरुष भाव सिद्ध करने के हेतु विधाता ने श्रीराधा के मुख-सरोबर में नेत्रों के छल से नृत्य शिक्षा दिलाने के निमित्त श्रेष्ठमीन की दो कन्याओं की सृष्टि कर मत्स्यराज के अभिनव स्वरूप दोनों पुत्रों के भागने के भय से दोनों के पास कर्णरूप दो जाल दिये हैं । यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं उत्प्रेक्षा हैं ॥१०२

श्रीराधा के नेत्रों में भ्रमर–समान तारका रूप दो तितलियाँ सदा मनोवृत्ति रूप पट्टा लिखवाकर वास करती है जिससे कटाक्षरूप वही पट्टा बाहर निकलता है । यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥१०३॥

श्रीराधा की दोनों बक्रभ्रू अलंकार युक्त होने पर मानो

किं राहुणा कबलितेन्दुकले वहिष्ठे
तद्दन्तदंशगलित-स्तिमिताङ्कलेशे ।
एते न किन्तु कचचिल्लि-लतान्तराले
श्रीराधिकालिकमिदं बिमलं विभाति ॥ निश्चयान्तसन्देहः ॥१०५॥
राधालिकं चिल्ल्यलकालिमञ्जुलं नवेन्दुलेखा-मदहारि दीव्यति ।
उपर्य्यधः षट्पदपालि-बेष्टितं यथा नवं काञ्चन-माधवीदलम् ॥१०६

उपमा

गुणमणि-खनिरस्या वल्लभः कृष्ण एव
प्रणयिनि भवितास्याः कृष्ण एवानुरागः ।

अपराजिता-लता जैसी दीखती है और उनमें काले बर्ण के दो फल नेत्र रूप में शोभा पा रहे हैं । यहाँ रूपक एवं अपन्हुति हैं ॥१०४॥

इसके उपरान्त सखी श्रीराधा के अपूर्व सौन्दर्य-युक्त ललाट का बर्णन करने लगीः—क्या राहु द्वारा आक्रमण की गई चन्द्रमा की दो कलायें उसके दाँतों के प्रहार से गलकर सामान्य कलङ्क के समान बाहर आगई है ? किन्तु यह बात नहीं है। यह तो श्रीराधा के केश और भ्रू के अभ्यन्तर उनका ललाट देश शोभा पा रहा है । यहाँ निश्चयान्त-सन्देह अलङ्कार है ॥१०५॥

सुनहरी माधवीलता के पत्तों के ऊपर और नीचे भ्रमर समूह के मण्डराने से जिसप्रकार लता शोभा पाती है उसी प्रकार श्रीराधा का ललाट--देश भ्रूलता और चूर्णकुन्तल (घुँघराले केश) के बीच अवस्थित होने से नवोदित चन्द्रकला का भी गर्व चूर्ण करता है। यहाँ उपमा है ॥१०६॥

गुणों के भण्डार (खान) श्रीकृष्ण ही श्रीराधिका के प्रिय-

इति लिपिरलिकान्तर्वैधसीयास्त्यसौ किं
बहिरपि मदसिन्दूरेन्दु-दम्भात् स्फुटाभूत् ॥१०७॥

रूपकोत्प्रेक्षापह्नुतयः

सीमन्तरेखाञ्च्यरुणाम्बरावृतं सैन्दूरमस्यास्तिलकं विभाति सा ।
करावगुण्ठाभिध-मुद्रयावृतं ताम्राघ्यंपात्रं सशिखं स्मरस्य वा ॥१०८

उपमा

श्रीकृष्ण-हृन्मत्त-मतङ्गजस्या-विष्टस्य राधा-कचकाननान्तः ।
तद्गण्ड-सिन्दूर-मदाभिषिक्तं वर्त्मास्य सीमन्तमिषाद्विभाति ॥

रूपकापह्नुती

श्रीराधाश्रयणात् सुखं निवसतोः केशानन-व्याजतो
ध्वान्तेन्द्वोर्हृदि शङ्कितं न हि गतं निर्वैरिणोरप्यहो ।

वल्लभ हैं एवं इन नटनागर में ही उनका अनुराग होगा, ऐसे विधि के अङ्क उनके ललाट पर अंकित है। क्या यही लिपि उनके मस्तक की विन्दु और चन्द्ररूप से प्रकटित हो रही है। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा एवं अपन्हुति अलङ्कार है ॥१०७॥

श्रीराधा की माँग (केशवीथि) सेन्दुर, तिलक द्वारा अलंकृत एवं लालवस्त्र से आच्छादित कामदेव के ताम्र अर्घ्यपात्र के तुल्य शोभा पा रही है। यहाँ उपमा है ॥१०८॥

श्रीराधा के केश-रूप बनमें श्रीकृष्ण मनरूप मत्त हाथी के प्रवेश करने पर वहाँ केशरूप कानन पथ सेन्दुर द्वारा अभिषिक्त श्रीराधिका की माँग के रूप में प्रकाश हो रहा है। यहाँ रूपक एवं अपन्हुति अलङ्कार हैं ॥१०९॥

आहा! श्रीराधा के अङ्ग का आश्रय पाने के हेतु अन्धकार उनका केशरूप धारण कर सुख से आसन जमाये है, एवं चन्द्रमा उनके मुख के बहाने अपना अपना दखल जमाये

ध्वान्तं यन्निज-सीमनि भ्रमरक-व्यूहं पुरः स्वं भया-
दिन्दुश्चालिक-सत्कलाग्रग-निजव्यूहं स्वगुप्त्यै न्यधात् ॥११०॥
रूपकापह्नुत्यनुमानानि

अलक-मधुपमाला भाति या राधिकाया
मुखकमल-मधुपी-रान-लुब्धोपरिष्टात्।
नयन-हरिण-युग्मारोधनायाघशत्रो-
र्मदन-मृगयुनासौ लम्भिता वागुरात्वम् ॥१११॥ रूपकोत्प्रेक्षे

राधा-मनोवृत्ति-लताङ्कुरागताः कृष्णस्य ये भावनया तदात्मताम्।
सूक्ष्मायताः प्रेमसुधाभिषेकत-स्ते निःसृताः केश-मिषाद्वहिर्ध्रुवम् ॥
रूपकापह्नुत्युप्रेक्षाः

बैठा है। दोनों का परस्पर वैर होते हुए भी प्रत्येक अपनी अपनी सीमा में अवस्थित है किन्तु इतने पर भी दोनों के मन में शंका बनी रहती है। अन्धकार अपनी रक्षा के निमित्त अलकावली रूप में अपनी सैन्य बढ़ा रहा है और चन्द्रमा उनके प्रशस्त ललाट का सहारा पा कलारूप सैन्य दल बढ़ा रहा है। यहाँ रूपक, अपन्हुति एवं अनुमान अलङ्कार है ॥११०

श्रीराधा की अलकावली रूप भ्रमर-श्रेणी उनके मुखरूप कमल का मधुपान करने की लालसा से ऊपर की ओर वास किये हुए हैं। यह देख कामदेब रूप व्याध श्रीकृष्ण के दोनों नेत्रों को सजग करने के निमित्त उन भ्रमरों को मृग फँसाने वाले जाल में रोक रक्खा है। यहाँ रूपक एवं उत्प्रेक्षा हैं ॥१११

श्रीराधा की चित्तवृत्ति (आशङ्कायें) रूप लताङ्कुर समूह श्रीकृष्ण की भावनाओं द्वारा कृष्णवर्ण प्राप्त करने एवं प्रेम-सुधा में अभिषिक्ति होने के हेतु सूक्ष्म अथच दीर्घ हो मानो केशरूप हो बाहर की ओर बढ़ रही हैं। यहाँ रूपक, अप-

स्वश्रिया चामरान् पुष्णच्छितिकण्ठ-कलापदम ।
कैश्यं वृन्दावनेश्वर्य्या विष्णोरैश्यमिवावभौ ॥११३॥ श्लेषोपमे
कृष्णाङ्गभासो निचिताः सुसूक्ष्माः
श्रीराधया या मनसा दृशा च ।
ता एव धम्मिल्ल-मिषेण वन्द्याः
पुञ्जीकृता मूर्द्धिन धृता विभान्ति ॥११४॥ उत्प्रेक्षापह्नुती
रत्नावली-कान्ति-सरस्वती-युता मुक्ताप्रसूनावलि-गङ्गयान्विता ।
निज-श्रियासौ यमुनायिता स्वयं वेणी त्रिवेणीव बभौ नतभ्रुवः ॥
।११५॥ रूपकोत्प्रेक्षोपमाः

न्हुति एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥११२॥

श्रीराधा की केशराशि अपनी कान्ति द्वारा चामर समूह को पोषण कर और मयूर पुच्छ का तिरस्कार कर विष्णु के ऐश्वर्य्य समान शोभा पा रही है। पक्षान्तर अर्थः— श्रीराधा के केश अपनी कान्ति से देवताओं का पोषण करते हुए श्रीमहादेवजी की कल अर्थात् धाङ्ग अस्थान के तुल्य शोभा पा रहे हैं। यहाँ श्लेष एवं उपमा दोनों हैं ॥११३॥

श्रीराधिका मन और नेत्रों द्वारा जो श्रीकृष्ण की सूक्ष्म अंग-कान्ति को एकत्रित किये हुए है, क्या वही बालों के बहाने उनके मस्तक पर इकट्ठी हो शोभा पा रही है। यहाँ उत्प्रेक्षा एवं अपन्हुति अलङ्कार हैं ॥११४॥

नतभ्रू श्रीराधा की रत्नावली (रत्नहार) अपनी कान्ति से सरस्वती नदी जैसी शोभा पा रही है। मुक्ता और फूलमाला गंगाजी जैसी शोभायमान है। स्वयं-वेणी यमुना जैसी सुशोभित हो रही है इस प्रकार स्वयं श्रीराधा की वेणी, त्रिवेणी अर्थात् गंगा, यमुना और सरस्वती की भाँति शोभा पा रही

११)

विलास-विस्रस्तमवेक्ष्य राधिका-श्रीकेशपाशं निजपुच्छ-पिञ्छयोः ।
न्यक्कारमाशङ्क्य ह्रियेव भेजिरे गिरिं चमर्यो विपिनं शिखण्डिनः ॥
॥११६॥ उत्प्रेक्षा

राधायाः कुङ्कुमानां परिमल-विततिर्निर्जिहीतेऽखिलाङ्गा-
न्नाभि-भ्रू-केश-नेत्रादगुरु-मृगमदालिप्त-नीलोत्पलानाम् ।
वक्षःश्रोत्रास्य-नासा-कर-पदयुगलादिन्दु-लिप्ताम्बुजानां
कक्ष-श्रोणि-नखेभ्यो मलयज-रस-संसिक्त-सत्केतकीनाम् ॥११७॥
दीपकस्वभावोक्ती

कृष्णेन्द्रियाह्लादि-गुणैरुदारा श्रीराधिका राजति राधिकेव ।
सर्वोपमानावलि-मर्द्दिशीला-न्यङ्गानि वाङ्गानि च भान्त्यमुष्याः ॥
॥११८। अनन्वयालङ्कारः

है। यहाँ रूपक, उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलङ्कार हैं ॥११५॥

श्रीराधा के मनोहारी केशपाश कैसे है? जो विलास के कारण बिखरे हुए हैं। यह देख नील-गाभी और मोरगण अपनी अपनी पुच्छ की निष्कामता देख अत्यन्त लज्जित और सशङ्कित हो पर्वत और बन में प्रवेश कर गये हैं अर्थात् नील-गाभी तो पर्वत पर चली गई हैं और मोरगण बन में प्रवेश कर गये हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा है ।११६॥

श्रीराधा के समस्त अङ्ग से निरन्तर सुगन्ध बहती रहती है। अर्थात् नाभि, भ्रू, केश और नेत्रों से अगरु-कस्तूरी सिक्त नील कमल जैसी, छाती, कर्ण, मुख, नासिका और युगल चरणों से कर्पूर लिप्त कमल जैसी एवं कक्ष, पीठ और नखों से चन्दन सिक्त केतकी फूल जैसी । यहाँ दीपक एवं स्वभावोक्ति अलङ्कार हैं ॥११७॥

श्रीकृष्ण की इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाली सौन्दर्य

श्रीराधिकानन्यसमा लसत्यसौ माधुर्य्य-सम्पत्तिरिवाघविद्विषः।
माधुर्य्य-सम्पत्तिरपीयमुच्चकैः श्रीराधिकेवानुपमा विराजते ॥११६

उपमेयोपमा

प्रेमा प्रमाण-रहितोऽनुपमा गुणश्रीः
सौन्दर्य्य-सम्पदसमा रुचिरञ्च शीलम्।
तारुण्यमद्भुततमं सखि ! राधिकायाः
कृष्णः कथं न भविता वशगो गुणज्ञः ॥१२०॥ सद्योग-समुच्चयः

माधुर्य आदि गुणों से युक्त श्रीराधिका, श्रीराधिकाजी के ही समान हैं अर्थात् अनुपमेय हैं। चन्द्र,कुसुम, कमलनाल, कमल और स्वर्ण आदि उपमा के योग्य वस्तुओं का अहंकार दूर करने के लिये श्रीराधा के अङ्ग-प्रत्यंग श्रीराधा के अङ्ग-प्रत्यंग के ही तुल्य विराजमान हैं। यहाँ अन्वय अलङ्कार है। एक वस्तु का उपमान एवं उपमेयत्व होना अन्वय है। ॥११८॥

श्रीकृष्ण की माधुर्य-सम्पत्ति की भाँति अनुपमेय श्री-राधकाजी विराजमाना हैं। एवं श्रीराधा के सौन्दर्य के समान श्रीकृष्ण का निरुपम सौन्दर्य शोभा पा रहा है। यहाँ उपमे-योपमा अलङ्कार है। ॥११६॥

हे सखी ! श्रीराधा का प्रेम अनिर्देश्य अर्थात् प्रमाण रहित है, उनके गुण अतुलनीय है, सुन्दरता असमान है, स्वभाव मनोहारी है और तारुण्य अद्भुत है। इसलिये गुणज्ञ श्रीकृष्ण इनके वशीभूत क्यों न हों। यहाँ सद्योगसमुच्चय अलङ्कार है। एक ही साधक में साधकान्तर का निर्देश समु-च्चय है। वह सद्योग, असद्योग एवं उभय योग भेद से तीन प्रकार है ॥१२०॥

पातिव्रत्यं क नु परवधुत्वापवादः क चास्या
प्रेमोद्रेकः क च परवशत्वादि-विघ्नः क चायम् ।
क्वैषोत्कण्ठा क नु वकरिपोर्नित्यसङ्गाद्यलब्धि-
मूलं कृष्ट्वा कषति हृदयं कापि शल्यत्रयी नः ॥१२१॥

सदसद्योग-समुच्चयः

का कृष्णस्य प्रणय-जनिभूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेयस्यनुपम-गुणा राधिकैका न चान्या ।

श्रीराधा का पातिव्रत धर्म कहाँ जब कि परपुरुष-वधू होने का अपवाद हो। किन्तु वास्तव में जहाँ किशोरी जैसा पातिव्रत्य हो वहाँ पराई स्त्री होने का अपवाद सम्भव ही नहीं हो सकता है। अपर, उनमें प्रेम सञ्चार ही कहाँ रहा जब कि परबशतादि विघ्न मोजूद हो परन्तु यह नहीं, जहाँ इस प्रकार प्रेम की अधिकता हो, वहाँ विघ्न आही नहीं रह सकता। तीसरे जहाँ इस तरह की तीव्र उत्कण्ठा हो वहाँ श्रीकृष्ण के संगादि का अभाव रह ही नहीं सकता है। यही एक त्रीशूल जैसा जिसका वाणि द्वारा बर्णन नहीं किया जा सकता है हमारे हृदय के मूलाधार को खींचता रहता है। "यहाँ पातिव्रत्य, प्रेमोद्रेक और उत्कण्ठा ये ही तीन सत् साधक हैं और अपवाद, विघ्न और संगाभाव ये ही तीन असत् हैं, अतः येही तीन शूल हमारे हृदय को आकर्षण करते हैं"। यहाँ सदसद्योग समुच्चय है ॥१२१॥

श्रीकृष्ण के प्रेम की उत्पत्ति का स्थान क्या है? इस प्रश्न का उत्तर केवल एक श्रीराधा ही हैं। श्रीकृष्ण की प्रियतमा कौन है। इसका उत्तर-केवल अनुपम-गुणा श्रीराधा हैं और

जैह्मयं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या
वाञ्छापूर्त्यै प्रभवति सदामुष्य राधैव नान्या ॥१२२॥

चतुर्व्विध-परिसंख्या:

प्रफुल्ल-पुन्नाग-कृताश्रया सदा प्रफुल्लिताङ्गी मधुसूदनाश्रया।
आमोद पूर्णा वरपत्रभङ्गिका वृन्दावनेऽसौ लसतीह राधिका॥११३

समासोक्ति:

न दीक्षास्या: शिक्षा-श्रवण-पठने वा गुरुमुखा-
त्तथापीयं राधा जिगदवला-विस्मयभुवाम।

कोई नहीं। इनके केश कुटिल अर्थात् घुँघराले हैं, आँखों में तरलता है और कुचाओं में निष्ठुरता है। इसलिये श्रीराधा ही एकमात्र श्रीकृष्ण की अभिलाषा पूर्ण करने में समर्था है अन्य कोई नहीं। यहाँ चार प्रकार की परिसंख्या है। प्रश्न व अप्रश्न पूर्वक कथित बस्तु से अपर का परित्याग परिसंख्या है। प्रश्न पूर्वक आख्यान समान, बस्तु का त्याग; अप्रश्न व्यङ्ग एवं प्रश्न पूर्वक व्यङ्ग ये चार प्रकार परिसंख्या है ॥१२२॥

जो प्रफुल्ल पुरुष-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण का आश्रय लिये हुए है, जो सदा प्रसन्न रहती है, जिनका मधुसूदन कृष्ण ही एक मात्र आश्रय हैं और जिनके अंग प्रत्यग पर पत्र-पुष्पादि अंकित है ऐसी श्रीराधा वृन्दाबन में शोभा पा रही हैं। अपर अर्थ— फूलों से लदे नागकेसर बृक्ष से लिपटी हुई, विकसित पुष्पवती एवं भ्रमर समूह से आच्छादिता और परिमल-वाहिनी माधवी-लता इस वृन्दाबन में शोभा पा रही है। यहाँ समासोक्ति अलङ्कार है। बिशिष्ट बिशेषण के द्वारा यदि बिशेष्य का अन्य प्रकार बर्णन होता है तब वह समासोक्ति है ॥१२३॥

इन श्रीराधा गुरुमुख से कोई दीक्षा-शिक्षा—कला बिषय

कलाम्भोधेः शौरेरपि परम-सन्तोषण-कृतां
कलानामाचार्य्या व्रजमृगदृशामप्यजनि सा ॥१२४॥ विभावना
तृणीकृत-त्यक्त-कुलीननारी-धर्म्मापि दूरोज्झित-भर्त्तृकापि ।
सती च याभीप्सित-सच्चरित्रा राधा विधात्रारचि चित्रशीला ॥१२५

विशेषोक्तिः

प्रजागर-स्वप्न-सुषुप्तिषु श्री-गान्धर्व्विकायाः सततं हि नान्या ।
मनोवपुर्वागखिलेन्द्रियाणां कृष्णैकतानत्वमृतेऽस्ति वृत्तिः ॥१२६॥

तुल्ययोगिता

शफर-मृग-चकोरी-खञ्जनाम्भोजभृङ्गी-
निकर-मदन-वाणश्रेणी नीलोत्पलानि ।

में नहीं ली है किन्तु यह अशिक्षिता श्रीराधा त्रिभुवन की समस्तस्त्रियों के लिये कला ज्ञान में आश्चर्य्य उत्पन्न करती हैं और यहाँ तक कि कलानिधि श्रीकृष्ण को भी परम सन्तोष देने वाली व्रजाङ्गनाओं की कला-शिक्षा में आचार्य्या हैं। यहाँ विभावना अलङ्कार है ॥१२४॥

जिसने कुल-स्त्रियों के धर्म को तुच्छ जानकर परित्याग कर दिया है और भर्त्ता (स्वामी) को भी त्यागने पर पतिव्रता है और वाञ्छित-सदाचार से युक्त है ऐसी श्रीराधा को विधाता ने विचित्र स्वभावा बनाकर निर्माण किया है। यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है ॥१२५॥

श्रीराधा की समस्त-इन्द्रियों की वृत्ति जाग्रत्, स्वप्न एवं सुसुप्ति दशा में शमन, रीर और बाणी द्वारा सदा एक-तानत्व में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कहीं नहीं रहती है । यहाँ तुल्ययोगिता अलङ्कार है ॥१२६॥

श्रीकृष्ण के धैर्य्य--धन को हरण करने में निपुण श्रीराधा

हरिधृति-धनचौरै राधिकायाः प्रवीणैः
सहज-नयनलीला-नर्त्तनैर्निर्जितानि ॥१२७॥ तुल्ययोगिता

चकोर-वापीह सरोजिनीनां पालिर्नभोऽरण्य-जलानि दीना।
ह्रियेव भेजे कथमत्र हेतुं कृष्णैकताने वद राधिके नः ॥१२८॥
पर्य्यायोक्तिः

राधे चकोरावली चातकाली सरोजिनी-श्रेणीषु योऽतिगर्व्वः।
सदैकतानत्वभवः स लुप्तः कृष्णैकतानत्वमवेक्ष्य तेऽभूत ॥१२९॥
पर्य्यायोक्तम्

के दोनों नेत्र अपनी स्वाभाविक नृत्य-लीला (कटाक्ष) द्वारा मीन, मृग, चकोरी, खञ्जन, कमल, भ्रमर समूह, नीलोत्पल तथा कामदेव के बाण को पराजित किये हुए हैं। यहाँ तुल्ययोगिता है ॥१२७॥

हे एकताने (एक ही बिषय में आसक्ति रखने वाली) श्रीराधे इसका कारण तो हमको बतलाओ कि चकोरी, चातक एवं सरोजिनी-श्रेणी दीनाभाव को प्राप्त हुई लज्जाबश नभ-रूप बनके जल की क्यों याचना किये हुए है? तात्पर्य्य— जिस प्रकार तुम एक श्रीकृष्ण में ही एकतानता रखती हो उसी प्रकार चकोर, चातक और कमलिनी यथाक्रम चन्द्र, मेघ और सूर्य्य में एकतानता क्यों नहीं रखती हैं? यहाँ पर्य्यायोक्ति अलङ्कार है। अभिलषित अर्थ को न कह कर उसकी साक्षात् रूप में सिद्धि के लिये अन्य प्रकार का आख्यान पर्य्यायोक्ति है॥

हे राधे! चकोर, चातक एवं पद्मिनी का एकतानता के कारण उत्पन्न हुआ जो रति है क्या वह श्री कृष्ण के प्रति तुम्हारी एकतानता देख लुप्त हो गयी है? यहाँ पर्य्यायोक्ति है॥

गीर्भू लीला युवतिषु वरैः सद्गुणैः सारभूता-
स्ताभ्यः सा श्रीस्तत इह महाप्रेमगोपाङ्गनास्ताः।
ताभ्यश्चन्द्रावलीमुख-लसद्यूथनाथा अमूभ्यः
श्रीराधास्यां यदिह नितरां सोऽपि कृष्णः सतृष्णः ॥१३०॥

सारानुमानाभ्यां सङ्करः

चन्द्रावली-प्रणयरूपगुणैः प्रयत्नाद्
व्यक्तीकृतैर्व्यरचयत् स्ववशं बकारिम्।
श्रीराधिका तु सहज-प्रकटैर्निजैस्तै-
र्व्यस्मारयत्तामिह तामपि हा कुतोऽन्याः ॥१३१॥ व्याघातालङ्कारः

युवतीगण में श्रेष्ठा सद्गुणा सरस्वती हैं, इनकी अपेक्षा पृथिवी और लीला इत्यादि शक्तियाँ श्रेष्ठा हैं, इनकी अपेक्षा लक्ष्मीजी श्रेष्ठा हैं इनकी अपेक्षा इस व्रजमण्डल में विशुद्ध प्रेम सम्पन्ना व्रजगोपियाँ श्रेष्ठा हैं इनकी अपेक्षा चन्द्राबली आदि यूथेश्वरी श्रेष्ठा हैं और इनकी अपेक्षा श्रीराधाजी सार स्वरूपा हैं। इसी कारण तो श्रीकृष्ण निरन्तर इनके प्रेम माधुर्य्य के प्यासे रहते हैं। यहाँ सार एवं अनुमान के द्वारा संकर अलङ्कार है। बस्तु की उत्तारोत्तार अवधि उत्कर्षता सार है ॥१३०॥

चन्द्राबली अपने प्रेम, रूप और गुण प्रकाश कर श्रीकृष्ण को अपने वश में किये हुए हैं किन्तु श्रीराधा अपने स्वाभाविक प्रेम, रूप और गुण के प्रकाश से उनको अपने आधीन किये हुए हैं, यहाँ तक कि वह चन्द्रावली को भूल गये हैं परन्तु इसमें आश्चर्य्य की कौनसी बात है जब श्रीराधा के प्रेम के सामने वह चन्द्राबली तक की उपेक्षा कर देते हैं तब अन्य स्त्रियों की तो गिनती ही किसमें हो सकती है।

न दोषलेशोऽपि गुणैर्लसन्त्यां श्रीराधिकायामिति गीर्न सत्या ।
केशेषु कौटिल्यमुरोज-युग्मे काठिन्यमक्ष्णोश्च यदस्ति लौल्यम्॥१३२
व्याजस्तुतिः

दृशौ चकोर्य्यौ सखि ! राधिकायाः
कृष्णाननेन्दोः स्मित-कौमुदीनाम् ।
पानात्सुखं चाम्बुरुहं यदस्मिन्
कृष्णाक्षिभृङ्गौ पततः सतृष्णौ ॥१३३॥ अनुमानम्
विनाप्याकल्पैः श्रीवृषरवि-सुता कृष्ण-सविधे
मुदोत्फुल्ला भावाभरण-वलितालीः सुखयति ।

यहाँ व्याघात अलङ्कार है। जो बस्तु जिस उपाय से साधित किया जाता है वह बस्तु उस उपाय से अन्य प्रकार होजाना व्याघात है ॥१३१॥

"गुण-सम्पन्ना श्रीराधिका में लेशमात्र भी कोई दोष नहीं है"। किन्तु इस बाक्य की सत्यता में तो सन्देह दिखाई देता है क्योंकि श्रीराधा के केश तो कुटिल हैं, कुचायें कठोर हैं और नेत्र सदा चञ्चल हैं। ये क्या दोष नहीं हैं। इस श्लोक में व्याजस्तुति अलङ्कार है। छल पूर्वक निन्दावाक्य से स्तुति एवं स्तुतिबाक्य से निन्दा व्याजस्तुति है। यहाँ निन्दा के छल से श्रीराधा की स्तुति है ॥१३२॥

हे सखि ! श्रीराधा के नयन-चकोर श्रीकृष्ण के चन्द्रमुख की मन्द-मुसकान रूप सुधा छवि को पान करते हैं अथवा श्री-राधा के मुख-रूप कमल पर श्रीकृष्ण के नयन-रूप भ्रमर मधुपान की लालसा से आकर गिरते हैं। यहाँ अनुमान अलङ्कार है ॥१३३॥

श्रीराधिका बस्त्रादि आभरणों से रहित होकर भी भावरूप

विना कृष्णं तृष्णाकुलित-हृदयालङ्कृति-चयै-
र्युताप्येषा म्लाना मलिनयति तासां तनु-मनः ॥१३४॥ विनोक्तिः
कृष्णः पुरः स्फुरति पार्श्व युगे च पश्चा-
च्चित्तस्य वृत्तिषु दृशोर्विषये च शश्वत्।
श्रीगण्डयोश्च कुचयोस्तरले यतोऽस्याः
श्रीराधिका तदिह कृष्णमयीति सत्यम् ॥१३५॥ पर्य्यायः
कृष्णस्य सौन्दर्य्य-भरैर्विनिर्जितः
कामोऽस्य किञ्चित् प्रतिकर्त्तु मक्षमः।

अलङ्कारों से युक्त हो सदा श्री कृष्ण को आनन्द देने वाली हैं किन्तु श्रीकृष्ण से पृथक् होने पर आभरणों से युक्त होते हुए भी वह कान्ति हीना हो जाती है और उनकी सब सखियों का शरीर और मुख भी मलिन हो जाता है। यहाँ विनोक्ति अलङ्कार है। एक के विना अन्य की यदि साधुता व असाधुता की स्थिति नहीं है वह विनोक्ति है ॥१३४॥

श्रीराधिका को अपने सम्मुख अथवा आस पास या पीछे उपस्थित देखने से और उनके युगल नेत्र, स्तन और कण्ठ-मणि हार दर्शन मात्र से श्रीकृष्ण को स्फूर्त्ति हो जाती है अर्थात् हर्ष, स्पन्दन आदि सात्त्विक भाव उदय होने लगते हैं। तब यह वाक्य कि श्रीराधिका कृष्णमयी है, सर्वथा सत्य है। भाव यह है कि कृष्ण को समस्त संसार राधामय दीखता है। यहाँ पर्य्यायोक्ति अलङ्कार है। यदि एक ही वस्तु यथा-क्रम अनेक स्थल पर किम्बा अनेक वस्तु एक स्थल पर स्वयं व अन्य के द्वारा सम्पादित होता है तब पर्य्यायोक्ति अलङ्कार कहा जाता है ॥१३५॥

राधामिह प्रीतिमतीं समीक्ष्य तां
सम्बाधतेऽसौ तदगोचरेऽवलाम ।।१३६।। प्रत्यनीकम्

स्पृशति यदि मुकुन्दो राधिकां तत्सखीनां
भवति वपुषि कम्प-स्वेद-रोमाञ्च-वाष्पम ।
अधर-मधु मुदास्याश्चेत् पिवत्येष यत्ना-
द्भवति वत तदासां मत्तता चित्रमेतत् ।।१३७।। असङ्गतिः

कृष्णो वरीयान् पुरुषेषु सद्गुणैः श्रीराधिका स्त्रीषु गुणैर्वरीयसी ।
सङ्गं विधातुस्त्वनयोः परस्परं धातुर्नरीनर्ति गुणज्ञता-यशः ।।१३८
समालङ्कारः

श्रीकृष्ण की सुन्दरता देख कामदेव पराजित हो जाता है। उनका तो कुछ विगाड़ नही सकता है परन्तु बेचारी श्रीराधिका की कृष्ण-प्रीति देख उनमें काम पीड़ा प्रदान कर देता है। यहाँ प्रत्यनीक अलङ्कार है। प्रतिपक्ष के समक्ष उसकी प्रियवस्तु का तिरस्कार प्रत्यनीक है ।।१३६।।

यदि श्रीकृष्ण श्रीराधिका का स्पर्श करते हैं तव उनकी सखियों के अंग में कम्प, स्वेद, रोमाञ्च, और अश्रु आदि सात्त्विक भाव उदय हो जाते हैं। यदि हर्षोल्लास में उनके अधरों का मधु-पान करते हैं तव तो उनकी सव सखियाँ उन्मत्त हो जाती हैं यह कैसी आश्चर्य्य की बात है। यहाँ असंगति अलङ्कार है। कार्य्य व कारण की विभिन्न देश में स्थिति असंगति है। ।।१३७।।

जिस प्रकार पुरुषों में श्रीकृष्ण सर्वगुण श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार स्त्रियों में श्रीराधिका सर्व-गुण श्रेष्ठा हैं। यही कारण है कि इन दोनों के मिलन से विधाता की गुणज्ञता रूप ख्याति

इत्थं कृष्णादङ्क-स्रजमुरुमुपादाय रुचिरां
वदान्यास्मै राधा रुचिरमणि-मालामिह ददौ ।
तियाल्या: कृष्णस्त्वधरमधु दन्तक्षमदाद्
गृहीत्वाभ्यामाल्यो दृग् तदवलोकं तनुमदुः ॥१३६॥ परिवृत्तिः
अन्यैव सौन्दर्य्य-समृद्धिरस्या भङ्गी तथान्या वपुषो दृशोश्च ।
स्वान्तस्य चोल्लासभरस्तथान्या राधैव सान्या प्रिय-सङ्गमेन ॥१४०
द्वितीयातिशयोक्तिः

समस्त संसार में फैली हुई है। यहाँ सम नामक अलङ्कार है। योग्य वस्तु की आनुरूप्य से प्रशंसा सम है ॥१३८॥

यह दानशीला श्रीराधिका श्रीकृष्ण के पास से श्रेष्ठ और सुन्दर नखचिन्ह रूप माला व पुष्पमाला अथवा आलिंगन प्राप्त करने के बाद बदले में अपनी सुन्दर मणिमाला अर्थात् दन्ताघात रूपमाला व अपना कण्ठस्थमाला प्रदान करती हैं। श्रीकृष्ण भी श्रीराधिका का अधरामृत पान करने के बदले में उनको दन्ताघात रूपमाला प्रदान करते हैं। सब सखियाँ श्रीराधा-कृष्ण का किञ्चित् अवलोकन पाकर अपना अपना अङ्ग प्रदान कर देती हैं। यहाँ परिवृत्ति अलङ्कार है। स्वधर्म्म एवं परधर्म्म का विनिमय परिवृत्ति है ॥१३९॥

श्रीकृष्ण के मिलाप के लिये श्रीराधा के सौन्दर्य्य की वृद्धि अन्य भाँति हो जाती है, शरीर और नेत्रों की भँगिमा भी अन्य प्रकार की हो जाती है। मन का उल्लास भी अन्य-रूप धारण कर लेता है यहाँ तक कि वे स्वयं भी अन्य रूप बन जाती हैं। यहाँ द्वितीयातिशयोक्ति अलंकार है। प्रकृत वस्तु अथवा उपमान को यदि अलौकिक भाव से वर्णित किया जाता है तब उसको द्वितीयातिशयोक्ति कहा जाता है ॥१४०॥

स्वसौरभापूरित-दिग्वितानां कोमल्य-सौन्दर्य्य-मरन्द-पूर्णाम्।
पङ्केजनीं तां मधुसूदनोऽसौ हित्वा कथं धावति केतकीं ताम् ॥१४१
अप्रस्तुत-प्रशंसा

माधव्याः श्रीर्माधवेनैव रम्या माधव्यैवोत्फुल्लया माधव-श्रीः।
इत्यन्योन्यश्री-समुल्लास-हेतू ब्रतौ धातुर्युञ्जतोऽभिशेनासीन् ॥१४२
अप्रस्तुत-प्रशंसया अन्योन्य-समाभ्यामङ्गाभ्यां सङ्करः

दृष्ट्वा राधां निपुण-विधिना सुष्ठु केनापि सृष्टां
धाता ह्यीणः सदृशमनया यौवतं निर्म्मिमित्सुः।

जो अपने अङ्ग से उत्पन्न हुई सुगन्धि-द्वारा दसों दिशाओं को परिपूर्ण किये है और जो कोमलता और सौन्दर्य्य में मकरन्द की भाँति सम्पूर्ण है ऐसी पद्मिनी-स्वरूपा श्रीराधिका को श्रीकृष्ण रूप भ्रमर त्यागकर क्या गन्धहीन कण्टकमयी केतकी के पुष्पों की ओर धावित होगा अर्थात् क्या किसी अन्य नायिका की ओर आकर्षित होंगे। यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। अप्रासङ्गिक वर्णना के द्वारा प्रस्तुत वस्तु का उद्देश्य अप्रस्तुत प्रशंसा है ॥१४१॥

माधवी-स्वरूपा श्रीराधा की शोभा माधव के ही भोग की वस्तु है एवं मधुसूदन ही प्रफुल्ला माधवीलता के साथ शोभा पाता है। पक्ष में—माधवी की शोभा माधव से ही है अर्थात् वैशाख मास में ही उसकी शोभा होती है एवं वैशाख मास की शोभा भी उसी से है। इसी प्रकार तो एक दूसरे की शोभा का आयोजन करते करते ब्रह्मा की विशेष कीर्त्ति फैल गई है। यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा की अङ्ग रूप अन्योन्य एवं सम के द्वारा संकरता है ॥१४२॥

किसी एक निपुण-विधाता द्वारा रची गई श्रीराधिका को

११)

सारं चिन्वन्नसृजदिह तत् स्वस्य सृष्टेः समास्या
नैकाप्यासीदपि तु समभूत् पूर्व्वसृष्टिर्निरर्था ॥१४३॥ विषमः
बिनिर्म्मितेऽस्या वदने विधात्रा दृष्टाम्बुजेन्दू वहुदोष-पूर्णौ ।
अशुद्धतां सूचयता तयोस्तौ कृतौ द्विरेफाङ्कमसी विलिप्तौ ॥१४४॥
प्रतीपः
राधा-गुणानां गणनातिगानां वाणीवचःसम्पदगोचराणाम् ।
न वर्णनीयो महिमेति यूयं जानीथ तत्तत्कथनैरलं नः ॥१४५॥
आक्षेपः

देख ब्रह्मा अपनी सृष्टि का सार लेकर उनके समान युवतियों का निर्माण करने लगा किन्तु उनके समान एक भी न बन पाई तब वह पहिली सृष्टि निरर्थक हो गई। यहाँ विषम अलङ्कार है। बिरुद्ध दोनों पदार्थ की संघटना विसम् है ॥१४३॥

श्रीराधिका के मुखमण्डल का दर्शन कर विधाता पद्म और चन्द्रमा में बहुत दोष देखने लगा। अशुद्ध अक्षर को शुद्ध करने के लिये साधारण लोक जिस प्रकार उसपर स्याही लेप देता है बिधाता ने भी पद्म के दोष को ठीक करने के निमित्त उस पर स्याही लगादी और चन्द्रमा का दोष छिपाने के हेतु उसमें कलंक अर्थात् मृग रूप स्याही पोत दीं। वहाँ प्रतीप अलङ्कार है। उपमान की निन्दा एवं उपमेय की स्तुति इस प्रकार उपमान की निन्दा करने पर भी उपमान उपमेय भाव है तब उसको प्रतीप कहते हैं ॥१४४॥

श्रीराधिका के असंख्य गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है, यह बात तो सबको विदित है ही। इसलिये उन गुणों का बखान करना हमारे लिये आवश्यक नहीं — सरस्वती

इत्थं सालङ्कार-काव्यैः सहासं कृष्णः कान्तां वर्णिताङ्गीं सखीभिः।
पश्यन् फुल्लत्सङ्कुचद्रुग्ननेत्रां नेत्रश्रुत्योस्तृप्तिमुच्चैरवाप ॥१४६॥

श्रीचैतन्य-पदारविन्द-मधुप-श्रीरूप-सेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथ-दासकृतिना श्रीजीव-सङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथ-भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
श्रीराधातनु-वर्णनामय इतः सर्गोऽयमेकादशः ॥११॥

भी उनके गुणों का अन्त नहीं पा सकती हैं अन्य व्यक्ति की तो गणना ही क्या ? यहाँ आक्षेप अलङ्कार है। ७६ माँ श्लोक की व्याख्या में इसका लक्षण कहा गया है ॥१४५॥

इसी प्रकार सब-सखियों ने अलङ्कार युक्त काव्य द्वारा जिनके बिग्रह का बर्णन किया है और जो अत्यन्त उल्लास से भरपूर लज्जा द्वारा किञ्चित सँकुचिता है और प्रणय क्रोध के कारण लालवर्ण हैं नेत्र जिनके ऐसी प्रियकान्ता श्रीराधा के श्रीकृष्ण सहित दर्शन कर अपने नेत्रों और कानों को तृप्त करने लगी अर्थात् श्रीराधा के दर्शन कर अपने नेत्रों को तृप्त किया और उनके श्रीबिग्रह का अलङ्कार युक्त काव्य द्वारा बर्णन सुन कानों की तृप्ति की ॥१४६॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी के चरण-कमलों के मधुपान में भ्रमर के समान श्रीरूपगोस्वामीजी की सेवा के फल स्वरूप, श्री-रघुनाथदासगोस्वामि द्वारा प्रेरणा किया हुआ, श्रीमत् जीव-गोस्वामि के संसर्ग से उत्पन्न एवं श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामि के बरदान के प्रभाव से प्रकाशित श्रीगोबिन्दलीलामृत काव्य की श्रीराधिकाजी के अंग की बर्णना नाम ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥११॥